TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182887

UNIVERSAL
LIBRARY

सत्य

॥ श्रीः ॥

बोध-सागर ।

(कबीर चरित्र बोध प्रारंभ)

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.

संवत् १९८७, शकाब्द १८५२.

रामेश्वर त्रिपाठी
हिंदी पुस्तकालय
चारमीनार, हैदराबाद

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, बम्बई.

पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्षाधीन है।

सत्य नाम।

श्री कवीर साहिव।

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतान, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानाम की दया, वंश-व्यालीसकी दया।

अथ श्रीबोधसागरे

सप्तत्रिंशतिस्तरंगः।

कबीर चरित्र बोध प्रारम्भः।

दोहा–गुरु कबीर जग बिदित है, भक्ति मुक्ति दातार।
जिव मुक्तावन कारने, आये जगत मँझार॥
कीन्ह चरित नाना जगत, सोई करों बखान।
परमानन्द यश पाइ है, नहिं पावा कोइ आन॥
उभय आनंदके प्राप्तिको, साधन अहै अनूप।
गुरू चरित गायन करी, होवे हंसन भूप॥

सत्य पुरुषकी आज्ञा।

सत्यपुरुषने ज्ञानीजीसे कहा कि, ऐ ज्ञानीजी! काल पुरुषने समस्त जीवोंको फँसाकर मार लिया, सब जीव भटक भटक कर कालकी फाँसीमें पडगये, कोई जीव मेरे लोकमें नहीं आता मैंने सुकृति जी (धर्मदास) को सत्य पंथके प्रचारके लिये पृथ्वीपर भेजा था—उनको कालपुरुषने धोखा देकर लोक वेदमें फँसा लिया और धर्मदासजी सत्यपुरुषकी भक्तिको छोड़कर कालपुरुषकी भक्तिमें लग गये। इस कारण आप पृथ्वीपर जाओ और सुकृतिजीको चेताकर मुक्तिपंथ पृथ्वीपर प्रकट करो। तब ज्ञानीजी सत्यपुरुषकी आज्ञा शिरोधार्य कर दंडवत् प्रणाम करके सत्यलोकसे बिदा हुए।

कबीर साहिबका काशीमें प्रकट होना।

सम्वत् चौदह सौ पचपन विक्रमी ज्येष्ठ सुदि पूर्णिमा सोमवारके दिन सत्यपुरुषका तेज काशीके लहर तालाबमें उतरा, उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया। उस समय अष्टानंद वैष्णव उस तालाबपर बैठे थे। वृष्टि होरही थी, बादल आकाशमें घिरे रहनेके कारण अंधकार छाया हुआ था, और बिजली चमक रही थी, जिस समय वह प्रकाश तालाबमें उतरा उस समय समस्त तालाब जगमग जगमग करने लगा और बड़ा प्रकाश हुआ, वह प्रकाश उस तालाबमें ठहर गया और प्रत्येक दिशाएँ जगमगाहटसे परिपूर्ण हो गयीं और इस आश्चर्यमय प्रकाशको देखकर अष्टानंदजी आश्चर्यान्वित हुए। प्रकाशके फैलते ही मयूर चकोर आदि नाना प्रकारके पक्षी बोलने चहचहाने लगे, कमल तथा नीलकमलके पुष्प लहलहाने और भँवरे गूँजने लगे। अष्टानन्दजीने जो उस तेजको

देखा तो आनकर उसका समस्त विवरण रामानन्द स्वामीसे कहा कि, ऐ स्वामीजी ! मैंने लहर तालाबमें एक ऐसी ज्योतिका निरीक्षण किया है जिससे मुझको अत्यन्त आश्चर्य हुआ है। उस ज्योतिको आकाशसे उतरते और लहर तालाबमें ठहरते देखा जब वह प्रकाश उस तालाबमें उतरा तब तालाब ज्योतिसे प्रकाशित होगया। यह बात सुनकर रामानन्द स्वामीने अष्टानन्दसे कहा कि, वह प्रकाश जो तुमने देखा था उसका कौतुक शीघ्र ही तुम्हारे देखने तथा सुननेमें आवेगा।

वह तेज बालकके आकारमें हुआ उस जलके ऊपर कमलोंके पुष्पोंमें उतराने और बालकोंके सदृश हाथ पाव फेंकने लगा वह तेज अपनी समस्त प्रभाओंके पृथक्करके मनुष्यके बच्चेका आकारमें दिखलायी दिया।

नीरूके पूर्वजन्मका वृत्तान्त।

श्वपच सुदर्शनके जो माता पिता थे वे दोनों भङ्गीका शरीर छोड़कर ब्राह्मण ब्राह्मणी हुए थे, और चँदबोर नगरमें रहते थे, इनके प्रेमसे कबीर साहब इनके घर गए और उनको मुक्तिमार्ग बतलाने लगे, परन्तु उन्होंने ध्यान नहीं दिया, तब सत्य गुरु उनके गृहसे अन्तर्धान हो गये। इसके उपरान्त वे दोनों ब्राह्मण ब्राह्मणी परलोकगामी होकर काशीमें जोलाहा जोलाही हुए और उनका नाम नीरू और नीमाह्वाद है। सुदर्शनजीके माता पिता तीसरे जन्ममें जोलाहा जोलाही हुए थे। इनको मुक्तिप्रदान करनेके निमित्त पुनः कबीर साहब उनके घर गए और काशीमें लहर तालाबमें प्रकट हुए।

कबीर साहबका नीमाको मिलना।

नीरू जोलाहा काशी नगरीमें रहता था, एक दिवस वह अपनी

स्त्रीसहित चला आता था, दैवात् वह लहर तालाबके समीपसे होकर निकला, उसकी स्त्री नीमा प्यासी हुई और जल पीनेके निमित्त उस तालाबपर गयी वहीं देखा तो एक बड़ा ही सुन्दर बालक कमलोंमें पैरता फिरता है और हाथ पाँव फेंक रहा है। उस बालकको देखकर नीमा तालाबके भीतर घुसकर उस बच्चेको अपनी गोदमें उठा लिया और तालाबसे बाहर निकलकर नीरूके पास गयी।

नीमा और नीरूकी बातचित।

तब पूँछा कि, यह किसका लड़का ले आयी है? तब नीमाने उत्तर दिया कि, मैंने तालाबमें पाया है। नीरूने कहदिया कि यह लड़का जहांसे तू ले आयी है वहां ही रख आ नहीं मालूम यह किसका लड़का है। तब उस स्त्रीने उत्तर दिया कि, ऐसा सुन्दर बालक तो मैं कदापि नहीं फेंकूँगी। तब नीरूने कहा कि, लोग मुझको हँसेंगे और ठट्ठाएँ उड़ावेंगे कि मुकलावेहीमें नीरू अपनी स्त्रीके साथ एक पुत्र भी ले आया, इस कारण इस बालकको तू फेंकि आ। इस बातको जब नीमाने स्वीकार नहीं कियां तब नीरू अपनी स्त्रीको मारने पीटनेपर प्रस्तुत हुआ और झिड़कियां देने लगा। अब वह स्त्री खड़े २ अपने चित्तमें चिंता करने लगी। इतनेमें वह बालक स्वयम् बोल उठा कि, ऐ नीमा! मैं तेरे पूर्वजन्मप्रेमके कारण तेरे घर आया हूँ। तुम मुझको मत फेक और अपने घर ले चल यदि मेरा कहना मानोगी तो मैं तुम्हें आवागमनके फेरेसे छुड़ादूंगा और मुक्तिप्रदान करूंगा, समस्त दुःख संताप हर कर और वह शब्द तब लाऊंगा कि, जिससे कभी कालके फंदेमें नहीं पड़ेगी।

जब वह बालक इस प्रकार बोला तो उसकी बात सुनकर नीमा निर्भय होगयी,बालककी बात सुनकर नीरू भी कुछ नहीं बोला। अब वे दोनों प्रसन्नतापूर्वक उस बालकको लेकर अपने घर आये। जब काशीके लोगोंने देखा कि,नीरू तो अपनी स्त्रीके साथ एक पुत्र भी ले आया तो लोग ठट्ठा और हँसी करने लगे। तब नीरूने लोगोंको समझाया कि, हमने यह बालक लहर तालाबमें पाया है, बालकका कुल विवरण कह सुनाया फिर बुलाकर पूँछने लगा कि इस बालकका क्या नाम रखना चाहिये। ब्राह्मण पत्रा लिये विचार ही रहे थे, इतनेमें वह बालक स्वयम् बोल उठा कि ऐ ब्राह्मण ! मेरा नाम कबीर है, दूसरा नाम रखनेकी चिन्ता मत करो। यह बात सुनकर सब लोग अत्यन्त चकित हुए कि यह बालक तो स्वयम् ही अपना नाम बतलाता है यह कैसा बालक है यह किसी सिद्धका अवतार है कि कोई देवता है? काशीमें इस बातकी चर्चा घर घर होने लगी कि, नीरूके घरमें एक बच्चा आया है सो बातें करता है। फिर नीरूने काजीको बुलाया और पूँछा कि, इस बालकका क्या नाम रखना चाहिये। जब काजी किताब खोलकर बालकका नाम स्थिर करने लगा तब कुरानके मध्यमें बालकके चार नाम निकले कबीर १ अकबर २ किबरा ३ किबरिया ४ ये चार नाम देखकर काजी चुप हो रहा और अपने दांतोंके नीचे अँगुली दबाने लगा। फिर फिर वह कुरान खोलकर देखता तो समस्त कुरान उसको उन्हीं नामोंसे भरा दिखलाई दिया। अब काजीके मनमें अत्यन्त सन्देह उत्पन्न हुआ

कि, ये चारों नाम तो खुदाके हैं अब क्या करें हमारे धर्मकी अप्रतिष्ठा हुई ।

गरीबदासजीकी पारख, अंगकी सखियाँ ।

काशीपुरको कस्द किया, उतरे अधर अधार ।
मोमिनका मुजरा हुआ, जङ्गलमें दीदार ॥
कोटि किरन शशि भानु सुधि, आसन अधर विमान ।
परसत पूरण ब्रह्मको, शीतल पिंड औ प्रान ॥
गोदलिया मुख चूमिके, हेम रूप झलकन्त ।
जगर मगर काया करे, दमके पद्म अनन्त ॥
काशी उमड़ी गुल भया, मोमिनका घर घेर ।
कोइ कह ब्रह्मा विष्णु हैं, कोइ कहे इंद्र कुबेर ॥
कोइ कह वरुण धर्मराय हैं,कोइ कोइ कहता ईश ।
सोलह कला सुभान गति, कोई कहै जगदीश ॥
भगति मुक्ति ले ऊतरे, मेटन तीनों ताप ।
मोमिन घर डेरा लिया, कहै कबीरा बाप ॥
दूध न पीवै नहिं अन्न भखे, नहिं पलने झूलंत ।
अधर आसन है ध्यानमें, कमल खिला फूलंत ॥
कोइ कह छल ईश्वर नहीं, कोइ किन्नर कहलाय ।
कोइ कहे गुण ईशका, ज्यों ज्यों मारिये साय ॥
काशीमें अचरज भया, गयी जगतकी निंद ।
ऐसे दूल्हा ऊतरे, ज्यों कन्या बरबिंद ॥
खल्क मुल्क देखन गया, राजा परजा रीत ।
जम्बूद्वीप जहानमें, उतरे शब्द अतीत ॥

---

१ गरीबसकल कुरान कबीर है, हरफ़ लिखे जो लेख ।
काशीके क़ाजी कहै, गयी दीनकी टेक ॥

दुनी कहे यह देव है, देव कहै यह ईश।
ईश कहै परब्रह्म है, पूर न विश्वे वीश॥
काजी गये कुरान ले, धर लड़केको नाँउ।
अक्षर अक्षरमें फुरे, धन्य कबीर बल जाउँ॥
सकल कुरान कबीर है, हरफ लिखे जो लेख।
काशीके काजी कहै, गयी दीनकी टेक॥
शिव उतरे शिवपुरीसे, अविगत वदन विनोद।
महके कमल खुशी भया, लिया ईशको गोद॥
नजर नजरसे मिल गयी, किया दर्श परणाम।
धन्य मोमिन धन्यपूरना,धन्य काशी निष्काम॥
सात बार चर्चा करे, बोलै बालक बैनु।
शिव सो कर मस्तक धरचो,ला मोमिन यक धेनु॥
अनब्यावरको दुहतही, दूध दिया ततकाल।
पीयो बालक ब्रह्म गति, वहां शिव भये दयाल॥
कष्ट मानुषके जब भई, नित दुनिया वर देहि।
वरण चले तत पुरीमें, यहि शिक्षा नित लेहि॥

जब काशीके सब काजियोंको यह समाचार मिला तब वे इस समाचारको सुनकर बड़े ही चिन्तित हुए कि, यह कैसा आश्चर्य अद्भुत व्यापार है कि, समस्त कुरानमें कबीर ही कबीर दिखाई देता है। अब कौनसा उपाय करना चाहिये कि, ऐसे दरिद्री जोलाहेके पुत्रका इतना बड़ा नाम न रक्खा जावे। फिर फिर कुरान खोलकर देखते तो यही चारों नाम निकलते। इन चारों नामोंके सिवाय और कुछ नहीं निकला। तब काशी-के काजियोंने आपसमें सम्मति की और नीरूसे कहा कि, ऐ नीरू! तू इस बालकको अपने घरके भीतर लेजाकर मार

खपा । तब वह जोलाहा कबीर साहबको अपने घरके भीतर लेगया और उनको छुरीसे काटने लगा,छुरी एक ओरसे दूसरी ओर पार निकल गई न कोई घात हुआ और न लोहूका एक बूँदही निकला और न गले पर कोई चिह्न हुआ । नीरू यह आश्चर्यमय वृत्तान्त देखकर एकदम डरगया और थर थर काँपने लगा उसके हाथसे छुरी गिर गयी और वह अचेत सा हो गया । तब कबीर साहब बोले कि, ऐ नीरू ! मेरा कोई माता पिता नहीं है, न मैं उत्पन्न होता हूँ न मरता हूँ, न मुझको कोई मार सकता है, न मैं किसीको मारता हूँ । और न मेरा शरीर है न मेरे मांस चर्म हड्डी और रक्त है और मैं स्वयंप्रकाश हूँ । यह बात सुनकर जोलाहा अत्यन्त भयभीत हुआ । अन्तमें विवश होकर जब यह वृत्तान्त प्रकट हुआ तब कबीरही नाम ठहराया । किसीका कुछ वश न चला कि, उसको बदल सके ।

बाललीला ।

बिना भोजनादि किए ही कबीर साहबका शरीर बड़ा होता जाता था और दिन प्रति आपका तेज तथा प्रताप बढ़ता जाता था । जब जोलाहा जोलाहीने देखा कि,बालक तो कुछ भोजन करता नहीं है तब वे अपने मनमें अत्यन्त चिंतित होकर कहने लगे कि, ऐ कबीरजी ! आप कुछ भोजन करो यदि आप अन्न न खाओगे तो हम भी नहीं खायेंगे । तब कबीर साहबने उत्तर दिया कि, ऐ नीरू ! गायकी एक कुवाँरी बछिया और कुम्हारके घरसे एक कोरा बरतन लेआओ । कबीर साहबकी आज्ञानुसार नीरू गया और कोरी बछिया ढूँढकर और कुम्हारके गृहसे एक बरतन ले आया । तब कबीर साहबने उससे कहा कि, इस बछियाको मेरे सामने बांध दो और उसके स्तनोंके नीचे

बरतन रख दो, फिर कबीर साहबने उस बछियाकी ओर देखा तो उसके स्तनोंसे दूध निकलने लगा जिससे बरतन भर गया वही दूध लेकर नीरूने कबीर साहबके मुँहके सामने रख दिया। फिर तो नीरू नित्य उसी प्रकार प्रतिदिवस किया करता था।

जब कबीर साहिब कुछ बड़े हुए और छोटे २ लड़कोंके साथ खेलने लगे तब आप उन लड़कोंसे ब्रह्मज्ञानकी बातें किया करते थे। वे बेसमझ लड़के कबीर साहबकी बातको तनिक भी नहीं समझते बल्कि जब वह उन्हें समझाने लगते तब वे मुँह देखने लग जाते। फिर कुछ दिनोंके पश्चात् आप साधुओंके साथ ज्ञानगोष्ठी करने लगे। जब साधु लोग आपका ज्ञान सुनते तब अत्यन्त चकित होते कि, यह छोटा बालक इस प्रकारकी बातें कैसे करता है। इन बातोंकी सुधि तो किसी साधुको भी नहीं है। तब साधुओंको विदित हो गया कि, यह बालक नहीं बरन् कोई सिद्ध ही लड़केके वेषमें प्रकट हुआ है।

कबीर साहबकी बालकपनके अनेक लीलाओंका विवरण ग्रंथोंमें लिखा है--उस समय जलनके रोगका काशीमें प्रकोप था। एक वृद्धा स्त्री आई और कबीर साहबसे बोली कि, मैं जलन रोगसे व्यथित हूँ, आप धूल मिट्टी खेल रहे थे। कबीरजी बोले, यदि तेरी इच्छा हो तो मैं आरोग्य लाभ करूं। तब कबीर साहबनें उस स्त्रीपर थोड़ीसी धूल डाल दी और वह आरोग्यहो गयी जिसपर वह प्रसन्न होती चली गयी। इस प्रकारकी बातोंका कुछ विवरण हो नहीं सकता।

कुछ दिवसोंके उपरान्त समस्त जुलाहे एकत्रित होकर कहने लगे कि, ऐ नीरू! अब तुम अपने पुत्रका सुन्नत (मुस-

त्रमानी) कराओ। फिर एक दिन मुकर्रर करके जुलाहे एकत्रित हुए और काजीको बुलाया। जब नाई उस्तरा लेकर कबीर साहबके सामने गया तब आपने पांच लिंग उसको दिखलाये और उससे कहा कि, इन पांचोंमेंसे जिसको चाहे तू काटले। यह अवस्था देखकर नाई तो भयभीत होकर भाग गया और आपका सुन्नत नहीं हुआ।

एक दिन आप छोटे २ बच्चोंके साथ खेलरहे थे,उस समय काजीने गोवधका प्रबंध किया और गऊके जबह करनेका समय आया तब आपने सब वृत्तांत जान लिया कि, काजी गऊके जबह करनेके विचारमें है ऐसा जान करके बालकोंके साथका खेलना छोड़कर गऊकी ओर दौडे। जबतक गायके समीप पहुँचे तबतक तो काजीने गऊको समाप्त कर दिया। कबीर साहब आकर उस काजीको उपदेश देने लगे जिससे लज्जित होकर काजी अपने अपराधके निमित्त क्षमाका प्रार्थी हुआ। फिर कबीर साहब उस गऊको जीवित करके और आप अंतर्धान हो गये।

जब आप अन्तर्धान हो गये तब जुलाहा जुलाही आपको ढूँढ़ने लगे। जब कई दिनों तक कबीर साहब उन्हें नहीं मिले तब उनको बड़ा दुःख हुआ और वे फूट २ कर रोने लगे। समस्त नगरमें ढूँढ़ डाला पर आप कहीं नहीं मिले। उनको तीन दिन भूखे प्यासे बीत गये, अन्नजल कुछ भी उनके मुँहमें नहीं गया। वे अत्यन्त निर्बल तथा अशक्त हो गये। जब आपने उन दोनोंको नितान्त ही विह्वल पाया तब आप उनके सामने प्रकट होगये। आपको देखते ही वे प्रसन्न होकर चरणोंपर गिर पड़े और कहने लगे कि, आप किधर चले गये ? हम

ढूँढते २ हैरान हो गये ? तब कबीर साहबने उत्तर दिया कि, तुमने महापाप किया कि, गऊको जबह करवाया। जोलाहा जोलाही अनेक सौगंधें खाने लगे कि, हमने यह कार्य नहीं करवाया बरन् हमें इस बातकी तनिक भी सुधि नहीं है, यह कार्य काजीका है जब उन दोनोंने बहुत कुछ प्रार्थना तथा बिनती की तब कबीर साहबने उन दोनोंको निर्दोष समझकर उनके घर गये।

जब आप छोटें २ बालकोंके साथ खेलते थे तब "राम राम" "गोविंद गोविंद" "हरि हरि" कहा करते थे तब मुसलमान लोग सुनकर कहते थे कि, यह बालक कट्टर काफिर होगा। तब उनको कबीर साहब यह प्रत्युत्तर देते थे कि, काफिर वह होगा जो दूसरोंका माल लूटता होगा, काफिर वह होगा जो कपट-भेष बनाकर संसारको ठगता हो, काफिर वह है जो निर्दोष जीवोंका प्राणनाश करता होगा, काफिर वह होगा जो मांस खाता होगा, काफिर वह होगा जो मदिरा पान करता होगा और काफिर वह होगा जो दुराचार तथा बटमारी करता होगा मैं किस प्रकार काफिर हूं।

साखी—कबीर साहब।

गला काटकर बिसमिल करें, ते काफिर बेबूझ।
औरनको काफिर कहैं, अपनो कुफ्र न सूझ॥

कुछ दिनके बाद कबीर साहबने गलेमें यज्ञोपवीत डाल लिया और अपने माथेपर तिलक लगा लिया, तब ब्राह्मण देखकर कहने लगे कि, यह तो तेरा धर्म नहीं है तूने वैष्णव बेष कैसे बनाया ? तू राम राम गोविंद गोविंद नारायण नारायण कहता है—यह तो मेरा धर्म है तेरा धर्म नहीं। तब कबीर

साहब ब्राह्मणोंको उत्तर देते कि, हम तो ताना तनते हैं, जनेऊ तुम्हारा किस प्रकार हुआ? और गोविंद और राम तो हमारे हृदयमें बसते हैं, तुम्हारे कैसे हुए तुम तो गीता पढ़ते हो और सांसारिक धनके निमित्त सदैव धनाढ्योंके द्वार द्वार पर दौड़ते और भटकते रहते हो, हम तो गोविन्दके अतिरिक्त और किसी अन्यको नहीं जानते हैं। इतना सुनकर ब्राह्मण निरुत्तर हो जाते। फिर तो हिन्दू तथा मुसलमान दोनों आपके साथ वाद विवाद किया करते और सब परास्त होने लगे। जब साधुओंने देखा कि, यह लड़का तो बड़ा ज्ञानी है, तब वे लोग पूँछते कि, कबीरजी आपका गुरु कौन है, उस समय तो आपका कोई गुरु नहीं था-इस प्रश्नपर आप निरुत्तर निस्तब्ध हो जाते तब साधु लोग आपको ताना मारते कि, बिना गुरुके तुम्हारा ज्ञान किसी काम नहीं आवेगा-और न बिना गुरुके किसीको मुक्ति मिलेगी, तुम्हारा यह सब वार्तालाप तथा ज्ञान व्यर्थ है। जब साधु लोग कबीर साहबपर इस प्रकार कटाक्ष करने लगे तब आपने रामानंद स्वामीको गुरु करनेका संकल्प किया। जिस समय आपने स्वामी रामानंदको गुरु करनेका संकल्प किया उस समय आपको प्रकट हुए पूरे पांच वर्ष हो चुके थे और आपकी प्रसिद्धि भारतके बहुत भागोंमें हो चुकी थी।

आप रामानन्द स्वामीके पास गये और विनय किया कि, स्वामीजी! मुझको दीक्षा देकर अपना शिष्य कीजिये और मुझसे गुरुदक्षिणा लीजिये मुझपर कृपा कीजिये। यह बात सुनकर स्वामीजीने उत्तर दिया कि, मैं शूद्रको दीक्षा नहीं देता।

रामानन्द स्वामी और कबीर साहबकी वार्तालापका वृत्तान्त।

भक्ति द्राविड देशथी, यहां नहीं एक विरञ्च।

ऊत भूतको ध्यावना, पाखंड और परपञ्च ॥
रामानन्द अनन्द भये, काशी नगर मँझार ।
देश द्राविड छाड़िके, आये पुरी बिचार ॥
योग युक्ति प्राणायाम करि,जीता सकल शरीर।
तिरवेणीके घाटमें, अटक रहे बलवीर ॥
तीरथ वरत एकादशी, गंगोदक अस्नान ।
पूजा विधि विधानसों, सर्वकलासों गान ॥
करे मानसी सेव नित, आत्मतत्त्वको ध्यान ।
षट पूजा आदि भेद गति,धूप औ दीप विधान॥
चौदह सौ चेले किये, काशीनगर मँझार ।
चार सम्प्रदा चलत हैं, और हैं बावन द्वार ॥
पांच बरषके जब भये, काशीमाहिं कबीर ।
दास गरीब अजीबकला, ज्ञानध्यान गुण थीर॥
गुल भया काशी पुरीमें,अटपट बैन विहंग ।
दास गरीब गुणी थके,सुनि जोलहा परसंग॥
रामानँद अधिकार है, सुनि जोलहा जगदीश ।
दास गरीब बिलम्बना, ताहि नवावत शीश ॥
रामानँदको गुरु कहै, तनसे नहीं मिलाप ।
दास गरीब दरस भये, पैयन लगी जो लाप॥
पन्थ चलत ठोकर लगे, राम नाम कहि दीन।
दास गरीब कसर नहीं, सीख लिये बरबीन ॥
आड़ा परदा देइके, रामानन्द बुझन्त ।
दास गरीब उलंग छबि, अधर डाक कूदंत ॥
कौन जाति कुल पंथ है, कौन तुम्हारा नाउँ ।
दास गरीब अधीन गति,बोलतही बलि जाउँ॥

जाति हमारी जगद्गुरु, परमेश्वर यह पंथ ।
दास गरीब लिखत परे, नाम निरंजन कंत ॥
रे बालक दुर्बुद्धि सुन, घट मठ तन आकार ।
दास गरीब दरदर लगे, बोले सिरजन हार ॥
तू मोमिनके पालुवा, जुलहेके घर वास ।
दास गरीब अज्ञान गति, एता दृढ़ विश्वास ॥
मान बड़ाई छांड़िके, बोलौ बालक बैन ।
दास गरीब अधम मुर्खी,इतना तुम घर फैन ॥
कलियुग क्षेतरपाल है, क्या भैरो कोइ भूत ।
दास गरीब विटंबना, गया जगत सब ऊत ॥
मनी मगज माया तजो,तजिये मान गुमान ।
दास गरीब सो बात कहि,नहिं पावेगो जान॥
हे बालक बुधि तोरि गति,कौडी साखन भांड।
दास गरीबहि हदेसकरि, नहिं लेवेगे डाँड ॥
शाह शिकंदरके वधे, पग ऊपर तर शीश ।
दास गरीब अगाधि गति,तोर कहा जगदीश॥
कान काट बूचा करे, नली भरत रे नीच ।
दास गरीब जहानमें, तुम सर जोरा मीच॥
मरत मरत सबजग मुआ,लखै न ऽस्थिर ठौर।
दास गरीब जहानमें, तुमसा नीच न और॥
नादबिन्दकी देहमें, येता गर्व न कीन ।
दास गरीब पलक फना, जैसे बुदबुद लीन ॥
तिनकर तैसे बोलते, रामानन्द सुजान ।
दास गरीब कुजाति है,आखिर नीच निदान ॥
नीच मीच से ना डरे,काल कुल्हाड़ अशीश ।

दास गरीब अदत्त है, तैं जो कहा जगदीश ॥
जडिहों हाथ हथकड़ी, गले तौक जञ्जीर ।
दास गरीब परख बिना, यह वाणी गुणगीर॥
परख निरख नहिं तोहिको,नीचकुलीन कुजात ।
दास गरीब अकल बिना,तू जो कही क्या बात॥
हे बालक नीची कला, तुमही बोलो ऊँच ।
दास गरीब पलक धरि, खबर नहीं हम कूँच ॥
महँके बरन खलास करि, सुन स्वामी परवीन ।
दास गरीब मनी मरी, मैं आजिज आधीन ॥
मैं अविगत गतिसे परें, चार वेदसे दूर ।
दास गरीब दशों दिशा, सकल सिन्धु भरपूर ॥
सकल सिन्धु भरपूर हूँ, खालिक हमरो नाउँ ।
दास गरीब अजात हूँ, तेजि कहा बलि जाउँ ॥
जात पाँत मेरे नहीं, नाहिं स्त्री नहिं गाउँ ।
दास गरीब अनन्य गति, नहीं हमारे नाउँ ॥
नाद बिन्द मेरे नहीं, नहीं गोद नहिं गात ।
दास गरीब शब्द सजग, नहीं किसीका साथ॥
सब सङ्गी बिछरू नहीं, आदि अन्त बहु जाहिं ।
दास गरीब सकल बसौं, बाहर भीतर माहिं ॥
हे स्वामी मैं सृष्टिमें, सृष्टि हमारे तीर ।
दास गरीब अधर बसूँ, अविगत पुरुष कबीर ॥
अनन्तकोटिसलिताबड़ो, अनन्तकोटिघरऊँच।
दास गरीब सदा रहूँ, नहीं हमारे कूँच ॥
पुहमी धरनि अकाशमें, मैं व्यापक सब ठौर ।
दास गरीब न दूसरा, हम सम तुल नहिं और ॥

मैं माया मैं काल हूँ, मैं हंसा मैं वंश ।
दास गरीब दयाल हम, हमहीं करें विध्वंस ॥
ममता माया हम रची, काल जाल सब जीव ।
दास गरीब प्राण पद, हम दासा तन पीव ॥
हम दासनके दास हैं, कर्ता पुरुष करीम ।
दास गरीब अवधूत हम, हम ब्रह्मचारी सीम ॥
हम मौला सब मुल्कमें, मुल्क हमारे माहिं ।
दास गरीब दलाल हम, हम दूसर कछु नाहिं ॥
हम मोती मुक्ताहल, हम दरिया दरवेश ।
दासगरीब हम नित रहें, हम तजि जात हमेश॥
हमहीं लाल गुलाल हैं, हम पारस पद सार ।
दास गरीब अदालतँग, हम राजा संसार ॥
हम पानी हम पवन हैं, हमहीं धरणि अकाश ।
दास गरीब तत्त्वपञ्चमें, हमहीं शब्द निवास ॥
सुनु स्वामी सत भाखहूँ, झूठ न हमरो रञ्च ।
दास गरीब हम रूप बिन, और सकल परपञ्च॥
हम रोवत हैं सृष्टिको, जो रोवति है मोहिं ।
दास गरीब वियोगको, और न बूझै कोइ ॥
मैं बूझूँ मैं ही कहूँ, मैं ही किया वियोग ।
गरीब दास गलतान हम, शब्द हमारा योग ॥
चारों रुकुनमें हम फिरें, नहिं आवें नहिं जाउँ ।
गरीब दास गुरु भेदसे, लखे हमारा ठाउँ ॥
रजगुण सतगुण तमगुण, रजबीरज हम कीन्ह ।
गरीबदास हम सकलमें, हम दुनियाँ हम दीन्ह॥
लगी महम गनीम पर, काल कटक कटकन्त ।

गरीबदास निर्भय करूँ,जो कोइ नाम जपन्त ॥
मैं बालक मैं वृद्ध हूँ, मैंहीं जवाँ जमान ।
गरीबदास निज ब्रह्म हूँ, हमहीं चारों खान ॥
गगन शून्य गुप्ता रहूँ, हम परकट परवाह ।
गरीबदास घट २ बसूँ, विकट हमारी राह ॥
आवत जात न दीसहूँ, रहता सकल समीप ।
गरीबदास जलतरँग ज्यों, हमहीं सायरसीप ॥
गोता लाऊँ स्वर्गमें, फिर पैठूँ पाताल ।
गरीबदास ढूँढत फिरूँ, हीरे माणिक लाल ॥
इस दरिया कङ्कर बहुत, लाल कहीं कहिं ठाउँ ।
गरीबदास माणिक चुगूँ, हम मरजीवा नाउँ ॥
बोले रामानन्दजी, हम घर बड़ा सुकाल ।
गरीबदास पूजा करें, मुकुट फई जद माल ॥
सेवा करो सम्हालके, सुन स्वामी सुरज्ञान ।
गरीबदास शिरधर मुकुट, माला अटकी जान ॥
स्वामी घुंडी खोलके, फिर माला गले डार ।
गरीबदास इस भजनको, जानत हैं करतार ॥
ड्योढ़ी परदा दूरकर, लीना कण्ठ लगाय ।
गरीबदास गुजरी बहुत,बदन न बदन मिलाय ॥
मनकी पूजा तुम लखी, मुकुट माल परवेश ।
गरीबदास किनको लखे, कौन वरन क्या भेष ॥
यह तो तुम शिक्षा दयी, मान लिये मन मोर ।
गरीबदास कोमल पुरुष, हमरो बदन कठोर ॥
हे स्वामी तुम स्वर्गकी, छोड़ो आशा रीत ।
गरीबदास तुम कारणे, उतरे शब्द अतीत ॥

सुन बच्चा मैं स्वर्गकी, कैसे छाँडूँ रीत ।
गरीबदास गुदड़ी लगी, जन्म जात है बीत ॥
चार मुक्ति वैकुण्ठमें, जिनकी मोरे चाह ।
गरीबदास घर अगमके, कैसे पाऊँ थाह ॥
हेम रूप जहाँ धरणि है, रत्न जड़े बहु शोभ ।
गरीबदास वैकुण्ठको, तन मन हमरो लोभ ॥
शंख चक्र गदा पद्म है, मोहन मदन मुरारि ।
गरीबदास मुरली बजै, स्वर्गलोक दरबार ॥
दूधोंकी नदियां बगैं, श्वेत वृक्ष शोभान ।
गरीबदास मन्दिर मुकुट, स्वर्गपुरी अस्थान ॥
रत्न जड़ाऊ मनुष सब, गण गँधर्व सब सेव ।
गरीबदास उस धामकी, कैसे छाँडूँ सेव ॥
चार वेद गावें उसे, सुर नर मुनी मिलाप ।
गरीबदास ध्रुव पुर यश, मिटगये तीनों ताप॥
नारद ब्रह्मा यश रटें, गावें शेष गणेश ।
गरीबदास वैकुण्ठसे, और परे को देश ॥
सुन स्वामी निज मूलगति, कहि समझाऊँ तोहिं।
गरीबदास भगवानको, राखा जगत समोइ ॥
तीनलोकके जीव सब, विषय वासना भाय ।
गरीबदास हमको जपैं, तिसको धाम दिखाय ॥
कृष्ण विष्णु भगवानके, जहाँ गये हैं जीव ।
गरीबदास त्रिलोकमें, काल कर्म सर शीव ॥
सुनु स्वामी तोसों कहूँ, अगम द्वीपकी सैल ।
गरीबदास डूबे परे, पुस्तक लादे बैल ॥
कहो स्वामी कहाँ रहोगे, चौदह भुवन बिहंड ।

गरीबदास बीजक कहो, चलत प्राण औ पिंड ॥
बोलत रामानन्दजी, सुन कबीर करतार ।
गरीबदास सब रूपमें, तुमहीं बोलनहार ॥
तुम साहब तुम संत हो, तुम सद्गुरु हम हंस ।
गरीबदास तुम रूप बिनु, और न पूजो वंस॥
मैं भक्ता मुक्ता भया, किया कर्म्म कुल नाश ।
गरीबदास अविगत मिले, मेटी मनकी प्यास ॥
दोनों ठौरमें एक तू, भया एकसे दोय ।
गरीबदास हम कारणे, उतरे मगहर जोय ॥
बोले रामानन्दजी, सुनो कबीर सुजान ।
गरीबदास मुक्ती भयी, उधरे पिंड औ प्रान ॥
गोष्ठी रामानन्दसे, काशी नगर मँझार ।
गरीबदास जिन्द पीरकी, हम पाये दीदार ॥

कबीर वचन।

रामानँद गुरुदीक्षा दीज । गुरुदक्षिणा कुछ हमसे लीजे ॥

रामानन्द वचन।

शूद्रके कानन लागौं भाई । तीन लोकमें मोर बड़ाई ॥

जब रामानंदने उत्तर दिया कि, मैं दीक्षा नहीं दूँगा, कबीर साहब चुपचाप चले आये, स्वामीजीका यह नियम था कि, चार घड़ीके तड़के गंगास्नानको जाया करते थे, एकदिन जब स्वामीजी स्नान करने चले तब कबीर साहब एक छोटे बालकका रूप धरके स्वामीजीके पथमें जा पड़े । स्वामीजी खड़ाऊँ पहने चले आते थे, आपकी खड़ाऊँकी ठोकर कबीर साहबके शिरमें लगी, कबीर साहब रोने लगे । एक लड़केको रोते देखकर स्वामीजी खड़े हो गये, और बालकके शीशपर हाथ धरकर

कहा कि, बच्चा रो मत राम राम कहो । तब कबीर साहब चुप हो गये और कहने लगे गुरुजी राम राम कहूँ ? स्वामीजीने कहा हाँ राम राम कहो । उस समयसे कबीर साहब बराबर राम राम कहने लगे, और गुरु शिष्यका सम्बन्ध बना लिया । जब गुरु चेलेका सम्बन्ध बनाचुके तब अपने घरमें जाकर सबेरे ही कंठी पहन लिया, और हाथमें तुलसीकी माला ले और मस्तकपर तिलक लगा ठीक वैष्णव मूर्ति धारण किया, और राम रामकी धुन लगायी ।

जब कबीर साहबने यह रंग बनाया तब आपसे अनेक मनुष्य प्रश्न करते कि, कबीरजी ! आपने यह वैष्णवका वेष कैसे बनाया है ? । तबवे सब लोगोंको उत्तर देते कि, मैंने रामानंद स्वामीको गुरु बनाया है । यह दशा देखकर और सुनकर कितने ही संन्यासी तथा वैरागियोंने स्वामीजीसे जाकर कहा कि, महाराज ! आपने ऐसी मर्यादा छोड़ दी कि, जोलाहेके पुत्रको शिष्य कर लिया ।

यह बात सुनकर स्वामीजीने कहा कि, मैंने चेला नहीं किया । तब लोग गये और कबीर साहबको बुला लाये । स्वामीजीका यह नियम था कि, वे मुसलमानका मुख नहीं देखते थे और कबीर साहबको नीरूके घरमें रहनेके कारण लोग मुसलमान कहते थे, इसलिये कबीर साहबको लोगोंने परदाके बाहर खड़ा किया और परदेके भीतरसे स्वामीजी बोले कि ऐ कबीर ! मैंने तुमको अपना चेला कब बनाया ? तब कबीर साहबने उत्तर दिया कि, स्वामीजी जब आप गंगा स्नान-को जाते थे और मैं पथमें पड़ा था आपके खड़ाऊँकी ठोकर मेरे माथेमें लगी और मैं रोने लगा तब आपने कहा राम राम

कह, उस समयसे मैं राम राम कहने लगा । तब स्वामीजीने कहा कि हाँ एक बालक तो था जिसको मेरे खडाऊँकी ठोकर लगी और उससे मैंने रामराम कहनेको कहा था। कबीर साहब-ने कहा कि,गुरुजी वह लड़का मैं ही था। तब स्वामीजीने कहा कि, क्या इस प्रकार कोई गुरु चेला हो सकता है ? तब कबीर साहबने कहा कि,गुरुजी वेदशास्त्रमें रामनामसे बढ़कर और दूसरा क्या है ? तब स्वामीने उत्तर दिया कि, सबसे बढ़कर यही है, उससे बढ़कर और कुछ नहीं है । फिर साहबने कहा कि, जो नाम सबसे बढ़कर है सो तो आपने मेरे माथेपर हाथ धरकर देही दिया–फिर गुरु और शिष्य किस प्रकार होता है ? फिर स्वामीजी बोले कि,जिस बालकसे मैंने राम नाम कहा था वह छोटा था और तू बड़ा जान पड़ता है। तब कबीर साहब वैसाही छोटा बालक बनकर स्वामीकी गुफाके भीतर देखपड़े और गुरु-जीके चरणोंपर गिरकर कहने लगे कि,मैं उस समय ऐसाही छोटा था न ? यह कौतुक देखकर लोगोंको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि, देखो यह बालक कैसा छोटा हो गया। उस समयसे स्वामी-जीने कबीर साहबको गले लगा लिया, उसी समयसे कबीर साहब स्वामीजीके शिष्योंके साथ रहने लगे और स्वामीजीके जितने शिष्य थे सब कबीर साहबको अपना गुरु करके मानते और अत्यन्त मर्यादा तथा प्रतिष्ठा किया करते थे और स्वयम् कबीर साहब सबसे नितान्तही नम्रतापूर्वक मिलते थे। यहां तक कि रामानन्द स्वामीके चौदहसौ चौरासी शिष्योंमें कबीर साहब सबके सरदार हो गये थे । मानसमेंही भगवान्‌की मूर्ति कल्पना कर यथाविधि सब शृंगार किया,

किन्तु माला पहिराना भूल गये। पीछेसे याद पाने पर माला पहिराने लगे किन्तु मुकुटके ऊपरसे माला गलेमें नहीं जाती थी।

फिर समय २ पर कबीर साहब और रामानन्द स्वामीमें ज्ञान और मुक्तिके विषयमें सत्संग हुआ करता था। रामानन्द स्वामी तथा कबीर साहबकी वार्तालाप बहुत है जिसकी इच्छा हो ढूँढ़कर देख ले। कबीर साहबने समय समय पर स्वामीजीको अनेक कौतुक दिखलाये सो भिन्न २ ग्रंथोंमें लिखे हुए हैं।

एकबार स्वामीजी मानसिक ध्यान कर रहे थे। मानसमें ही भगवानकी मूर्ति कल्पना कर यथाविधि सब शृंगार किया किन्तु माला पहिराना भूल गये। पीछेसे याद पड़नेपर माला पहिराने लगे किन्तु मुकुटके ऊपरसे माला गलेमें नहीं जाती थी। तब स्वामीजीको बड़ी चिंता हुई कि, अब ठाकुरके गलेमें कैसे माला पहनाऊँ? क्योंकि, यदि मुकुट उतारकर माला पहिनाते हैं तो शृंगार भ्रष्ट होता है और माला नहीं पहनाते हैं तो शृंगार अपूर्ण रहता है। तब कबीर साहब स्वामीजीके मनकी बात जानकर बोले कि, स्वामीजी! मालाकी गाँठ खोलकर ठाकुरको माला पहनाओ।

इस प्रकारके अनेक कौतुकोंको देखकर स्वामीजीकी इच्छा हुई कि, जानना चाहिये यह कबीर कौन है जो ऐसे २ कौतुक किया करता है। इस कारण स्वामीजीने ठाकुरका ध्यान किया तब ध्यानमें यह दिखाई दिया कि, ठाकुरके सिंहासन पर जो ठाकुरकी मूर्ति है उसके शिरके ऊपर कबीर साहबका सिंहासन रक्खा हुआ है। जबसे कबीर साहबकी ऐसी बड़ाई और उनका इतना प्रताप देखा तबसे स्वामीजी कबीर साहबकी

स्तुति करने लगे । रामानन्द तो कबीरसाहबकी प्रशंसा करते और कबीरसाहब अपने गुरुका गुण गाया करते थे ।

गोरखको जीतना ।

उस समय गोरखनाथ योगी जो बड़ा ही बलिष्ठ था और प्रायः रामानन्द स्वामीसे आकर वाद विवाद किया करता था उसका सामना कबीरसाहबसे हुआ और कबीर साहबका गोरखनाथके साथ बड़ाही वाद विवाद हुआ और दोनोंही ओरसे अनेक कौतुक दिखलाई दिये जो लोगोंमें प्रसिद्ध हैं। अन्तमें गोरखनाथ परास्त हुआ और अपनी सेली और टोपी कबीर साहबके चरणोंपर चढ़ाकर तथा दंडवत् और प्रणाम करके एक ओरको चला गया ।

शाह सिकन्दरलोदीका काशीमें आना और कबीर साहबसे मिलना तथा रामानन्द स्वामीका परलोक-गमन ।

सम्वत् १५४९ विक्रमीमें बहलोल लोदीका पुत्र सिकन्दर लोदी काशी नगरमें पहुँचा, बादशाहके शरीरमें कुछ दिनोंसे जलनका रोग था, रात दिन उसका शरीर जला करता था । उस रोगसे उसे तनिक भी चैन नहीं मिलता था ।

काशीमें पहुँचनेपर बादशाहने सुना कि, वहाँ रामानन्द स्वामी महासिद्ध महात्मा हैं उनके आशीर्वादसे यह रोग दूर हो जायगा । बादशाह दुःखसे कातर हो स्वामी रामानन्दजीके आश्रमको पहुँचा । स्वामीजीने अपने नियमानुसार बादशाहका मुख देखना नहीं चाहा । बादशाहने बहुत विनती की किंतु स्वामीजीने नहीं माना ।

चौपाई ।

आये सिकन्दर शाहसुलताना । है ब्याधा बहु भेद न जाना ॥

रामानन्दकी सुनी बड़ाई। ताते शाह आप चलि आई ॥
आये मंडप जबै सुलताना। रामानन्द तब देखि रिसाना ॥
बादशाह सम्मुख भये जबहीं। रामानन्द मुख फेरा तबहीं ॥
बार अनेक तिहिते मुख फेरा। ताकी ओर क्रोधकरि हेरा ॥

तब बादशाहने क्रोध करके तलवारसे स्वामी रामानन्दका शिर काट लिया। स्वामीका शिर काटते ही बादशाहके शरीरमें ज्वाला और भी अधिक होगई। अब बादशाह विकल होकर वहाँही पृथ्वीपर गिर गया। लोगोंने हाथों हाथ शाहको उठाकर डेरेपर पहुँचाया।

रामानन्द स्वामीके कत्ल होनेका समाचार शहरमें तुरत फैल गया। बादशाहके जुलमको सुनकर धर्मात्मा लोग तो ईश्वरेच्छा समझकर चुप होरहे किन्तु अधर्मी मिथ्या धर्मके पक्षपाती लोग बढ़बढ़कर बातें करने लगे। कबीर साहबसे द्वेष रखनेवाले मुल्ला काजी और झूठ पण्डितोंने अच्छा दाव विचारा वे बादशाहको क्रोधित कराकर कबीर साहबको भी कत्ल करानेकी चिंतामें लगे।

उधर बादशाहको भी कुछ चेत हुइ तब उसने लोगोंसे पूछा कि यहां और कोई ऐसा नहीं है जिसकी कृपासे मेरे शरीरकी जलन दूर हो जावे। कबीर साहबके विद्वेषी प्रथमसेही घातमें लगे हुए थे। बादशाहके पूछते ही चट उन्होंने उत्तर दिया कि, कबीर नामक रामानन्दका एक शिष्य इस शहरमें बड़ा सिद्ध माना जाता है अगर वह आवे तो शाहकी बीमारी तत्काल अच्छी हो जावे। उन लोगोंकी बात सुनकर बादशाहने आज्ञा दी कि,पता लगावो कबीर साहब इस समय कहाँ विराजमान हैं, मैं इसी समय वहीं जाकर उनका दर्शन करूँगा। शाही नौकरोंने

शहरमें फिरकर उसी समय पता लगाया कि, कबीर साहब रामानंद स्वामीकी मृत्युका समाचार सुनकर स्वामीजीके आश्रमपर विराजमान हैं। बादशाह तुरत फिर उसी स्थानपर पहुँचा अब कबीर साहबके विद्वेषियोंको निश्चय हो गया कि, आज कबीर साहब अवश्य कत्ल किये जायँगे, क्योंकि बादशाहने गुरु रामानन्दजीको कत्ल किया है इससे कबीर साहब क्रोधमें होंगे। जब गुरुघाती बादशाहको अपने सम्मुख खड़ा देखेंगे तब कबीरसाहब क्रोध किये बिना रह नहीं सकेंगे और जैसे ही कबीर साहब बादशाह पर क्रोध करेंगे वैसे ही स्वामी रामानन्दके समान बादशाह उनको भी कत्ल करेगा। अज्ञानी लोग ऐसेही शोचते हुए बादशाहके पीछे पीछे रवाना हुए। मार्गमें न जाने वे क्या क्या मनोराज्य करते जाते थे।

बादशाह जैसे ही कबीरसाहबके सम्मुख पहुँचा, दर्शन पाते ही उसके शरीरकी सब जलन शान्त हो गयी। केवल जलन हीं नहीं जलनके साथ साथ मिथ्या धर्मद्वेष भी जो धर्मके नामसे अज्ञानियोंने उसके हृदयमें ठसा रखा था एकदम जाता रहा। कबीर साहबके दर्शनने उसका अंतःकरण ऐसा शुद्ध करदिया कि, उसके समान कट्टर मुसलमान बादशाह मिथ्या धर्माभिमान छोड़कर एकदम दौड़कर कबीर साहबके चरणोंपर गिरपड़ा और स्वामी रामानन्दजीके कत्लकरनेके अपराधपर पश्चात्ताप करके क्षमाका प्रार्थी हुआ। बादशाहके पश्चात्ताप और आधीनताको देखकर कबीरसाहबने उसके अपराधको क्षमा करके धैर्य्य दिलाया।

अपने विचारके विरुद्ध बादशाहको कबीर साहबके आधीन होते देखकर विद्वेषियोंके मनमें बड़ी ग्लानि आयी। उन्होंने

अपने हाथसे दाव चूकते देखकर परस्पर विचार करके दूसरा उपाय बलवा करने और कबीरसाहबके अनिष्ट करनेका शोचकर रामानन्द स्वामीके शिष्योंके पास गये। वे उस समय गुरुके वियोगसे ऐसे विह्वल हो रहे थे कि, उनकी सारासार विचारिणी बुद्धि उस समय लुप्त होरही थी । दुष्टोंने जाकर उन्हें समझाया कि, देखो कबीर अपने गुरुघातकसे ही घुल घुलके बातें कर रहा है। जात स्वभाव कभी छूटता है ? फिर तो अपनी जातिके ऊपर गया । मुसलमान मुसलमान एक हो गये। कबीरको गुरुके मृत्युकी भी चिन्ता नहीं है । तुम लोग तो गुरुका शोक मना रहे हो और वह बादशाहके साथ हँस रहा है। उन दुष्ट बिगाड़ुओंकी बातने स्वामीजीके शिष्यों-पर प्रभाव डाला, अखाडेके सब शिष्य और साधु एकमत हो-कर कबीर साहबके निकट आकर दुर्वचन बोलने और निन्दा करने लगे। प्रथम तो कबीरसाहब शान्तिसे उनके वचनको सुनते रहे पश्चात् जब उन लोगोंका क्रोध शान्त नहीं हुआ तब कबीर साहबने उन लोगोंसे कहा कि, तुम लोगोंकी श्रद्धा और विश्वासकी यहां तक ही समाप्ति हो गयी। गुरुने क्या तुम्हें यही उपदेश दिया था और गुरुके उपदेशका यही परिणाम तुम लोगोंने निकाला है ? गुरुको मृतक समझने वाले तुम लोगोंकी बुद्धि स्थूल देहतक ही समाप्त हुई है । आगे भी तुम्हारे शिष्य लोग स्थूलकी ही पूजामें अपना जीवन व्यतीत करेंगे। उन्हें सत्यपदकी प्राप्ति कदापि नहीं होगी। जब स्थूलके करेसे निकलकर सद्गुरुकी शरणको प्राप्त होंगे तब सत्यपदको पावेंगे। यदि तुम लोगोंको स्वामीके स्थूल शरीर-सेही सम्बन्ध है तो चलो स्वामीका शरीर तुम्हें जीवित दिखा

दूँ। इतना कहकर कबीरसाहब बादशाहको साथ लिये हुए वहां गये जहाँ स्वामी रामानंदका मृतक शरीर पड़ा हुआ था। वहां जाकर सबने देखा कि, स्वामीजीके दहिने अङ्गसे खूनके बदले दूध बह रहा है और बाईं ओरसे रक्त निकल रहा है । यह आश्चर्य देखकर सब चकित होगये। बादशाहने कबीर साहबसे पूछा कि इसका क्या कारण है? लोहूके बदले दूध कैसे निकला?

सिकन्दर वचन ।

पय औ रुधिर चल्यो गुरु अङ्गा। शाह कहैं यह कौन प्रसङ्गा ॥

कबीर उत्तर ।

जेहि तन मान्यो शब्द हमारा । तेहिते चले दूधकी धारा ॥
कीन्ह कालहू केर विचारा । आधा अंग रुधिर अनुसारा ॥
अगले जन्म मुक्ति जो होई । अंकुरी जीव कहावै सोई ॥

ज्ञानसागर ।

रामानन्द स्वामीका पुनर्जीवन ।

पश्चात् कबीर साहबने एक सफेद चादर मँगाया और स्वामीजीका शिर तथा धड़ इकट्ठा जोड़कर ऊपर वही चादर ओढ़ादी। फिर बादशाह वगैरह ऐसे लोग जिनका दर्शन करना गुरु अच्छा नहीं समझते थे वे सब लोग अलग हो गये केवल कबीर साहबके सहित सब शिष्य लोग वहां रहगये, तब कबीर साहबने पुकारकर कहा हे गुरो! हे स्वामिन्!! अब राम राम कहनेका समय हुआ है । देखिये सन्ध्या निकट है । शिष्यवर्ग आपके दर्शनके लिये व्याकुल होरहे हैं,अब कृपाकर उठिये और सबको दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये ।

कबीर साहबके इतना कहते ही रामानन्द स्वामी राम राम कहते उठ बैठे ।

स्वामीजीके उठते ही शिष्य मण्डली आश्चर्य और आनंदसे कोलाहल करने लग गयी। कितने तो उपकार मानते हुए कबीरसाहबके पगपर आकर गिरे और कितने ही खड़े २ स्तुति करने लगे। कबीर साहबने सबसे कहा कि, यह सब गुरुकाही प्रताप समझो और गुरुकीही चरणबंदना करो।

स्वामी रामानन्दजी शिष्योंका कोलाहल और अपने निकट दूध और पानीकी बही हुई धारको देखकर आश्चर्यसे इधर उधर देखने लगे। इतनेमें सबको कबीर साहबकी स्तुति करते देखकर वृत्तांत जाननेके लिये जो आँख मूँदके ध्यान किया तो सब हाल उनपर प्रकट होगया। फिर तो बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे कबीर साहबके चरणोंपर गिरने ही जाते थे कि, कबीर स्वयं झुक गये और विनय करने लगे कि, स्वामिन्! आपके योग्य यह काम नहीं है। आप मर्य्यादा पुरुषोत्तम हो। आपको धर्मसेतुके तोड़नेका काम करना उचित नहीं है। आपको मैंने गुरु माना है। आप गुरुपद परही स्थित रहकर सब कुछ प्राप्त करसकते हैं। मुझे दास पदमें ही आनंद आता है। कबीर साहबकी ऐसी आधीनता, नम्रता और निरभिमानता देखकर स्वामी सहित सब शिष्य दंग होगये।

कबीर साहबकी महिमा देखकर वैरियोंके दांत खट्टे होगये। उधर बादशाहने भी सिंहासन मंगाकर तय्यार रखा जैसे ही कबीर साहब आश्रमसे बाहर हुए वैसेही बादशाहने आपको तख्तपर बैठाया और आप हाथ जोड़के सामने खड़ा होकर स्तुति करना आरम्भ किया।

कहते हैं कि उसी दिनसे रामानंद स्वामीने सब भ्रम और पाखण्डको अलग कर पर्दा वगैरह हटा दिया और सब जातिके

मनुष्योंको अपने सम्मुख आनेकी आज्ञा दे दी। उसी दिन यह कहावत भी प्रसिद्ध हुई।

हरिको भजे सो हरिका होय। जाति पांति पूछै नहिं कोय ॥

बादशाहका दोबार कबीर साहबका परचा देखना और उनपर पूर्ण विश्वास करना।

यह कौतुक देखकर वैरियोंके दांत खट्टे हो गये और जिह्वा बंद हो गयी तब फिर सब ब्राह्मण और काजी जो कबीरसाहबसे द्वेष रखते थे बादशाहसे फरियाद करने लगे कि, यह कबीर बड़ा काफिर है। इसने जादूसे रामानंद स्वामीको जीवित किया है। और हिंदू तथा मुसलमान दोनों दीनोंका खण्डन करता है और अपनेको परमेश्वर कहता है। प्रत्यक्षमें ही पुकारता फिरता है कि, मैं समस्त संसारका रचयिता हूं और सदैव कुफ्र बकता रहता है। तब बादशाहने कबीर साहबसे पूछा।

शाह सिकंदर बोलता, कह कबीर तू कौन।
गरीबदास गुजरे नहीं, कैसे बैठा मौन ॥

उत्तर कबीर साहबका।

हमही अलख अल्लाह हैं, कुतुब गोस गुरु पीर।
गरीबदास मालिक धनी, हमरो नाम कबीर ॥
मैं कबीर सर्वज्ञ हूँ, सकल हमारी जात।
गरीबदास पिण्ड प्राणमें, युगन युगनसँग साथ॥
शाहसिकंदर देखकर, बहुत भए मिसकीन।
गरीबदास गति शेरकी, थरकीं दोनों दीन ॥

जब कबीर साहबने सर्व साधारणके सामने बादशाही इजलासमें अपने परमेश्वर होनेका दावा किया और खुल्लमखुल्ला

कहा कि, मैं समस्त सृष्टिका रचयिता हूं। तब बादशाहने एक गाय मँगवायी और अपने सामने हलाल करवाकर कबीर साहबसे कहा कि, यदि आप परमेश्वर हो तो इस गायको जीवित करो। कबीर साहबने बादशाहसे कहा क्या ईश्वरकी परीक्षा इसीसे होती है तुम्हारे पीरने तुम्हें यही उपदेश किया है ? इतना कहकर—

चुटकी तारी थाप दे, गऊ जिलाई बेग।
गरीबदास दूहन लगे, दूध भरी है देग ॥

जब शाहने गायको हलाल करवाया और कबीर साहबसे कहा कि,इस गऊको जीवित करो तब कबीरसाहबने उस गायको थापी दिया, चुटकी मारा, उसी समय वह गाय उठ खड़ी हुई और उसका सब घाव तथा दर्द मिट गया। उसका स्तन दूधसे भर गया और उसके दुग्धसे बरतन भर गये जिसको (उस दुग्धको) पी करके लोग अत्यन्त हर्षित हुए। और शाह सिकन्दर तथा उसके सभासद्गण इस कौतुकको देखकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए। बादशाहने विशेष श्रद्धा विश्वास किया।

शेखतकीका क्रोध और कबीर साहबकी कसनी।

जब शाह सिकन्दरके पीर शेखतकीने देखा कि, अब तो शाह सिकंदरने कबीर साहबपर बहुत विश्वास किया और उनकी अत्यन्त प्रतिष्ठा तथा मर्यादा करता है तब वह जल मरा, कारण यह कि, वह बड़ा ही द्वेषी तथा ईर्षा करनेवाला था। तब उसने बादशाहसे कहा कि ऐ सिकन्दर! आपने जोलाहेसे प्रेम तथा मुझसे वैर किया। तब बादशाहने कहा कि, ऐ गुरुजी ! आप तो मेरे पीर हो और वह एक दुरवेश (साधु) है। आपने आज्ञा दिया था कि, गुरु तथा फकीर

स्वयम् परमेश्वर हैं। आप और कबीर एक ही हैं। मैं जलनकी बीमारीसे मर रहा था, मेरे जाते हुए प्राण उसने रख लिये और मैंने घातक रोगसे आरोग्य लाभ किया।

जब बादशाहने ऐसा कहा तब शेखतकी चुपचाप अपने डेरेको चले गये। शेखतकी और बादशाहसे जो जो बातें हुईं उन सबोंका पता लगाकर वैरियोंने अपने मतलबका अवसर पाया। जब शेखतकी अपने डेरेमें बैठे तब वे लोग शेखतकीके पास आकर एकत्रित हुए। और ब्राह्मण तथा मुल्ला सब मिलकर कहने लगे कि, यह कबीर बड़ा काफिर है। यह हिन्दू तथा मुसलमान दोनोंकी निन्दा करता है। हम लोग गुरु तथा देवताके नामपर जो बलिप्रदान करते अथवा कुरबानी चढ़ाते और गऊ बकरी मुरगा चढ़ाते हैं उसको देखकर यह हम लोगोंको कसाई कहता है। इसको समस्त काशीवासी मानते हैं और हमारी कोई बात नहीं पूछता, यदि यह जोलाहा किसी प्रकार मारा जावे तो हमारी छातियोंपरका भारी बोझा टल जावे।

जब शेखतकीने ब्राह्मणों तथा मुसलमानोंसे ऐसा सुना तब अत्यंत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि, जोलाहेसे और मुझसे तो पहलेसे ही वैर हो रहा है और अब तुमलोग इस बातपर उद्यत हो तो मैं निश्चय कबीरका वध करूंगा उसे कदापि जीवित न छोडूंगा। मेरा नाम शेखतकी है और मैं बादशाह सिकंदरका पीर हूँ। देखूं तो वह मेरे हाथसे किस प्रकार बचता है। चाहूँ तो उसको नदीमें डुबवाऊं, चाहूं तो अग्निमें दहन कर दूं, चाहूं तो दीवारमें चुन दूं, चाहूं तो टुकड़े टुकड़े काटकर चूरा करूं और यदि चाहूं तो देगमें चुरा डालू

यदि चाहूं तो तोपके सामने रखकर उड़ाऊं, चाहूं तो कुएँमें बंद कर दूँ और चाहूँ तो हाथीसे चिरवा डालूं ।

यह बात सुनकर काजी तथा पण्डितगण अति प्रसन्न हुए और शेखतकीकी स्तुति करने लगे कि, क्यों न हो ? वाहवा आपसे सब कुछ होगा, अब आप कृपा करें कि, यह जोलाहा किसी प्रकार मारा जावे ।

यह बात सुनकर शेखतकी बादशाहके पास चले और जाकर कहा कि, ऐ सुलतान ! तू मेरा कहना मान ले और इस जोलाहेके कत्लकी आज्ञा दे । इसने बड़ा कुफ्र मचाया है, यदि तू इसको मरवा न डालेगा तो मैं तुझको शाप दूंगा जिससे तेरा सत्यानाश हो जायगा ।

यह बात सुनकर शेखतकीको बादशाहने समझाया कि, ऐ पीरजी ! आपने तो मुझसे कई बेर कहा था कि, पीर फकीर स्वयम् परमेश्वर हैं तब आप क्योंकर कबीर साहबके प्राणघातके निमित्त आग्रह करते हैं, उन्होंने तो आपकी कोई हानि नहीं की फिर आपने क्यों ऐसा कुफ्र मचाया ?

शाह सिकन्दर वचन ।

कहो कबीरके मारन ताईं । कुछ न हमारो यहां बसाई ।
पीर फकीर जात अल्लाहा । मेरो जोर न पहुँचे ताहा ॥
जो वह होते रैयत, तो हम करते जोर ।
वह अलमस्त फकीर है, तहां न फावै मोर ॥
तुमहूँ कही समझाय, पीर फकीर अल्लाह ।
अब तुम कहत मारने, यह न होय हम पाह ॥
अहो पीरजी तुम वह एका । अपने मनमें करो विवेका ।
इन कुछ तुमरो नाहिं बिगारा । काहे तुमने कुफ्र पसारा ॥

बुजुर्ग सब नेकी फरमावे । जोर जुल्म कुछ ताहि न भावे ॥
कहा हमारा कीजिये, छोड़ दीजिये रार ।
सुलह कुल्ह दे बैठिये, अल्ला ओर निहार ॥

शेखतकी वचन ।

कहे तकी सुलतान सुन, तुझे नहीं कछु दोष ।
जो मैं कहूं सो मानिये, कर मेरो सन्तोष ॥

सिकन्दर वचन ।

कहे सिकन्दर पीर सुन, मेरो शिर बरु लेहु ।
फक्कड़ कबीर न मारिये, यह माँगे मोहि देहु ॥
सुन्ते ही तकी क्रोध प्रचारा । शिरसे ताज जमींपर मारा ॥
निपट विकल देखा तेहि भाई । तब हम शाहसे कहा बुझाई ॥

कबीर वचन ।

कहै कबीर सुनो सुलताना । करो पीरको वचन प्रमाना ॥
पीर कहै सो करो तुम, हमें नहीं कुछ त्रास ।
हमहूं कहैं सत नाम बल, कहैं कबीर सुदास ॥

सिकन्दर वचन ।

कहै सिकन्दर सुनो जी पीरा । मन मानै सो करो कबीरा ॥
डारो मार कबीरको, हम नहिं मानैं ऊन ।
ताका कबहुँ न भला हो, जो करे फक्कड़का खून ॥

शेखतकी वचन ।

शेखतकी तब कहे रिसाई । है कोइ बाँध कबीरा भाई ॥

गंगामें डुबाया जाना ।

शेखतकी आपै उठै, काजी पण्डित झार ।
बाँध बाँध सब कोइ कहे, कोइ न करे गोहार ॥
बाँह बाँध पग बाँधके, बोर गंगजल नीर

नहिं संशय निश्चित होइ, निर्भयदास कबीर ॥
गंगाजलपर भइ आसन, बंद परे खहराय।
जन कबीर सत नाम बल, निर्भय मंगल गाय ॥
शाह सिकन्दर देखही, औ ठाढ़े सब लोग।
धन्य कबीर सब कोइ कहै, शेखतकी भा सोग ॥
शेखतकी तब मींजै हाथा। सूखे मुँह नहिं आवै बाता।

सिकन्दर वचन।

शाह सिकन्दर जोर कर, कहै सुनो तुम पीर।
किसको बाँध डुबावहू, निर्भयदास कबीर ॥

जब शेखतकीने कबीर साहबको इस प्रकार लोहेकी शृंखलामें जकड़कर गंगामें डाल दिया उस समय जञ्जीरें गलकर जलके नीचे बैठ गईं और कबीर साहब जलके ऊपर आसन मारकर बैठे मंगल गा रहे थे।

यह कौतुक देखकर काशीके लोग धन्य कबीर २ कहने लगे। शाह सिकंदरने अपने पीरसे कहा कि ऐ पीरजी! आप किसको जलमें डुबाते हैं; कबीर साहब तो अछूते जलके ऊपर बैठे हैं। उस समय शेखतकीका मुँह सूख गया और मुँहसे बात नहीं निकली। तब शेखतकीने कहा मैं जानता हूँ कि कबीरने जादू किया, इस कारण वह नहीं डूबा। यदि अबकी मैं कबीरको पाऊँ तो अग्निमें जलादूँ—यदि वह अग्निसे बच जावेगा तो मैं उसको परमेश्वरका सत्य अंश समझूँगा।

उसी समय कबीर साहब गंगासे बाहर निकल आये और शाह सिकन्दरके निकट गये। आपको देखते ही शाह उठ खड़ा हुआ और अत्यन्त मान संभ्रम सहित कबीर साहबको अपने बराबर आसन पर बैठाया। यह देखके शेख अत्यन्त

क्रुद्ध हुआ, उसके नेत्र रक्तवर्ण हो गये। उसने कहा ऐ कबीर! तूने जादू किया इसी कारण जलमें नहीं डूबे । तब कबीर साहबने कहा कि ऐ शेखजी! जैसे आप हो वैसा मुझको मत समझो, मैं जादू क्या जानूँ; मुझको तो केवल साहब नामका आधार है।

आगमें जलाया जाना।

तब शेखने कहा कि अब आगसे बचो तब मैं आपपर विश्वास करूंगा। तब कबीर साहबने कहा कि जो आपकी इच्छा हो सो करो, अब आगमें जलाओ। तब शेखजीने बहुतसा काष्ठ मँगवाया और कबीर साहबका हाथ पांव बांधकर आगमें डाल दिया। उसी समय वह अग्नि बुझ गयी और बिलकुल ठंढी हो गयी।

तलवारसे काटा जाना।

फिर शाहसिकन्दरने अपने पीरको बहुत समझाया कि ऐ पीरजी! अब कबीर साहबसे आप वैर छोड़ दीजिये, पर शेखजीने इस बातको ग्रहण नहीं किया। फिर शेखजी तलवार लेकर अपने हाथसे काटने लगे—कबीर साहबकी शरीरसे तलवार इसप्रकार बाहर निकल जाती थी कि जैसे हवा अथवा आकाशसे कृपाण निकलकर पार हो जाय। कबीर साहबके शरीरपर तनिक चिह्न भी नहीं हुआ—और न कोई रोम मैला हुआ। शेखजी मारते २ थक गये।

देगमें चुराया जाना।

तब शेखजीने कबीर साहबको एक देगमें बंद करके और देगका मुँह भली भाँति बन्द करके अग्निपर धर दिया और स्वयं खड़ा हो देगके नीचे अग्नि जलवाने लगा। उस समय

बादशाहने समाचार भेजा कि पीरजी! आप किसको आंच दिलाते हैं; कबीर साहब तो मेरे पास बैठे हैं। तब शेखने देगका मुँह खोला तो उसको खाली पाया।

तोपपर उड़ाया जाना।

फिर शेखने कबीर साहबको तोपपर बांधकर उड़ाया, तोपमें जल भर गया।

हाथीसे चिराया जाना।

फिर हाथीसे चिरवाया और वह हाथी चींख मारकर भाग गया।

कुएँमें डुबाया जाना।

फिर शेखने आपको कुएँमें डाल दिया और उस कुएँको ईंट तथा पत्थरोंसे भर रहे थे और कबीर साहब शाह सिकन्दरके समीप जा बैठे। तब शाह सिकन्दरने अपने पीरके पास समाचार भेजा कि पीरजी! आप किसको कुएँमें बंद कर रहे हो कबीर साहब तो मेरे निकट बैठे हुए हैं।

जब शाहने समाचार भेजा तब शेखतकी शाहके पास आया और वहां कबीर साहबको बैठा देखकर लज्जित हुआ।

कमालका प्रकट होना।

तब शाह सिकन्दरने कबीर साहबका बडा संमान किया और आपको अपने साथ लेकर इलाहाबाद गया। एक दिन गंगातटपर बादशाह, कबीर साहब और शेख बैठे थे, उस समय गंगामें एक बालककी लाश बही जाती थी। शेखने कहा कि ऐ कबीर साहब! गंगामें जो मुरदा बहा जाता है उसको आप जीवित करो। तब कबीर साहबने कहा कि ऐ मुर्दे! "उठ कुदरतके कमालसे" तब वह उठ खड़ा हुआ।

जब कबीर साहबने उस मुरदाको जीवित किया,तब बादशाह और शेख एकदम आश्चर्यमें आकर बोल उठे कि, वाह आपने तो बड़ा कमाल किया। कबीर साहबने कहा अच्छा लो आजसे इस लड़केका नाम भी कमाल हुआ। यह जगतमें मेरा पुत्र कहलाकर प्रसिद्ध होगा। उसी दिनसे कमाल हुआ और वह कबीरका पुत्र कमाल कहलाता है।

इस प्रकार शेखने कबीर साहबसे बावन लीलाएँ देखीं तब बादशाह और शेखजी दोनों कर जोड़कर खड़े हुए और निवेदन करने लगे कि, ऐ कबीर साहब! आप परमेश्वर हो और आपही खुदा हो और आपही हमारे गुरु तथा पीर हो। हमारा सब अपराध क्षमा करो। तब कबीर साहबने कहा कि, आपका कुछ दोष नहीं है।

साखी–कंध कुल्हाड अघाल, मस्तक दीना भार।
गरीब शाह यों कहे, बखशो अबकी बार॥
तहँ सतगुरु लौलीन हो, परचा अबकी बार।
गरीबदास शाह यों कहे, अल्ला देव दीदार॥
सुनो काशीके पंडितो, काजी मुल्ला पीर।
गरीबदास उस चरण गहि, अल्ला अलख कबीर॥
यह कबीर अल्लाह है, उतरा काशी धाम।
गरीब शाह यों कहे, झगड़ मुए बेकाम॥
क्यों बिगड़ी डगरी दुनियां,कहता कबीर समूल।
गरीबदास उस वृक्षके, अनंत कोटि रँगफूल॥
ऐ कबीर तुम अल्ला हो, पलक बीच परवाह।
गरीबदास कर जोरके, ऐसे कहता शाह॥

तुम दयालु दरवेश हो, धर आय नररूप ।
गरीबदास शाह यों कहै, बादशाह जहाना भूप ॥
उठे कबीर करम किया, बरसै फूल अकाश ।
गरीबदास सेली चले, चँवर करे रैदास ॥
तीन एक चंडोलमें, रैदास शाह कबीर ।
गरीबदास चौरा करें, बादशाह बलबीर ॥
मुकुट मनोहर शीशधर, चढ़ै फील कबीर ।
गरीबदास उस पुरीमें, कोई न धरता धीर ॥

कबीर साहबके भण्डारेका वृत्तान्त ।

जब ब्राह्मणोंने देखा कि,अब तो कबीर साहबका माहात्म्य और भी अधिक हुआ और हमलोगोंकी कोई युक्ति नहीं चली, तब आपसमें सलाह करके यह निश्चय किया कि, अब ऐसी युक्ती करनी चाहिये जिसमें कबीरसाहबकी प्रतिष्ठा भंग हो जावे । तब उन लोगोंने बहुत ब्राह्मणोंको नियत किया कि, तुम लोग देश देशान्तरोंमें जाकर समाचार दो कि, अमुक दिवस कबीर साहबके घर भण्डारा है, सब संत महंत कृपा करके आवें । तब उन ब्राह्मणोंने डाढ़ी मूँछ मुँडवाय वैष्णव वेष बनाया और दो दो चेले कर बारह हुए । ये ब्राह्मण सब स्थानोंमें दौड़ गये और समस्त सन्त महन्तको समाचार पहुँचाया कि, अमुक दिवस कबीर साहबके यहां भंडारा है ।

यह बात सुनकर बहुत सन्त महंत उस दिवस कबीर साहबकी कुटीपर आये बड़ी भीड़ हुई । कबीर साहबने जब ब्राह्मणोंकी धूर्तता जान ली तब अपना एकतारा लेकर वनका मार्ग लिया ।

भोजनका समय निकट होता जाता है। अनगिन्ती साधु-

ओंकी भीड़ कबीर साहबकी पर्णकुटीको घेरे खड़ी है किन्तु कबीर साहबका पता नहीं है। कबीर साहबके न मिलनेसे भेषमें कोलाहल होने लगा। जिनके मनमें जो आया वही बकने लगा। यह हाल देखकर विद्वेषियोंकी बन आयी, सब अपने मनही मन अपनी सफलता जान प्रसन्न होने लगे। इतनेमें रसद बाटनेके समय नौ लाख बोरे खानेकी वस्तुओंके भर-कर केशव नाम वनिजारा आया और भण्डारा आरंभ हो गया। सब साधुओंकी सेवा तथा पहुनाई आरंभ हो गयी। किसीको यह जान न पड़ा कि, ये कौन लोग हैं तथा कहांसे आये हैं, जो भण्डारा कर रहे हैं। पन्द्रह दिन पर्यंत बराबर भण्डारा होता रहा, इसके उपरान्त समस्त सन्त महन्तको भेंट तथा वस्त्रादि देकर केशवने बिदा किया और सब धन्य कबीर धन्य कबीर और जय जय कबीर कहते हुए बिदा हुए और विद्वेषी ब्राह्मण सब मुँह पसारकर रह गये, कुछ न बना।

लक्ष्मीजीका कबीर साहबको लुभाने आना।

विष्णुने लक्ष्मीजीसे कहा कि तीनों लोकमें तो ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारे नयनबाणद्वारा आहत न हुआ हो और तुम्हारी मोहिनी मूर्त्ति और तुम्हारी कटाक्षद्वारा आत्म विस्मृत न कर गया हो, पर जब तुम कबीर साहबपर अपना जादू डालोगी तब मैं तुम्हारे मन-मोहन मंत्रकी प्रशंसा करूंगा, तुम काशीजीको जाओ और कबीर साहबको लुभाओ, तब लक्ष्मीजी रूप बदलकर काशीमें कबीर साहबके पास अत्यंत हावभावके साथ आयीं और कबीर साहब-के सामने खड़ी होकर कहने लगीं कि, ऐ महाराज! आप मुझको अपने घरमें रक्खो, मैं आपके साथ निवास किया चाह-ती हूँ। तब कबीर साहबने उसकी ओर दृष्टिपात भी नहीं किया

और कहा कि, ऐ लक्ष्मी ! तू मेरे समीप क्यों आयी है ? क्या स्वर्गलोक उजाड़ पड़ा है जो तू मेरे पास यहां आयी है, मुझे तेरी कामना नहीं है, तू यहांसे शीघ्र चली जा तब लक्ष्मी निराश होकर वैकुण्ठको पलट गयी।

फिर विष्णु आये और कहने लगे कि, कबीर साहब ! आप जो कुछ माँगो राजकाज धनसम्पत्ति सो सब मैं तुमको दूँ। तब कबीर साहबने कहा कि, इन सब वस्तुओंकी तो मुझको कामना नहीं है, यदि तुम्हारे पास वह नाम हो कि, जिससे आवागमन मिट जावे तो वह मुझको दो। तब विष्णुने कहा कि,यह तो मेरे अधिकारसे बाहर है और धन्य कबीर धन्य कबीर कहते हुए वैकुण्ठको पलट गये।

यह सब कौतुक जब सिकन्दरशाह आप देख चुका तब उसने कबीर साहबको उत्तम वस्त्र पहनाये और जड़ाऊ मुकुट शीशपर रक्खा और आपको हाथीके ऊपर सवार करा और सत्यगुरुके पीछे आप खड़ा हुआ और चँवर करता तथा सत्य गुरुकी प्रशंसा करता हुआ अपने साथ ले चला। यह लीला देखकर समस्त काशीके लोग चकित हो रहे और ब्राह्मण और मुल्ला काजी इत्यादि सब लज्जित होकर रह गये। शाहसिकन्दर कबीर साहबको दिल्लीको ले गया।

इति श्रीकबीर चरित्रबोध प्रथम भाग समाप्त।

कबीर चरित्र।
द्वितीय भाग।

आश्चर्य चरित्रोंका वर्णन।

सम्मनभक्तकी कथा।

एक बार कई संतोंको साथ लिये हुए कबीर साहब सम्मन भक्तके घर गये। समनकी स्त्रीका नाम नेकी और पुत्रका नाम शिव था। जिस दिन कबीर साहब सम्मन भक्तके घर गये उस दिन खानेकी कुछ भी सामग्री नहीं थी। कई घरोंमें उधार माँगने पर भी निराश होकर सम्मन अपने पुत्रके साथ किसीके घरमें चोरी करनेका विचार करके बाहर हुआ और एक साहूकारके घरमें जाकर सेंधमार कर शिव अन्दर गया वहाँसे आवश्यकतानुसार खानेकी सामग्री लेकर बाहर खड़े पिताको दिया। जब शिव सेंधसे बाहर निकलने लगा। तब महाजनने भीतरसे पांव पकड़ लिया। तब शिवने अपने पितासे कहा कि, मैं तो पकड़ा गया अब मेरी हुरमत जाती रहेगी, इस कारण तू मेरा शिर काट ले-जिसमें मैं पहचाना न जा सकूँ। तब सम्मनने अपने पुत्रका शिर काट लिया और आटा सीधा और अपने पुत्रका शिर लेकर अपने घर आया। शिवका शव वहांही पड़ा रहा। सम्मनने अपने बेटेके शीशको एक ताकपर रखदिया और आटा सीधा अपनी स्त्रीको देकर कहा कि, भोजन तय्यार कर रोना नहीं। यदि रोवोगी और दुःख प्रकट करोगी तो साधु भोजन नहीं करेंगे। तब नेकीने तुरंत भोजन तय्यार किया और सम्मन उन तीनों साधुओंके निमित्त भोजन ले गया तीन पत्तल कबीर साहबके सामने रख दिये और कहा कि, महाराज! आप तीनों साधु भोजन

कीजिये। तब कबीर साहबने तीन पत्तलके छः टुकड़े किये और छः भाग करके कहा कि, सम्मन! अब तुम अपने पुत्रको बुलाओ कि, हम छः मनुष्य एक साथ भोजन करें। सम्मनने कहा कि, महाराज! हम तीनों पीछे आवेंगे आप तीनों संत पहले भोजन कर लीजिये। कबीर साहबने कहा कि ऐसा कदापि न होगा, हम सबके सब एकत्रित भोजन करेंगे। जब सम्मन अनेक प्रकारका बहाना करने लगे, तब कबीर साहबने कहा कि, शिव तू कहाँ है? तब शिवके शीशसे शब्द निकला कि, महाराज! मैं किस प्रकार आऊं? मेरा तो शीश कटा हुआ ताकपर धरा है और धड़ कहीं पड़ी है, तब कबीर साहबने कहा कि, शिर तो चोर डाकू और ठग इत्यादिके कटते हैं। भक्तोंके शीश नहीं कटते तू चला आ। जब इतना कबीर साहबने कहा तब शिवका शव आकर मस्तकसे मिल गया। और वह उसी समय जैसा था वैसा जीवित होकर प्रसन्नतापूर्वक कबीर साहबके पास आ बैठा और छः मनुष्योंने भोजन किया।

कबीर साहबका भैंसेसे वेद पाठ कराना।

एक बेर कुछ वैरागी जो रामानन्दके चेले थे कबीर साहबके सहित अपने गुरुद्वारे दक्षिण देश तोतादरीको चले। एक भैंसा भी अपने साथ ले लिया। उसके ऊपर सब साधुओंने अपनी गुदड़ी तथा कठारी इत्यादि लादली। जब चलते चलते अपने गुरुद्वारे जो स्थान रामानुज स्वामीका है वहां पहुँच गये। रामानुज स्वामीके सम्प्रदायी आचारी हैं वे स्नानादिका बहुत ध्यान रखते हैं और अपने हाथसे परदा करके भोजन बनाते और भोजन करते हैं। यदि किसी शूद्रकी छाया भोजन

पर पड़ जावे तो वे उसको नहीं खाते हैं, उन लोगोंमें जातीय अभिमान भी विशेष है। प्रायः वे जातिके ब्राह्मण होते हैं। उन आचार्योंने कबीर साहबको अपने बराबरमें बैठाकर भोजन कराना उचित न समझा इस कारण उन लोगोंने एक बहाना निकाला और कहा कि, जो कोई वेदकी ऋचा पढ़े वह हमारे साथ बैठकर भोजन करे जिसको वेद पाठ न आवे वह हमारी पंक्तिमें न बैठे। सबोंने वेदका कोई कोई विशेष भाग पढ़ पढ़-कर सुना दिया। उन लोगोंका मुख्य अभिप्राय यही था कि, कबीर साहब वेदपाठी नहीं हैं, इस बहानेसे हम अपनी पंक्तिमें कबीर साहबको न बैठावेंगे। जब कबीर साहबकी पारी आई तब कबीर साहबने भैंसेके शीशपर हाथधर दिया और कहा कि, ऐ भैंसे! तू वेद पढ़। तब वह भैंसा अत्यन्त स्वच्छता और स्वरके साथ वेद पढ़ने लगा। जब उस भैंसेको वेद पढ़ते देखा तब समस्त आचारी कबीर साहबके चरणोंपर गिरे और अपना अपराध क्षमा करवाया।

रविदासका झगड़ा।

कबीर साहब तथा रविदासजीसे सत्संग हुआ। तब रविदा-सजीका पक्षपात करनेके निमित्त देवी तथा ब्रह्मा विष्णु शिव सब आये, कबीरसाहबने सबको परास्त कर दिया।

जहांगस्तका वृत्तान्त।

जहांगस्तशाह एक सिद्ध साधु था, और वह समस्त भारत-की सैर किया करता था। उससे साधुओंने पूछा कि, तुमने कभी कबीर साहबका दर्शन किया? तब जहांगस्तशाह काशीको चले। कबीर साहबने जान लिया कि, जहांगस्त शाह आते हैं। तब कबीर साहबने एक सूवर मँगाकर अपने द्वारपर

बँधवा दिया। जब जहांगस्तने दूरसे कबीर साहबकी कुटीको देखा और द्वारपर सूवर बँधा हुवा पाया तब बड़े क्रुद्ध हुए और झल्लाकर पलट पड़े। तब कबीर साहबने पुकारा कि, ऐ जहांगश्त! क्यों पलटे जाते हो? मेरे समीप आओ। इतनी बात सुनकर जहांगश्तने मालूम कर लिया कि, कबीर साहबने जान लिया और मुझको पहचान लिया। तब उनके मनमें निश्चय होगया कि, कबीर साहब कोई सिद्ध पुरुष हैं। वहांसे पलटे और कबीर साहबके पास आकर कहने लगे कि, मैंने सुना था कि, कबीर साहब बड़े सिद्ध हैं इस कारण मैं आपसे भेंटके निमित्त आया था। आपने द्वारपर हराम बाँध रक्खा है, यह कैसी बात है? यह बात सुनकर कबीर साहबने उत्तर दिया कि, ऐ जहांगश्तशाह! मैंने तो हरामको अपने घरके बाहर बाँधा है आपने हरामको अपने भीतर बाँध रक्खा है। फिर बाहर निकाल देना अच्छा कि, भीतर बाँध रखना अच्छा। कारण यह कि, क्रोध अहंकार मद आदि सब हराम हैं, सो तुम्हारे भीतर हैं। जिसको तुमने हराम समझा है वह हराम नहीं बरन् क्रोध हराम है। इस शिक्षासे जहांगश्तशाह प्रसन्न हो गये संध्याका समय निकट आया तब जहांगश्तशाहने इच्छा प्रकट की कि, मैं मक्कःमें निमाज पढ़ा चाहता हूँ। कबीर साहबने एक पलभरमें मक्कःमें प्रवेशित करा दिया। यहां फिर सिद्धोंके बीच जहांगश्तसे जाया न जावे तब कबीर साहबने उनको वहां भी पहुँचाया, तब जहांगश्त अधीन हुए।

रामदासको विष्णुदर्शन ।

रामदासनामक धनाढ्य एक ब्राह्मण जागीरदार था। वह दक्षिण देश नर्मदा नदीके किनारेपर रहता था। एकवार कबीर साहब

उसके गाँवके निकट भ्रमण करते हुए पहुँचे और विश्राम करनेके लिये नदीतटपर बैठे। जब रामदास स्नान करनेके निमित्त गया तो वहां कबीर साहबको बैठे देखा, तब उसने निवेदन किया कि, महाराज ! आप समर्थ हो मुझको विष्णु-दर्शन करवाओ। तब कबीर साहबने उससे कहा कि कल दोपहरको विष्णु तुम्हारे घरपर जावेंगे। यह बात सुनकर रामदासको निश्चय हुआ कि, कबीर साहबका वचन हुआ है। अब विष्णु निश्चय कल मेरे घर आवेंगे तब उसने अपने घर जाकर बड़ी तैयारी की दूसरे दिवस घरको भली भाँति स्वच्छ और पवित्र कराया बिछौने इत्यादि बिछवाये और नानाप्रकारके स्वादिष्ठ भोजन पकवाये। और सिंहासन इत्यादि रखकर प्रतीक्षा करते हुए बैठे कि, अब विष्णु महाराज आया चाहते हैं। कुछ कालके उपरान्त देखा तो एक भैंसा कीचड़से लत-पत आया और उस फर्शके ऊपर बैठ गया। तब रामदासको अत्यंत क्रोध आया कि, इस भैंसेने फर्शको बिगाड़ दिया। सोंटा लेकर इस भैंसेको मार भगाया जब दिवस व्यतीत हो गया कोई नहीं आया। तब वह ब्राह्मण निराश हुआ। जब प्रातःकाल वह नदीस्नानके निमित्त गया तब फिर कबीर साहबको उसी स्थान पर बैठा देखकर कहा कि, महाराज ! मुझको विष्णु महाराजका दर्शन तो न हुआ आपकी बातें मिथ्या कैसे हुई। तब कबीर साहबने कहा कि, ऐ रामदास ! मेरे कथनानुसार विष्णु तुम्हारे घर गये परन्तु तुमने अच्छी विष्णुपूजा की, सोंटे मारकर भगादिया। यह बात सुनकर वह ब्राह्मण लज्जित तथा दुःखी हुआ। कारण यह कि, विष्णुका भक्त था इससे जान लिया कि, विष्णु भैंसाके सरूपमें थे।

कमालीका प्रकट होना।

कमालको कबीर साहबने मुरदासे जीवित किया तब शेखतकीने कहा कि, मैं इस लीलाको नहीं मानता कारण यह कि, यह लड़का सकतेमें था इस कारण जीवित होगया—मेरी बेटी आठ दिवसोंसे कब्रमें मरी पड़ी है यदि आप उसको जीवित करें तब मुझे विश्वास हो। कबीर साहब सिकन्दर शाह और शेखतकी सहित उस लड़कीकी कब्रपर गये। वहां पहुँचकर कबीर साहबने पुकारा 'उठ शेखतकीकी बेटी' वह नहीं उठी; फिर कहा ' उठ शेखतकीकी बेटी ' फिर भी वह न उठी, तब तीसरी बेर कबीर साहबने कहा उठ कबीरकी बेटी उस समय वह लड़की जीवित होकर कब्रसे निकल पड़ी। शेखतकी उसके जीवित होनेसे उसका हाथ पकड़कर अपने घरको ले चले; तब उस लड़कीने कहा कि, मैं तुम्हारे नामसे जीवित नहीं हुई हूँ—वरन् कबीर साहबके नामसे उठी हूं। अब म कबीर साहबकी बेटी हूं अब मैं इनके साथ रहा करूंगी, तुम्हारे गृहपर न जाऊंगी। वही लड़की कबीर साहबकी बेटी प्रसिद्ध हुई और उसका हृदय सत्यगुरुकी कृपासे प्रकाशित होगया।

तेरह गाड़ी कागजोंका लिख जाना।

बादशाहने तेरह गाड़ी सादे पुस्तकोंकी कबीर साहबके पास भेजी और कहा कि, मैं तब विश्वास करूंगा जब आप उन समस्त पुस्तकोंको ढाई दिवसमें लिख देवें। जब वे पुस्तकें कबीर साहबके पास पहुँची तब कबीर साहबने अपनी लाठी उन सब पुस्तकोंपर फेरकर कहा कि, इन लिखी हुई किताबोंपर क्या लिखें? बादशाहको यह लीला देखकर विश्वास होगया कि, कबीर साहबने उन ग्रंथोंको दिल्लीमें गड़वा दिया।

ग्रन्थोंमें लिखा है कि, जब मुक्तामणि साहबका समय आवेगा और उनका झण्डा दिल्ली नगरीमें गड़ेगा तब वे समस्त पुस्तकें पृथ्वीसे बहिर्गत होंगी। सो मुक्तामणि साहबका अवतार वंशकी तेरहवीं पीढीमें होगा । तब वंशगुरुगद्दी दिल्लीमें स्थिर होगी।

सर्वानन्दका वृत्तान्त ।

सर्वानन्द ब्राह्मण भारतवर्षके समस्त नगरोंमें जाकर और पंडितोंके साथ शास्त्रार्थ करके विजयी हुआ था। कोई पंडित जब उसके सामने न ठहरा तब वह अपने घर आया और अपनी मातासे कहा कि, हे मातः ! अब तुम मेरा नाम सर्वजित् रक्खो और मेरे माथेपर विजय तिलक कर दो। क्योंकि, अब मेरा सामना करनेको कोई पंडित नहीं रहा । तब माताने कहा कि, ऐ पुत्र ! तूने काशीमें जाकर कबीर साहबके साथ भी वाद-विवाद और सामना किया था ? तब उसने कहा कि, नहीं । तब माताने कहा कि, जबलों तू कबीर साहबपर विजयी न होगा तबलों तेरा नाम सर्वजित् नहीं रक्खूंगी। तब सर्वानन्दने कहा कि, कबीर कैसा बड़ा पंडित है । मैं अब चलकर उसके साथ वादविवाद करता हूं। और बहुतसे ग्रन्थ और वेद इत्यादि लादकर काशीमें कबीर साहबके पास पहुँचे । कबीर साहबने कितनी लीलाएँ दिखलाईं तो भी सर्वानन्दको निश्चय नहीं हुआ।

अन्तमें सर्वानन्द कबीर साहबके साथ वाद विवाद करने पर उद्यत हुए। सर्वानन्दने श्लोकोंकी झड़ी लगादी, यद्यपि कबीर साहब समझाते पर वह न मानते । बात बातपर श्लोक, प्रमाण, तथा पुस्तकोंकी साक्षी देते । तब कबीर साहबने देखा कि, इसके पीछे तो घमंडका भयानक रोग लगा है, यह

कदापि न हटेगा और न कहना मानेगा। तब कबीर साहबने कहा कि,ऐ सर्वानन्द अब तुम्हारी क्या कामना है और किस बातके इच्छुक हो ? तब सर्वानंदने कहा कि, मेरी विजय लिख दो तब कबीर साहबने कहा कि, मैं तो लिखना नहीं जानता तुम स्वयम् लिख लो तब सर्वानन्दने लिख लिया कि, कबीर साहब हारगये और सर्वानन्द जीत गये। भली भांति लिखकर तथा वह विजयपत्र कबीर साहब तथा अन्यान्य लोगोंको दिखलाकर अपने घरको चले और आनकर अपनी मातासे कहा कि,माता मैं कबीर साहबसे वादविवाद करके उनपर विजय पागया हूँ। तब माताने कहा कि,ऐ पुत्र ! मुझको तो विश्वास नहीं होता कि, तुम कबीर साहबपर विजयी हुए हो। तब सर्वानन्दने कहा कि, मैं विजयपत्र लिखवा लाया हूँ तू देखले। तब माताने कहा कि कागज निकालो। जब कागज निकाला और पढ़ा तो उसमें लिखा था कि सर्वानन्द परास्त होगए और कबीर साहब विजयी हुए। यह लिखा देखकर आश्चर्यान्वित हुए कि, यह तो मेराही लिखा था यह उलटा कैसे हुवा। कदाचित् मैं लिखनेमें भूल गया और मातासे कहा कि मातः ! मैं लिखनेके समय भूल गया अब पुनः जाता हूं और अत्यन्त सावधानीपूर्वक ले आऊंगा। तब सर्वानन्द पुनः कबीर साहबके पास आये और कहा कि, मैं लिखनेमें भूल गया अबकी बेर सँभाल कर लिखूँगा। तब कबीर साहबने कहा कि भली प्रकार सँभालकर लिखो। तब फिर सर्वानन्दने उसी विषयको भली प्रकार संभालकर लिखा और अपनी माताके समीप आकर प्रकट किया कि अब मैं सँभाल कर लिख लाया हूं। जब कागज खोला तो वही पूर्वकी बात लिखी पाई कि, कबीर साहब विजयी हुए तथा सर्वानन्द

परास्त हुए। जब इस प्रकार तीन बेर हुआ तब सर्वानन्दका निश्चय होगया कि, निस्सन्देह कबीर साहब ईश्वर हैं और चरणों पर आन पड़े और शिष्य हो गए। कबीर साहब तथा सर्वानन्दका विवरण भिन्न २ स्थानोंमें लिखा है।

चौरासी सिद्धोंका परास्त होना है।

एक स्थानपर नवनाथ चौरासी सिद्ध कबीर साहब तथा नानक साहब सहित एकत्रित थे। उस समय एक महाजन जो नानक साहबका परिचयी अथवा सेवक था जा पहुँचा, तब उसने विचारा कि, सन्त गुरुके समीप विना कुछ लिए जाना उचित नहीं कुछ भेंटके निमित्त ले चलना उचित है। तब उसने अपनी जेबमें हाथ मारा पर कुछ न पाया, परन्तु एक तिल उसके वस्त्रोंमें मिला। तब उसने उसी तिलको नानक शाहके समक्ष रक्खा—तब नानक शाहने कबीर साहबसे कहा कि, मैं इस तिलको इतने साधुओंमें किस प्रकार बांटूं—तब कबीर साहबने कहा कि, इस तिलको जलमें घोटकर सकल साधुओंमें बांटो तब नानक शाहने कहा कि, यहां तो जल भी नहीं है, किस प्रकार घोटें। यह बल आप ही में है इसको बांटिये। तब उस स्थानपर एक शुष्क नदी थी, उसको कबीर साहबने जारी किया और उसमेंसे जल भरकर उस तिलको घोटा और सब साधुओंको पिलाया और उसके पीनेसे अत्यन्त आनंद आया और उन्होंने कहा कि, कबीरजी मांगो जो मांगो सो हमलोग आपको देंगे। तब कबीर साहबने कहा कि, तुम लोग तो दरिद्री जान पडते हो मैं तुमसे क्या मांगू और तुम मुझको क्या देंगे? तब उन लोगोंने कहा कि, जो कुछ तुम मांगोगे सो हम तुमको देंगे। तब कबीर साहबने कहा पांचपैसेभर दरिद्रता

मुझको दो। तब नवनाथ चौरासी सिद्धोंने परामर्श किया कि, यह गुण तो हमलोगोंमें नहीं कारण यह कि, हम लोगोंको तो अपनी सिद्धि और जप तपका घमंड है। चलो ब्रह्मासे पांच पैसे-भर दरिद्रता मांगें। तब ब्रह्मलोकमें गए और पांच पैसेभर दरिद्रता ब्रह्मासे मांगी। ब्रह्माने शोच समझकर उत्तर दिया और कहा कि मेरे पास दरिद्रता कहां मैं तो इस बातका अहंकार करता हूं कि, मैं सृष्टिका उत्पन्न करता हूं यह अहंकार मुझमें है। तब नवनाथ और सब सिद्ध कैलासको शिवजीके पास गए और वही प्रश्न किया तब शिवजीने भी वही उत्तर दिया कि, मुझमें दरिद्रता तो नहीं कारण यह कि, मुझमें तो यह अहंकार है कि, मैं नष्ट करता हूं तब सब ओर ढूंढते २ थके परन्तु दरिद्रताको कहीं न पाया। अन्तमें विष्णुके पास गए और दरिद्रताके निमित्त प्रार्थना किया तब विष्णुने कहा कि, ऐ सिद्ध साधु पांच पैसेभर दरिद्रता अथवा जो कुछ दरिद्रता है सो सब कुछ उसीके पास है जिसने तुझको भेजा है। मेरे पास तो केवल तीन पैसेभर दरिद्रता है, जिसके कारण मैं समस्त संसारका रचयिता कहलाता हूं दरिद्रताके समूह तो स्वयम् कबीर साहब हैं, और दूसरा कोई नहीं। तब समस्त सिद्ध साधु कबीर साहबके पास पलट आए–और आपको दण्डवत् तथा प्रणाम करके प्रदक्षिणा किया। और समस्त वृत्तांत प्रकट किया। तब कबीर साहबने कहा कि, क्या मैंने तुमसे इतः पूर्व ही न कहा था कि, तुम लोग तो दरिद्री हो मैं तुमसे क्या मांगूं।

नानक बोध।

कबीर साहब नानक साहबके निकट पञ्जाब देशमें आए तब नानक शाह अत्यंत आवभगत तथा सन्मान सहित उनसे

मिले और कहा कि, जिस सेवाके निमित्त आप आज्ञा देवें उसको मैं करूं। तब कबीर साहबने आज्ञा दिया कि, पाँच दिवसकी उत्पन्न हुई बछियाके स्तनसे दूध दुहकर मेरा कमण्डलु भर दो–तब नानक शाहने कहा कि, पांच दिवसोंकी उत्पन्न हुई बछिया कैसे दूध दे सकती है? तब कबीर साहबने कहा कि, यही मेरी सेवा है तुम करो। तब नानकशाहने ढूँढ़ ढाँढ़ कर पाँच दिवसोंकी उत्पन्न हुई बछियाको उपस्थित किया, जब दूध लेनेको उसके समीप गए, तब वह बछिया लात चलाकर भाग गई। तब नानकशाहसे कबीर साहबने कहा कि, अब तुम जाओ और मेरे नामसे उस बछियासे दूध माँगो–और कमण्डलु उसके स्तनके नीचे रख दो। तब नानकशाहने बछियाके स्तनके नीचे कमण्डलु रखकर कबीर साहबके नामसे दूध माँगा और बछियाके स्तनसे आपसे आप इतना दूध निकला कि, वह कमण्डलु भर गया। तब कबीर साहबने नानक साहबसे कहा कि, ऐ नानकजी! आपने वंदना तो बहुत की परन्तु अमलों आपकी कमाईमें त्रुटि है। और आपका पंथ चलेगा और बहुत लोग आपकी आज्ञामें चलेंगे और भविष्यतमें ये रंग ढंग होंगे। और नानक शाहसे कबीर साहबने बहुत कुछ कहा–और इसी ग्रन्थमें नानक शाहके विषयमें भविष्य वाणी है। और नानक धर्म्मका विवरण किया जो भविष्यतमें होनेवाला है। और इसी स्थानपर यह साखी है। 'तिल घोटतारे लगे" इत्यादि है और इसी स्थानपर यह है।

ऐसो दाता सत्य कबीर, सूखी नदी बहावे नीर।
भूखेको खिलावै खीर, नंगेको पहनावे चीर॥

इत्यादि महाराजा श्रीरामचन्द्रजीको कबीर साहब (मुनीन्द्रजी) ने योगयुक्ति सब कछु सिखलाया और सीताके चुराये जानेके समय अत्यन्त कठिनता उपस्थित हुई और समुद्रोल्लंघन करना अत्यंत कठिन था–तब रामचन्द्रजीपर कबीर साहबकी दया हुई । और पत्थरोंपर सत्य नाम लिखा उसके कारण बहुतेरे पर्वत तथा पत्थर पैरने लगे। और पुल प्रस्तुत हो गया । और इसी साहबकी दयादृष्टिके कारण लंका पर विजय पाकर मंगलपूर्वक अपने घर पहुँचे । देखो ग्रन्थ ज्ञानसंबोध तथा अन्यान्य ग्रंथोंमें ।

कबीर साहबका बांसुरी बजाना ।

कृष्णचन्द्र बाँसुरी बजाते और गोपियोंका मन चुरालिया करते थे जब कबीर साहबने बाँसुरी बजाया तब तीनों लोक मोह गये। और जड़ चैतन्य सभी मोहित हो गए। और यमुना नदीका जल स्थिर हो गया। और स्थावर जंगम सभीको आनन्द आया वह बाँसुरी ऐसी बजी कि, फिर कभी न बजी । लोगोंने जाना कि, कृष्णचन्द्रने बजाया था । गोप तथा गोपियोंकी बड़ी कामना थी कि, वैसी बंसी पुनः बजे, परन्तु वह फिर किस प्रकार बजे ? उस बाँसुरीके बजानेवाले तो कृष्ण नहीं थे उसके बजानेवाले तो कबीर साहब थे और इस बाँसुरीकी प्रशंसा हंस कबीर किया करते हैं, जिनको इसका ज्ञान है ।

गोरखको जीतना ।

जब प्रथम कबीर साहब और गोरखनाथका सामना हुआ और गोरखनाथ कबीर साहबकी श्रेष्ठता तथा कीर्तिसे अनभिज्ञ थे तब गोरखनाथने कबीर साहबसे कहा कि, आओ हम

तुम वादविवाद करें। उस समय गोरखनाथने अपना त्रिशूल गाड दिया और कहा कि, आओ कबीर साहब उस त्रिशूलकी एकशाखापर आप बैठो और एकपर मैं बैठता हूं, तब वादविवाद करें। तब कबीर साहबने सूतके एक तारको आकाशकी ओर चलाया और शून्यमें उस सूतके ऊपर जा बैठे और कहा कि, नाथजी! आओ हम और तुम इस सूतपर बैठकर वादविवाद करेंगे,तुम्हारा त्रिशूल तो पृथ्वीसे लगा हुआ है। कबीर साहबकी यह लीला देखकर गोरखनाथ दंग हो गये।

गोरखनाथने कबीर साहबसे कहा कि, मैं छिपता हूँ आप मुझको ढूँढ़ निकालो, तब गोरखनाथ मेंड़क होकर जलमें छिप रहे। तब कबीर साहब उस मेंड़कको पकड़ लाये और कहने लगे कि, अब किधर जाओगे? तब गोरखनाथ पुनः अपने प्राकृतिक स्वरूपमें आयगे तब कबीर साहबने कहा कि, अब मैं छिपता हूँ तुम ढूंढलो। तब कबीर साहबने जलमें डुबकी मारी और जल होकर जलके साथ मिल गये और गोरखनाथ ढूंढ़ते २ थके और तीनों लोकमें ढूंढ़ते फिरे परन्तु कहीं पता नहीं लगा तब विवश हो बैठे। जब कबीर साहबने देखा कि, अब तो गोरखनाथ हारके बैठ गये तब कमण्डलुके जलमेंसे कबीर साहब प्रकट हो गये।

गोरखनाथने कबीर साहबके मारनेके निमित्त दो सर्प भेजे वे दोनों साँप कबीर साहबके पास आये और आपने उन दोनोंको अपने शरीरमें लगा लिया, जब बहुत विलंब हुआ और वे सर्प पलटकर नहीं गये तब स्वयं गोरखनाथ कबीर साहबके गृहपर पधारे और पुकारा कि,कबीरसाहब! बाहर आइये।

तब कबीर साहबने भीतरसे उत्तर दिया कि, नाथजी मेरे गृह दो अतिथि आये हैं, मैं सेवा सत्कारमें लगा हुआ हूं । तब गोरखनाथने जाना कि, कबीर साहब कैसे प्रतिष्ठित पुरुष हैं । और आपमें कैसी क्षमा तथा संतोष है । प्रथम तो गोरखनाथने कबीर साहबसे बहुत वाद विवाद किया और बहुत कौतुक देखे जब भलीप्रकार जान लिया कि, आप अद्वितीय हैं और मनुष्यमात्रमें दूसरा ऐसा कोई नहीं । और कबीर साहबने गोरखनाथका भलीप्रकार संतोष किया और बहुत कुछ कहा और सब कौतुक दिखलाये और गोरखनाथको भलीप्रकार निश्चय कराया कि, कबीर साहब स्वयं अलख अविनाशी हैं तब सत्यगुरुके चरणोंपर गिरे और शिष्य होकर परम गतिको पहुंचे और योग युक्ति सबको व्यर्थ समझा ।

सिद्ध बनादेना ।

जब कबीरसाहबने कमालीके मस्तकपर हाथ रक्खा तब उसका हृदय प्रकाशित हो गया और उपसर आरंभमे अन्तपर्यंत समस्त समयोंका वृत्तान्त प्रकट होगया और उसकी जिह्वासे ज्ञानके फौव्वारे छूटे और सब वृत्तांतोंका विवरण करने लगे और जब कब्रसे बाहर आतेही उसका हृदय प्रकाशित हो गया तब वह यह शब्द बोली ।

कमाली वचन शब्द ।

हंसा निकल गया मैं न लडीसी ।
पांच सहेली संग हैं मेली, पांचोंमेंसे मैं अकेली खडीसी ॥
नौ दरवाजे बन्द करलीने, दशवीं मोरी खुली जो पडीसी
न मैं बोली न मैं चाली, ओढ़े दोपट्टा किनारे खडीसी ॥
कहत कमालीकबीरकीबालकी, सादीसे मैं कुमारीभलीसी ॥

इसीप्रकार माई आमीन जो धर्मदास साहबकी स्त्री थी उसके शिरपर जो कबीर साहबने हाथ रक्खा उसकी जिह्वासे ज्ञान-सोता बहने लगा और सब वृत्तांत कहने लगी।

आमीन वचन शब्द।

साधो नाम सबनसे न्यारा लखि पुरन गुप्त विस्तारा।
जानेगा कोइ जाननहारा॥
जब नहिं अंशवंश निर्मायो, नहिं कछु किया पसारा।
चर औ अचर चराचर नाहीं, नहिं मनको विस्तारा॥
जब नहिं पुरुष नहीं तब ज्ञानी, यह मत सबसे न्यारा।
जब नहिं पांच अमी निर्माया, नहिं सोहंग विस्तारा॥
धर औ अधरधराधर नाहीं, नहीं पुरुषकी काया।
तब नहिं पूरम नहिं जल रंगी, नहिं तब जलकी छाया॥
धूप दीपलीला दहजा हैं, नहिं अदली औ तारा।
करमन कहै सुनो धर्मदासा, यह मत सबसे न्यारा॥

इसी प्रकार रानी इन्द्रमती राजा चन्द्रविजयकी जो रानी थी मंदोदरी राजा रावणकी स्त्री, माणिकमती राजा वीरसिंहकी स्त्री। लीलावती पुरती राजा योगधरकी पचास स्त्रियां, राजा अमरसिंहकी रानी, मीराबाई राजा उदयपुरकी रानी, क्षेम श्रीग्वालिन, और वह अनगिनत स्त्रियां जिनके माथेपर कबीर साहबने हाथ रक्खा वे सब परमधामको गयीं।

कबिर साहबका उपदेश।

तीन कालके जितने धर्मके अगुवा हैं और हुए, तथा होंगे उन सबसे कबीर साहिबकी शिक्षा पृथक् है—इस शिक्षाका मुख्य अभिप्राय यही है कि, गर्भका आवागमन बंद हो जावे। इस आवागमनका बड़ाभारी दुःख है। जिस शिक्षा तथा धर्मसे

बारम्बार जन्म और मृत्युका दुःख दूर हो वही मनुष्यका धर्म है। और उसी गुरु तथा शास्त्रको धारण करना मानुषिक बुद्धिका कर्तव्य है। जो कोई मनुष्य देह पाकर मुक्तिमार्ग न ढूँढे वह महा अभागा है। कारण यह कि,वह पुनः ऐसा समय न पावेगा और सदैव भवसागरमें डुबकियां खावेगा। योगयुक्ति तथा समस्त तंत्र मंत्र बंधनके प्रधान कारण हैं। यदि योग समाधिसे योगी अमर होता तो फिर कदापि कोई योगी न मरता। संन्यासी जो ब्रह्मके ध्यानमें रहते हैं सो ब्रह्म उनका भ्रम है सो संन्यासी भ्रमरूप होकर आवागमनमें पड़ा रहता है, सो ब्रह्म उनका भ्रम होकर भ्रममें फँसे रखते हैं। ब्रह्मा विष्णु शिव सनकादिक इत्यादि सब भ्रमनदीमें पड़ डुबकियां खारहे हैं इस भ्रमकी कोई सीमा नहीं है।

स्वयम् वेदके विना पढ़े किसीकी मुक्ति नहीं होती जो कोई ध्यानपूर्वक पढ़े और उसके विषयोंपर विचार करे और स्वसम्वेदकी आज्ञाओंपर भली भांति दृढ हो और समस्त मिथ्याओंसे पृथक् हो सो मनुष्य है और वही कालपुरुषके पञ्जेसे छुटकारा पावेगा। कंजूस, कामी, व्यभिचारी पुरुषको स्वसम्वेद पढ़नेसे किसी प्रकारका लाभ नहीं है।

अपने गुरुको स्वयम् सत्य पुरुष करके जानना और गुरुके मुँहसे स्वयम् सत्यपुरुष खाता पीता है और गुरुके शरीरसे वस्त्रादि पहनता है। जिसको गुरुकी बातपर विश्वास न होवे और जिसके मनमें घमंड हो तथा जिसके मनमें नम्रता न हो तो वह नरकमें जावेगा। सेवा सब पुण्योंसे बढ़ा चढ़ा पुण्य है। सेवाका कर्तव्य सबके ऊपर है जो गुरुकी सेवाका कर्त्तव्य पूर्ण करेगा उसका हृदय प्रकाशित होगा और उस गुरुकी ही

मूर्तिसे पारख गुरु निकलकर उसकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करेगा और कोई अपने गुरुके प्रतिका कर्त्तव्य न पालन करे और उससे अपने प्रतिका कर्त्तव्य पालन करावे और उसकी दी हुई वस्तुओंको मांगे तो वह चोर और ठग है। एक अवस्थामें गुरुकी सेवा न मांगी जावेगी जब कि, मनुष्य भली भांति डुबा रहे और दिनरात वंदनामें संलग्न हो जावे और किसी अन्य ओर ध्यान न हो और अपने शरीरकी चिंता भी न हो तब गुरुसेवा क्षमा होगी और गुरु उसकी बंदनाका भागी होगा। जबलों ऐसी अवस्था न हो तबलों गुरुसेवासे यदि अपनेको न बचायेगा तो उसके मनमें तेज न चमकेगा, इस कारण समस्त जीवन गुरुकी सेवा तथा उसकी आज्ञामें रहना उचित है। कारण यह कि, गुरुके प्रतिका कर्तव्य कभी किसीसे पूर्णरीतिसे निबह नहीं सकता है। केवल एक नामके प्रतिफलमें तीनों लोकोंमें कोई वस्तु नहीं हैं जो दी जावे। गुरु ही धर्मकी जड़ है और जड़के सींचनेसे डाल पात सब हरे होते हैं और निश्चयके वृक्षमें सब फल फूल लगते हैं।

कंजूसकी मुक्ति कभी नहीं होती यह कंजूस बहुत बड़ा शैतान है यह जिसके मनमें प्रवेशित होता है वह जीवित श्मशानीभूत है। यह एक घृणा उत्पादक लत है और इससे स्वयम् परमेश्वरको घृणा होती है और समस्त पीर पैगम्बर तथा सिद्ध साधु इसको बुरा जानते हैं। किसी प्रकारकी वंदना तथा सेवा मनुष्य करे परन्तु एक कृपणता ऐसी वस्तु है जिससे वह सब विनाश हो जाती है। और कंजूससिद्धकी समस्त सिद्धि धूलमें मिल जाती हैं।

साखी–कामी तो बहुतै तरे, क्रोधी तरे अनन्त ।
लोभी जिवडा ना तरै, कहैं कबीर सिधन्त ॥

साधुओंकी सेवा बहुत बड़ी पूजा है और भक्ति तथा मुक्तिकी देनेवाली है । और जो कोई साधुओंको भोजन इत्यादि देता है और उनकी आवश्यकताकी वस्तुओंको एकत्रित कर देता है उसकी समस्त कठिनाइयां और पाप दूर होते हैं और साधु-ओंकी कृपासे समस्त पदार्थ प्राप्त होते हैं और साधु समस्त युक्तियां बतलाते तथा समस्त अच्छे कार्योंको सिखलाते हैं और साधु नरकसे बचाते और वैकुण्ठको खींचकर ले जाते हैं और ज्ञान तथा मुक्तिकी समस्त युक्तियां समझाते हैं और समस्त भ्रम और धोखेको पृथक् कर देते हैं और साधु सत्यपदमें लगाते हैं और साधु समस्त संसारके पदार्थपर आज्ञा करते हैं। और साधु समस्त दुःख संतापका अपहरण करते और साधु समस्त पातकसे पृथक् हो जाते हैं। और साधु तो अनेक हैं परंतु वह साधु जो समस्त भ्रम तथा धोखको दूर कर दे और सत्य पदसे लगावे उस साधुसे विशेष प्रेम करना और उसीकी बंदना तथा सेवासे उसकी हार्दिककामना पूर्ण होगी।रोटी कपड़ा इत्यादि आवश्यकीय वस्तुओंका देना और मानसंभ्रम तो समस्त साधु-ओंका करना चाहिये परंतु विशेषतः वह साधु जो अपने स्वरूपमें मिलनेका मार्ग बतलावे वही साधुशिरोमणि है । साधुके विवर-णसे बाहर है । साधुओंकी सेवा तथा आज्ञापालन सौभाग्यके लक्षण हैं, वे बड़े बड़भागी हैं सो जो साधुओंकी संगत करते हैं साधुओंको भोजन देना बड़े पुण्यकारक कार्य है उसके समान अन्य कार्य जगत्में नहीं है । और साधुओंको वस्त्र देनेसे समस्त दुःख निवारण होते हैं। और जबतक साधुओंके शरीरपर

वस्त्र रहता है तबतक देनेवालेकी समस्त आपत्तियाँ उससे दूर रहती हैं। साधुकी सेवासे समस्त बंधनोंसे मुक्ति होती है। यदि साधुकी दया न हो तो कोई मनुष्य गतिको प्राप्त न होगा। साधुओंकी दयासे मनुष्य धर्म तथा संसारकी समस्त विद्या और बुद्धि प्राप्त करता है। कितनेक साधु ऐसे भी हैं जो सत्य पुरुषकी भक्तिसे भटकाते हैं और काल पुरुषकी भक्तिमें लगा देते हैं। सो उनकी शिक्षा और बातोंसे पहचान लेना चाहिये। ऐसा न हो कि, उनके धोकेमें आ जावें। व साधु कालपुरुषके दूत हैं उनसे सावधान रहना और जिस साधुमें अपने गुरुका ज्ञान और उसकी शिक्षा देखना उसकी मर्यादा तथा सेवा अपने गुरुके समान करना और धोखा धड़ी देनेवाले साधु अपनी वार्तालापसे पहचाने जाते हैं।

सत्य पुरुषकी भक्तिके अतिरिक्त और समस्त भक्तियां जाल तथा बंधनमें डालनेवाली हैं। कालपुरुषका विष ब्रह्मा विष्णु और शिव सनकादिकसे लेकर समस्त जीवोंमें समाया हुआ है। बिना सत्यगुरुकी दयासे कोई सत्य पदमें लग नहीं सकता है, समस्त शरीर तथा नक्षत्रोंमें काल पुरुषका विष छिपा हुआ है। जिसको सत्यगुरु अपनी ओर दया करके खींचे वह आवे और दूसरेमें क्या सामर्थ्य है कि, यमके नीचेसे निकल सके। धर्मरायके मंत्रने समस्त मनुष्योंकी बुद्धिको अंधी कर रक्खा है और किसीको इस विषयका ध्यान तथा सोच नहीं कि, मैं जान बूझकर क्यों कुएँमें पडता हूं मेरे पुरुषा तो सब इस धोकेमें पड़कर मरे, मैं इस अंधकारमय पथपर क्यों चलूं। इनकी बुद्धि डुबकियां खारही है और सत्यको मिथ्या तथा मिथ्याको सत्य मान रही है। और छुटकारेको बंधन तथा बंधनको

छुटकारा मान रही है। इनकी बुद्धि तथा इनका चित्त ठिकाने नहीं है। इनकी बुद्धि तथा पाशविक बुद्धिमें मनुष्यताका लेशमात्र नहीं है।

चार वेद तथा चार पुस्तकें ये आठों काल पुरुषके जाल हैं। इस जालमें फँसाकर उसने समस्त मनुष्योंको मार लिया और मनुष्योंको उसने ऐसा धोखा दिया कि, जितने नाम सत्य पुरुषके थे वे सब अपने नाम प्रकट किये। और सत्य पुरुषके धोखेमें समस्त मनुष्य कालपुरुषकी बंदनामें लगे और कालपुरुषने सत्यपुरुषका नाम छिपाया और यह भेद ब्रह्मा विष्णु और शिवसे भी नहीं कहा इस धोखेसे समस्त मनुष्य इस शिकारीके शिकार हो गये। जो कोई चार वेद तथा चार पुस्तकोंसे पृथक् होगा उसको सूक्ष्म वेदकी ज्ञानप्राप्ति होगी। जिनका प्रेम पुरुष्म वेदसे है वे स्वसम्वेदसे कैसे प्रेम कर कसते हैं।

विष्णुको तीनों लोकोंकी सरदारी तथा अधिकार मिला है उसीके अधीन सब हैं। निर्गुण निरञ्जन और सगुण विष्णु यही समस्त लोकोंके रचयिता तथा कर्ता धर्ता हैं,तीनों लोकोंमें विष्णु सम्यक् रूपसे उपस्थित रहते हैं। दोनों रूपसे निरंजन तीनों लोककी ठकुराई करता है।

तीनों लोक भवसागरका ठीकादार निरंजन है। और सत्रह असंख्य चौकड़ी युगका उसका ठीका है इतने समयपर्यन्त तो बिना पारख गुरुके कोई मुक्ति नहीं पावेगा। जब ठीकाकी यह सीमा बीत जायगी तब अक्षर पुरुषके राज्यका समय आवेगा। इस राज्यमें समस्त जीवोंके छुटकाराकी आशा होगी।

प्रथम स्वसम्वेद ब्रह्मसृष्टिमें था। जब कालपुरुषने भरमाया सृष्टिकी रचना की तब उसमेंकी निकृष्टबातोंको निकालकर

पुरुषमवेद बनाया और इस पुरुष्म वेदमें अपनी मत्यनुसार समस्त सृष्टिको उपदेश दिया और अज्ञानी लोग इस पुरुष्म अर्थात् पराकृत वेदको अपने धर्मका मार्ग और मोक्षकी निसेनी समझने लगे। तब निरंजनने अपनी सन्तानको पृथ्वीपर भेजना आरंभ किया और सहस्रों ऋषि मुनि पीर पैगम्बर पृथ्वीपर आए। और काल पुरुष निर्गुण तथा सगुणकी भक्ति सिखलाते चले आए और इन ऋषीश्वरोंमें सहस्रोंने अपना नवीन ढंग निकाला और वेदकी शिक्षाको अरुचिकर समझकर दूसरा पंथ बतलाया। वह भी काल पुरुषके फन्देमें फँस मरे और किसीने बिना पारख गुरुके सत्य लोकके पथको नहीं पाया।

जो कोई किसी जीवका रक्तपान करेगा उसका प्रतिशोध अवश्य देना पड़ेगा। जो कोई किसीको दुःख देवे अथवा मांसाहारी हो वह भी निश्चय दुख पावेगा और अपना मांस उसको खिलावेगा किसीका प्रतिशोध कदापि नहीं छोड़ेगा।

मांसाहारी तथा मद्यप कदापि मुक्ति नहीं पावेगा जो पुरुष मुक्तिके इच्छुक हैं उनको सम्यक् प्रकारसे स्वच्छ तथा पवित्र होना चाहिये।

गृहस्थके निमित्त अपनी स्त्रीके अतिरिक्त समस्त दूसरी स्त्रियोंके साथ संभोग करना महापापकी गणनामें है और साधुके निमित्त विवाहिता अथवा बिनविवाही दोनोंसे संभोग निषेध है।

गुरुकी आज्ञोल्लंघनके समान मनुष्यके निमित्त और कोई महापाप नहीं है।

सत्यगुरुकी शरण सब जीवोंके निमित्त सुखदायी है। उसीके शरणमें समस्त पातक क्षमा होजावेंगे। इस कलियुगमें गुरुके

प्रतिका कर्तव्य कौन पूर्ण कर सकता है। परन्तु सत्यपुरुषको अपने शरणकी लज्जा है उसकी शरण आकर धर्मपर स्थिर रहो। जो धर्म्मविमुख हुवा वह निर्दयी तथा घातक शैतानके जालमें फँसा। सत्यगुरुके शरणपर पूर्ण तथा निर्भर रहना और यह समझे कि, सत्यगुरु मेरे अपराधोंको क्षमा करेगा, मेरी ओर नहीं बरन् अपनी दयाकी ओर दृष्टिपात करेगा कारण यह कि उसका नाम पतितपावन है।

घमंडी तथा द्वेषीको सत्य पुरुषकी भक्ति कदापि नहीं प्राप्त होगी जो मनुष्य बड़ाई और उग्र श्रेणी पाकर नम्र होगए तथा अपना शीश नवा दिया और धन पाकर दान तथा साधुसेवाको ग्रहण किया, उनके निमित्त भक्ति और मुक्तिका द्वार खोला जावेगा। वह मनुष्य जिसने ऐसा ध्यान किया कि, मैं तुच्छ तथा सेवक हू आर जितनी मूर्तियां हैं, सब मेरे अधीन और सत्य गुरु हैं। और सब जीवोंमें उसकी कान्ति जाने तो मुक्तिका अधिकारी है।

मैं अपने कार्योंका अधिकारी नहीं बरन् सत्यगुरुसे सहायता माँगते रहना कि, वह मेरी मनकामना पूर्ण करें और भले कार्योंमें सदैव उद्योग करते रहना।

मैं नहीं जानता कि, मैं क्या हूँ और मेरा परमेश्वर क्या है, इस कारण सत्यगुरुपर पूर्णतया निर्भर रहना कि, वह जब मुझको दृष्टिप्रदान करेगा तब मैं जानूँगा।

कालपुरुषके जितने धर्म्म पृथ्वीपर प्रचलित हैं, सबमें वैष्णव धर्म्म श्रेष्ठ—और सबका सरदार है। यह सतोगुणी धर्म्म है। इस धर्म्मके नियम तथा इसकी आज्ञाएँ सत्यपथकी सीढी हैं और सत्यपथ परम धामकी सोपान है।

सत्यगुरु कबीरका नाम बंदीछोर है। और वह सर्वाधिकारी है जिसको चाहे मुक्ति प्रदान करै, जिसको इस बातका पूर्णतया विश्वास होगया उसका बेड़ा पार हुआ।

सत्यपुरुष और कबीर साहबको जिसने एक जाना उसका बंधन टूट गया और कालके पञ्जेसे छूट गया। तन मन धन गुरुके अर्पण करना तो भलाईका निचोड़ है, परन्तु अपनी कमाईसे दशवाँ भाग देना गुरुका हक है। बुद्धिमान् पुरुषही मुक्तिका भागी होता है।

जो कोई मनुष्यताकी श्रेणी प्राप्त करने योग्य है, उसीमें बुद्धि होती है। पशु सुन्दर मनुष्य हैं-उनमें बुद्धि नहीं होती है।

पारख गुरु प्रत्येक स्थानोंपर उपस्थित है, परन्तु जबलों उसके पथमें अपनेको मैं न्योछावर न करूं तबलों उसका दर्शन न होगा।

सब झूठ झूठोंके साथ मिलते हैं—जो कोई सत्यका प्रेमी होगा वह झूठके साथ कभी योग नहीं देगा।

यह तीनों लोक विषवृक्षका फल है। और प्रत्येक वस्तु प्रत्येक स्थान तथा मकानमें विष भरा हुआ है। बिना सत्यगुरु-की भक्तिके वह विषयोंसे बहिर्गत नहीं होगा और न किसी अन्य युक्तिसे पृथक् हो सकता है।

जान बूझकर विष खाना मनुष्यताके विरुद्ध है। आप सत्य पुरुषकी भक्ति करना और दूसरोंसे करवाना और करते देखकर प्रसन्न होना—वंदना है।

प्रत्येक मनुष्य बिना जाने बूझे अपने २ धर्म्मकी ओर खींचता और द्वेष करता है। परन्तु मनुष्य वह है कि, जो द्वेषरहित होकर वह धर्म ढूँढ़े जिससे उसके आवागमनका मार्ग एकबारगीही बंद हो जावे।

मनुष्यके चार चक्षु हैं परन्तु पशु चारों चक्षुसे अंधे हैं, यद्यपि उनकी आँखे प्रत्यक्ष खुली हुई हैं, तोभी वे अन्धे माने जाते हैं। इस कारण कि वे देखकर भी घातक मार्गसे नहीं टलते। इस कारण वस्तुतः वे पशु मनुष्यके स्वरूपमें हैं।

पशुओंको मानवी शिक्षा रुचिकर नहीं होती—जैसे चोर, डाकू, व्यभिचारी इत्यादि सत्संग तथा सत्य पथसे भागता है।

सत्यपुरुषके जो अंकुरी जीव हैं वे सत्यगुरुकी शिक्षा सुनकर ऐसे दौड़कर मिलते हैं—जैसे लोहेसे चुम्बक चिपट जाता है। और जो काल पुरुषके जीव हैं उनपर सत्यपथकी शिक्षाका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है।

दान, वीरता, न्याय और धर्म्म इन चारों गुणोंकी शिक्षा सब लोग करते हैं, परंतु सत्यगुरुके साथ नहीं करते, इस कारण उनकी कामना पूर्ण नहीं होती।

यह कलियुग अत्यन्त कठिन समय है। इसमें पापकी ओर तो तुरत मनुष्योंकी रुचि होती है और पुण्यसे दूर भागती है; ऐसी अवस्थामें सत्यगुरुके शरणके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

हलालके भोजनसे हृदयकी स्वच्छता होती है।

जो कोई न्यायी बादशाहके सामने पाप करेगा और अत्याचारपर बद्धपरिकर होगा तो उसका सत्यानाश होगा। ऐसेही जो कोई कबीरपंथमें प्रवेशित होकर पापकी ओर चित्त लगावेगा. तो उसकी दशा बड़ीही दीन होगी।

जिसको अपने गुरुपर सच्ची श्रद्धा है उसकी बुद्धिपर पिशाची बल काम नहीं करता है। उसकी बुद्धि बदल नहीं

सकती है और न काल किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित कर सकता है।

जो कोई अपने गुरुसे सच्ची प्रीति करेगा उसका विश्वास अचल रहेगा और उसकी बुद्धि स्वच्छ रहेगी। बिना गुरुके मनुष्यके हाथका जलपान पर्यंत उचित नहीं है।

कबीर साहबका रेखता।

खलक है रैनका सपना। समझ दिल कोई नहीं अपना॥
कहीं है लोभकी धारा। बहा जग जात है सारा॥
घड़ा ज्यों नीरका फूटा। पतर जैसे डारसे टूटा॥
ऐसी निर्जान जिंदगानी। अजौं क्यों न चेत अभिमानी॥
सजन परवार मतदारा। सभी उस रोज हों न्यारा॥
निकल जब प्राण जावेंगे। कोई नहिं काम आवेंगे॥
निरख मतभूल तन गोरा। जगतमें जीवना थोरा॥
तजो मद लोभ चतुराई। रहो निस्संग जगमाहीं॥
सदा जिन जान यह देही लगाओ सतनामसे नेही॥
कटै यम कालकी फाँसी। कहैं कब्बीर अविनाशी॥

यथा।

साँईंकी यादमें रहना, नहीं यह जिन्द जावेगा।
करो उस पीवकी बन्दगी, तुझे यारां लखाऊंगा॥
बना है खाकका खेला, इसीमें खोज पावेगा।
मुझे मुर्शिद महर मनशाल, गो दीदार पाया है॥
मुझी को देखले परकट, किसी से ना छिपाया है।
कबीरा पीर है साचा, सकलमें आप छाया है॥

यथा।

समझ दिलसोच अबकीना। मुर्शिदसे पूछ नालीना॥

कहांसे रंग यह आया । न काहूँ मोहिं बतलाया ॥
सुरत वहि रंगकी प्यासी । पपरा भये हैं वनवासी ॥
न आवे हाथ वह करनी । सिधारो जाय गुरु शरनी ॥
मुझे मुर्शिद महर करके । मुरीदी मन सिखाया है ॥
किताबें खोल दिल अन्दर । हकीकत निज बताया है ॥
कि है कोइ गैबका वासो । दिखावे खेल परकाशी ॥
बसावैं गैबका खोरा । मिटावे भर्मका फेरा ॥
अचम्भौ देश है न्यारा । लखे कोई नामका प्यारा ॥
दिया जिन प्रेमका प्याला । सोई हैं संत मतवाला ॥
कि निशिदिन मोह ना भूले । विरहकी झोंकमें झूले ॥
चरण कबीरको ध्यावे । इलाही ज्ञान भर पावे ॥

पद ।

हैली तीरथ जाय बुलाए । रे हरदम परब नहाये ॥
तीरथ कोटि अनन्त हैं रे गंग यमुन जहँ दुई ।
मध्य सरस्वती बहत है रे नहाय निर्मल होवे ॥
ब्रह्म अग्निके घाटमें रे आगे शिवके लिंग ।
ताहूपे दछिना दीजिये रे बहुत सहपमुख गंग ॥
आगे कलालीकी हाट है रे चोखा फूल चुनन्त ।
बिन सदगुरु पावे नहीं रे कोई साधू जन पीवन्त ॥
शीश उतार धरणी धरे रे ऊपर धरले पाए ।
ब्रह्म अगिनके घाटपे रे इस विधिपर बेनहाए ॥
ऋग यजुर साम अर्थनवारे चारों वेदका ज्ञान ।
उनके वहां कहो कौन गति रे बांधे गांठ पखान ॥
चारों वेदको पिता है रे सूक्ष्म वेद संगीत ।
साहबकबीरजूके मुकद्दमेरे अविगतब्रह्म अतीत ॥

यथा।

पण्डित सतपद भजो रे भाई। जाते आवागमन नशाई॥
ज्ञान न उपजा ब्रह्म नहिं चीना आप कहांते आए।
एक योनिसे चार बरन भए ब्रह्मदेह कहां पाए॥
बारह बेदी ब्रह्म बखानूं स्वर औ शक्ति समानी।
संध्या तर्पन तहां करलीना जहां कुशा नहिं पानी॥
ऋग यजुग्ज्ञानको बुद्धी साम अथर्वन सोई।
सूक्ष्म वेदको भेद न जाने क्योंकर ब्रह्मन होई॥
शूद्र शरीर ब्रह्म तेहि भीतर भिन्न भेद कछु नाहीं।
लखचौरासी जिया जन्तुमें बरत रहो सब ठाईं॥
नौगुण सूतसँयोग बखानू तिरगुण गाँठ दयानी।
तासु जनेउ कबहुँ ना टूटै दिन दिन बारह बानी॥
कहैं कबीर गुरुब्रह्म चीन्हले जगत जनेऊ सोई।
पाखण्डकी गति सबही मिटावे तब निज ब्राह्मण होई॥

यथा।

हिरवा गँवाए सास चली वारी धनियां।
कौन सौतिन है कौन सुमन है कौन वेद तुम जानियां॥
कौन पुरुषको ध्यान धरत हो कौन है नाम निशानियां॥
एही तनु ओंकार सुमन है सूक्ष्म वेद हम जानियां॥
सत्य पुरुष तो ध्यान धरत हैं सत्य है नाम निशानियां॥
यह मत जानो हिरवा जरवा बनियां दूकान बेगानियां॥
अलख मूलक हिरवा मोग अगम देशते अनियां॥
एक है चोर सकल जगमोंसे राजा रैयत रनियां॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो अलख है नाम निशनियां॥

कबीरपन्थका प्राकट्य ।

जब कबीर साहबने अपना धर्म पृथ्वीपर प्रचलित किया और सत्य पुरुषकी भक्ति प्रकट की और सत्यलोकका समाचार दिया तब किसीको निश्चय नहीं हुआ । और वेद तथा पुस्तकोंकी लिखावटोंको सत्य माना और चार प्रकारकी मुक्तिको मोक्षमार्ग जाना तथा कबीर साहब इन चारों प्रकारकी मुक्तिको बंधन और कालपुरुषका महाजाल बतलाते और लोगोंको वह पथ छोड़ना तथा इस पंथको ग्रहण करना दुष्कर हुआ, इस कारण सब आपके वैरी हो गये और आपके साथ ऐसा व्यवहार करने लगे, इस कारण मैं उन स्थानोंको परिलक्षित किया चाहता हूँ जिनसे संसार नितांत ही अनभिज्ञ तथा अज्ञ है और केवल चार मुक्तिको सत्य मानते हैं जो वस्तुतः बंधन है । निम्नलिखित विवरणको देखो ।

दश सोहंगका वृत्तान्त ।

कबीर साहबने ग्रन्थ मुहम्मदबोधमें जिन दश स्थानोंका विवरण किया है वह यहां दश सोहंग हैं । १–सत्यपुरुष सोहंग । २–सहज सोहंग । ३–अंकुर सोहंग । ४–इच्छा सोहंग । ५–सोहंग सोहंग । ६–अचिन्त्य सोहंग । ७–अक्षर सोहंग । ८–निरञ्जन और माया सोहंग । ९–ब्रह्मा विष्णु और शिव सोहंग । १०–समस्त जीव सोहंग ।

यह दश सोहङ्ग हैं और समस्त संसार सोहङ्ग है । जिसका गुरु जहांकी सूचना देगा वह उसी स्थानको पहुँचेगा और समस्त जीवोंमें यह प्रवेशित हो रहा है और समस्त शरीरसे यही शब्द निकल रहा है और समस्तका निचोड़ तथा सिद्धांत यह है कि इसके ध्यानसे ज्ञान है और उससेही शान्ति है ।

जितने पृथ्वीके मनुष्य हैं सो सब इस विषयसे एकबारगीही अनभिज्ञ हैं, उन लोगोंको केवल चार प्रकारकी मुक्तिकी सुध है और जितने अवतार पीर पैगम्बर पृथ्वीपर प्रगट हुए सो सब निर्गुण तथा सगुणका समाचार देते रहे । वेद तथा अन्यान्य पुस्तकोंमें इस बातका तनिक भी विवरण नहीं है कि सत्य पुरुष कौन है। सब अचेत निद्रा तथा धोखेमें पड़े और कालपुरुषको अपना पथदर्शक और मुक्तिदाता समझने लगे और जितने पीर पैगम्बर हुए किसीने भी सत्यपुरुषका स्थान स्वप्नमें भी नहीं देखा और न जाना । सब निर्गुण तथा सगुणका समाचार देते चले आये। यदि उनसे कहा जावे कि, तुम भूलकर यमके फंदेमें न पड़ो तो उनको कदापि निश्चय नहीं होता। अनुगृहीत होनेके स्थान वैर तथा विरोध करनेपर बद्धपरिकर हैं और कबीर साहबके धर्म प्रचलित करनेके समयसे आजपर्यंत कबीरपंथियोंके मतको सुनकर लोग अप्रसन्न होते हैं और तीर्थ व्रत मूर्तिपूजा आदिको भला समझते हैं और लोक तथा वेदकी आज्ञाओंको सर्वोत्तम समझते हैं और सत्य पुरुषकी भक्तिसे भागते हैं। कोई बड़भागी इस भक्तिमें लगता है इस भक्तिबिना किसीको पथ नहीं मिलेगा।

कबीर साहबने दश स्थान प्रकट किये हैं उन दश स्थानोंके निमित्त इस प्रकारकी विद्याएँ कही हैं। १–शरीअत । २–तरीकत । ३ हकीकत। ४–मारफ़त। ५–तरौरहत । ६–ध्यान दोरहियत। ७–जुलकार चन्द्रगी । ८–हुक्म मुरतिद । ९–दएनाका। १०–शब्दसार।

यह दश प्रकारकी विद्याएँ हैं। जिस किसीको जहांका ज्ञान देता है वह उसी स्थानको पहुँचता है । बिना विद्याके कोई

पहुँच नहीं सकता। जिसके गुरुकी जहांलों पहुँच है वह अपने शिष्यको वहींलों पहुँचा सकता है। वेद और पुस्तकों द्वारा तो केवल चार प्रकारकी विद्या मनुष्य प्राप्त कर सकते हैं। कर्म जो है उसकी पहुँच नासूत स्थानपर्यंत है । उपासना मलकूत पर्यंत पहुँचाती है। योग जीवरूप स्थानमें स्थिर कराता है। जहां सहस्र पंखुड़ियोंका कमल है और अलख निरञ्जन ज्योतिस्वरूप रहता है । निर्विकल्प समाधि लगाकर योगी लोग उसी स्थानपर्यंत जा पहुँचते हैं और जिसको मार्फत-की श्रेणी प्राप्त हो और उरफानकी विद्याका प्रकाश धारण किये हो वह लाहूत स्थानको जाता है । लोक और वेद द्वारा मनुष्योके निमित्त ये चार स्थान ठहराये गये हैं। अचिन्त्य द्वीपपर्यंत कभी कभी कोई कोई साधुओंमेसे इंगित करनेवाले हैं,मनुष्यको इससे पारका समाचार तनिक भी नहीं है, सब व्यर्थही हवाई बांधते और मुक्तिमार्ग बतलाते फिरते हैं और समस्त धर्मके मनुष्य प्रण रोपते हैं कि,हमारे धर्ममें मुक्ति है,और कोई कहीं नहीं पा सकता। जीवरूप स्थानमें तीनोंका सृजन कर्ता रहता है और उसीकी वंदना सब करते हैं और उसी द्वारा चार प्रकारकी मुक्ति और समस्त स्वर्गोंका सुख प्राप्त करते हैं और इन समस्त स्थानोंमें शारीरिक आनन्द तथा पाशविक कामनाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । त्रियाती-तकी श्रेणी जिसको वेद सबसे बढ़कर बतलाता है, इस श्रेणीमें अलख निरञ्जन अधिकृत है और जितने साधुगण उस श्रेणीको हस्तगत कर लेते हैं सो सब उसके समान हो जाते हैं और सब सृष्टिकी रचना करनेकी सामर्थ्य रखते हैं। और सबका हृदय उस विद्यासे प्रकाशित है और समस्त

सिद्धियां उनके वशमें हैं और वे सब अपनी रचनाके रचयिता और स्वामी हैं और वे लोग जगत्प्रभु कहलाते हैं। सांसारिक मनुष्योंमें वह बल और बुद्धि कहां है कि, साधुओंके भेदको पहचान सकें। ये बातें केवल सत्यगुरु द्वारा प्राप्त होती हैं जिनके ऊपर पारख गुरुकी दया हो वह इस विषयको जान सकता है और किसी मनुष्यमें इतना पौरुष नहीं। सात स्वर्ग-सात द्वीप, पृथ्वी और नरक यह ब्रह्मांडके इक्कीस भाग सब निरञ्जनके अधीन हैं और सबके ऊपर वह आज्ञा चलाता है। सात द्वीप जो पृथ्वीके हैं उनमें भांति भांतिके सुख दुःख हैं और जो सात स्वर्ग हैं उनमें बहुत सुख हैं पर वहां यह दुःख है कि, एक दूसरेकी ईर्षासे जलते रहते हैं और स्वर्गके लोगोंको किसी सीमापर्यंत ज्ञान होता है कि, अब हम स्वर्गसे गिर पड़ेंगे और हमारा सब सुख पृथक् हो जावेगा और आपत्तियों तथा दुर्दशाओंमें फँस जावेंगे, इस दुःखसे वे अत्यन्त कातर-तासे विलाप करते और दुःख करते हैं, अन्त उनका स्वर्गीय शरीर छूट जाता और वे पृथ्वीपर आकर जन्म लेते और जैसे उनके ध्यान अच्छे अथवा बुरे होते हैं वैसा ही चोला वे पाते हैं। और जितने स्वर्ग हैं और क्रमानुसार जिस प्रकार एक दूसरेके ऊपर हैं वैसे ही उनका सुख विशेष होता जाता है। जैसे २ ऊपर हैं वैसे ही वैसे सुख तथा आनन्दका आयोजन विशेष होता जाता है और नीचेके विभागोंमें न्यून है। और वह सब सुख अस्थायी तथा अल्पकालिक हैं। कुछ समयके उपरांत स्वप्नके समान भंग हो जानेवाले हैं। सो सब स्वर्गों और चारों स्थान जिनको वेदने मुक्तिदाता कहा है यहांलों मनुष्योंको ज्ञान होता है इसके आगे कोई कुछ नहीं जानता। परन्तु

कबीर साहबने कहा है कि, ब्रह्मा विष्णु तथा शिव ये जो तीन देवता हैं वे सहज द्वीपपर्यंत पहुँच सकते हैं इसके आगे किसीको तनिक भी सुध नहीं है। तीन देवता सहज द्वीप पर्यंतकी सुध रखते हैं परंतु मनुष्योंसे वे नहीं बतलाते, अपना भेद अपने मनमें रखते हैं और भलाई बुराईके समस्त कार्योंका रचयिता निरञ्जन हैं, भलाई करो तो स्वर्ग और वैकुण्ठमें जाय, यदि बुराई करे तो नरकमें प्रवेशित हो, चाहै मृत्युलोकमें जन्म लेता रहे। जैसे आकाशके सुखका विवरण है वैसे ही नरकयंत्रणा अत्यन्त भयानक है। सुतरां मुसलमानी पुस्तकोंमें मैंने पढ़ा था कि जिस समय हजरत दाऊद नरकयंत्रणाका विवरण किया करते थे उस समय सुननेवाले बेतरह रोते तथा तड़पते और कितने भयके मारे मर जाते थे।

और लिखा है कि एक बेर नरकयंत्रणाको सुनकर सत्तर मनुष्य मारे भयके मर गये। और स्वयम् दाऊद ऐसा रोता था और तड़पता था कि, अचेत हो जाता था। और ऐसा हाथ पावँ और शिर पीटता था कि, उसकी लौंडियां और लोग लासको पकड़ लेते और वह अत्यन्त विह्वल तथा बेशुध हो जाता था और दाऊद यद्यपि बादशाह था तथापि समस्त निशा वह ऐसा रुदन किया करता था कि उसका बिछौना भीग जाता था और जब वह परमेश्वरके प्रेममें गाता और नाचता तब स्थावर तथा जंगम हिल जाते थे।

और कबीर साहबकी आज्ञा है कि, जिसमें परमेश्वरका भय नहीं है और हार्दिक प्रेम नहीं है वे कदापि मुक्ति नहीं पा सकेंगे सो समस्त पीर पैगम्बरों और सिद्ध साधुओंका सच्चा

गुरु कबीर साहब हैं जिनमें परमेश्वरका भय और सच्चा प्रेम पाता है, उनको परमधामको पहुंचाता है और सबकी ओर दया तथा उदारताकी समान दृष्टिसे देखता है। अब जानना चाहिये कि, यह काल पुरुष इस प्रकार भय तथा यंत्रणाकी अवस्थामें फँसाकर बंधनमें डाल देता है, किसी युक्तिसे किसीका छुटकारा होने नहीं देता है और तप्त शिलापर सबको भूनभूनकर खाया करता है जैसे भेड़ बकरी तथा गऊ कसाईको प्यार करती हैं जिनका परिणाम प्रकट है, ऐसा ही मनुष्य निरञ्जनको प्यार करके उसका फल पाते हैं। और हांक मार २ कर कबीर साहब कहते चले आते हैं तो भी लोगोंको विश्वास नहीं होता है।

माया सृष्टि और पिण्डब्रह्मका जो समस्त मिथ्या बाँधनू है इन सबका रचयिता निरञ्जन है। जो कोई इस मिथ्या जाल तथा कामके वशीभूत होकर रहेगा वह कदापि मुक्ति नहीं पावेगा।

इस प्रकार कबीर साहबने अपना ज्ञान और शिक्षा पृथ्वी-पर प्रकट की और लोग आपके वैरी हुए कारण यह कि,लोगों-का चित्त काम क्रोधादिके प्रपञ्चोंमें फँसा हुवा है और उनकी बुद्धि कालसे घिरी हुई है।

जबलों मनुष्योंके चित्तमें सुबुद्धि और स्वच्छ कामनाएँ उत्पन्न नहीं होतीं तबलों यह निश्चय कालका भोजन होता जाता है जब सुबुद्धि होगी तथा अच्छे विचार मनमें उदित होंगे तब तो कदापि कालकी राहमें न चलेंगे। सो थोड़े लोग हैं जो आपत्तिमय पथ देखकर भागते हैं और अभागे अपनी हठसे नहीं हटते।

साखी—कालको जीव माने नहीं, कोटिन कहूं बुझाय।
मैं खींचूं सत लोकको, बांधा यमपुर जाय॥
बहता है बहजान दे, बहें लगावन ठौर।
कहा हमारा न आदरै, द्यों धक्का दो और॥

इसप्रकार कबीर साहबका धर्म पृथ्वीपर प्रचलित हुआ। और वैरी और दूत भूत सब निराश हो गये किसीका कुछ वश नहीं चला। जो समर्थ धनी स्वयम् सत्यपुरुषने धर्म प्रचलित किया फिर किसकी सामर्थ्य थी कि, रोक सकता? ऐसा वेगसे चला कि, लाखों सेवक और शिष्य हो गये और सत्य कबीर और सत्य नामकी पुकार समस्त संसारमें पड़ी। किसीके रोके रुक नहीं सका। पश्चात् कबीरपंथ स्थापित करके कबीर साहब सत्यलोकको गये।

कबीरपंथकी स्थापना।

पहले मैं वर्णन कर आया हूं कि, सत्यपुरुषने कहा कि, ऐ ज्ञानीजी! पृथ्वीपर जाओ और सुकृतिजी (धर्मदास) को जगाओ, वह भूलकर मूर्तिपूजक हो गये हैं उनको उनकी अचेत निद्रासे जाग्रत करो और सत्यपुरुषकी भक्तिमें लगाओ और सत्य पंथ पृथ्वीपर प्रचलित करो। और बयालीस वंश नियत करके कलियुगके मनुष्योंका उद्धार करो। सत्यपुरुषकी आज्ञानुसार कबीर साहबने धर्मदासको जगाया और सत्यपुरुषकी भक्तिमें लवलीन किया। फिर चारों दिशाके चार गुरु नियत किये।

चार गुरुका वृत्तान्त।

पहले गुरु धर्मदासजी हैं उनको उत्तरके ओरकी गुरुवाई प्रदान की है और उनके बयालीस वंश हैं। दूसरे चतुर्भुजदास

उनको दक्षिण ओरकी गुरुवाई प्रदान की गयी और सत्ताईस वंश हैं। तीसरे गुरुराज चंकज हैं। उनको पूर्व ओरकी गुरुवाई प्रदान की गयी और उनके सोलह वंश हैं । चौथे गुरु सहतीजी हैं और उनके सात वंश हैं और उनको पश्चिम ओरकी गुरुवाई प्रदान की गयी। ये चारों गुरु चार ओर ठहराये गये हैं और जब ये चारों गुरु चारों ओरसे सत्यनामका डंका बजावेंगे तब कबीर साहबका धर्म भलीभांति पृथ्वीपर प्रचलित होगा। इन चारों गुरुओंमें केवल धर्मदासजी अबलों प्रकट हुए और उनकी वंशगद्दी स्थिर हुई । और पूर्वोक्त लिखित तीनों गुरु अबलों प्रकट नहीं हुए जब वे भी प्रकट हो जावेंगे तब इस धर्मका प्रचार विशेष होगा। अब तो केवल धर्मदासजीके वंश बयालीसका विवरण करता हूँ।

धर्मदासके बयालीस वंशका वृत्तान्त ।

धर्मदासजीके बयालीस वंशका यह ठीका सत्यगुरुने ठहराया है कि, प्रत्येक वंश पचीस वर्ष और बीस दिवसों पर्यंत गद्दीपर बैठा करे और इससे अधिक तथा न्यून कोई न रहे । और सत्यगुरुकी आज्ञानुसार उनका अवतार और उनका अधिकार होता आता है। फिर वे अपनी इच्छासे शरीर छोड़कर सत्यलोकको सिधारते हैं। जिस दिवस साहबका चलना होता है उसके पूर्व अनेक सन्त महन्त दर्शनार्थ एकत्रित होते हैं और जिस दिवस पचीस वर्ष तथा बीस दिवस पूरा होता है उस दिवस जो गद्दीका अधिकारी होता है उसको अपने स्थान गद्दीपर बैठा देते हैं और समस्त कार्य सौंप देते हैं। जब सब कार्य ठीक हो चुकता है उस समय आप पानका बीड़ा लेते हैं इसको चलानेका बीड़ा कहते हैं। जब वह चलाने-

का बीड़ा लेते हैं उस समय हंस तो सिधार जाता है और शरीर ठंढा हो जाता है और उस शवकी समाधि कर देते हैं । इतना कौतुक कबीर साहबका अबलों पृथ्वीपर प्रकट है । यही लोग अपने चेलोंसहित इस भवसागरके मांझी और नावके चलानेवाले हैं ।

चारों गुरुकी प्रशंसा—उर्दू सेर ।

गुरु चारको पहले ताजी मकर । सातएं शकुनी स्वामए हाथधर ॥
गुरु चार सतगुरु कदमके हैं खाक । चढ़े अर्श ऊपर शबद बादपाक ॥
मोअज्जिज हुए खाक खाकी हुए । बाहरखू रजाजू खुदाकी हुए ॥
बुजुरगी किया अजमुबारक जबाँ । बनाया इन्हें दुज्दके पासबाँ ॥
बअतराफ चारों निगहबाँ किया । मकाँ मुक्तिके चार दरबाँ किया ॥
जहां बैठे वहकादिरे जुलजलाल । किबरतख्तशाहंशहीला मिसाल
वजीरान चारों खिरदमंद हैं । यह अरकाने दौलत खुदावंद हैं ॥
जबानिब जहाँमें किया चार है । बहर सिम्त यक यक मददगार है ॥
जो इनसाँको सतगुरु हजूरी करें । निजाते शफाअतसो पूरी करें ॥
परमधाम पहुँचावें चारों वजीर । चले साथ ले मर्दुमाने अफीर ॥
धरमदासऔवलअसिमतशुमाल । किरोशनहैजिसकीमुहब्बतकमाल ॥
यह औवल गुरु सबके शिरताजहैं । कि सब आदमी पैगवां आज हैं ॥
बयालीसवंश उनकेरोशनजमीर । मुकाबिल है जिसकेच बद्र मुनीर ॥
गुरु दूसरे हैं बजानिब जुनूब । चतुर्भुजसाहबजिवअमांबख्श खूब
सत्ताइस वंश उनकेहैं ताजदार । दखिन देशके आदमी बाजदार ॥
गुरू तीसरे रायबनके वशिर्क । लियातख्त ओ ताजशाहीबफर्क ॥
सोलहवंशले हुक्म जारी करें । जो सतगुरुतवस्सल तयारी करें ॥
गुरू चौथे सदते बमगरब कहे । बमै सात फरजंदके छिप रहे ॥
ये चारों गरू मुक्तिके रास हैं । फकत एक जाहिर धरमदास हैं ॥

धरमदासका सब पसारा हुआ। जहाँमें जहांतक हजारा हुआ॥
न अबतक वह जाहिर गुरूतीनहैं। कि सतगुरुके फरमान आधीनहैं॥
गुरू चार दुनियांमें जब आयँगे। नहजदे करी दौर दिखलायँगे॥
तो सारीजमींमें हो यह गुलगुलः। हैसतनामसतऔरसबबुलबुलः॥
सिलहशो तीनों कभी गाहमें। है पोशीदःसतगुरु हुकुम चाहमें॥
निकलजबपड़ीं फौजसालार तीन। हो मुक्तिसे मामूरसारीजमीन॥
बमें ंश चारों हुकुम पायँगे। शपातीं किधरके किधर जायँगे॥
पड़ेशोरआलममें सत् नामका। हो शोदरःनिजाते सरअञ्जामका॥
बहर सिम्र डंका है साहब कबीर। फिरें बोलते सत्यनामे सफीर॥
गुरू चार सतनाम डंका दिया। पुरुषकालके दिलमेंसनका दिया॥
बहरसू जुझाऊ बजेडङ्कढोल। कि सबकेंदियोंकीही जंजीर खोल॥
बजे झांझ औ शंख मिरदंग जो। जिसे देखते दूत दल दंग हो॥
न वे जूर पुर नूर है सब समात। तुलू मह्नहै कटगई सारी रात॥
गुरू चार हरजाय बोले नकींब। न बाकी रहा और कोई है कींब॥
करे गुफ्तगू उनसे जो दूबदू। मती सारे उनके न कोई अदू॥

धर्मदास साहबके बयालीस वंशकी प्रशंसा।

उर्दू शेर।

धरमदासके जो बयालीस वंश। सो सब सत्य सुकृतिके रूपहंस॥
जुदागानः तारीफ उनकी लिखूँ। कदमदतकेपरअपनेशिरकोरखूँ॥
है औवल वचन वंशचौरामनी। गुरू सत्यमारग धरमके धनी॥
कि इनसांका जिसमें गुजारःहुवा। परमपुर्ष यहपर नजारः हुवा॥
बचन जो सतगुरुका अवतार है। उसीके महरजीव भवपार है॥
सुदर्शन साहब दूसरे नाम जो। करे जीव भवपार कण्डहारसो॥
जोकुलपतिसाहबतीसरेनामदार। पनह जिसकेसबजीवहों कामगार॥
जोपरमोदगुरुचौथेबालाहैपीर। सोशाफीबनार्जीजे्खतरःखतीर॥

कमलनाम साहब कहूं पांचवाँ। जगतके गुरू पीर सो बेगमाँ ॥
हैं छठएँखुदावन्दनामेअमोल। किजिसखौफसेभागजायमकेगोल॥
जो सूरत सनेही साहब सातवाँ। कि जंगी मेहर देखिये आतमाँ॥
जोपैदा हुए आठवें नामइक। मलिकमौतकाहोगया सीनःशक ॥
नवेपाकसाहब हुएनामपाक। मरमभूतकोसोमिलायाहै खाक ॥
प्रकट नामसाहब प्रकटहैं दहम। किसामानमुक्तीकिया सोब्रह्म ॥
धीरजनामसाहबइग्यारहवेंजोआये। किधीरजनिगहजीवधीरजहुए ॥
उगरनामसाहबहुए बारहवें। परमपंथ परचार इस अहूदमें ॥
तेरहवाँ उदयपहनेआदमकबा। तोजमशेर गुरांभगादुम दबा ॥
हुई तेरहवींकुरसीआली दिमाग। कि दरजा हरे होगये खुश्कबाग॥
हुवा जोर वो शोरसतनामको। सला है करमखास ओ आमको॥
मिलींबारहों पथ इसअहूदमें। सतायशकरें गुरुकी यकमहदमें ॥
कुरूनामसाहब कहे चौदहवा। कि जिनकी बुजुर्गी बदरहोजहां॥
जो परकाश परकाश हो रहीं। सना इस्द अस्त नाम दरजा कहीं॥
उदितसोलहवीं साथ जोशनहुए। तो जम जङ्गमें नाम रोशन हुए॥
किजब सत्रहवीं होवें साहब मुकुन्द। हुएकालके दाँनइसवक्तकुन्द॥
अरधनाम अट्ठारवीं दर्दमंद। कि आवागमनकी कियाराहबंद ॥
जो उन्नीसवीं नाम ज्ञानी गुरू। करै जीवको पुर्षके रूबरू ॥
कहो बीसवीं साहब हंस मन। न जिनसे लगे कालका कोई फन॥
सुकृतिनामसाहबहुएबीसएक। तोसुकीरतकीजगमेंरहैखूबठीक ॥
अरजनामबाईस जाहिर हुए। तो इनसां परमपदकेमाहिरहुए ॥
हैरसनामसाहबजरसबीसतीन। सुनआवाज़ताबेहुईसबजमीन ॥
हों चौबीसवींगंग मुनि साहब। गुनहसे हों सब आदमी तायब॥
पुरुषनामसाहबदरसबीसपांच। नजिवकोलगेसंगेसोजाकीप्रांच ॥
छबीसवींजागृतन्नामसाहबजगे। नइनसाँकोरहजनवठगतबठगे ॥

हुए भृगुमुनि साहबसातबीस। रहेरास्त दुश्मन दियाजिसनेदीस॥
अस्त नामसाहबकहेबीसआठ। कियमदूत को जोदियामारकाट॥
हैं उन्तीसवीं साहबकंठ मुन। कियाकालको मारकरसो दफन॥
हैं सन्तोष मुनि साहब तीसवें। पयान पुरुष आवें इस अहदमें॥
यहखुशवक्त दोरांदिखाया हमें। परमपुरुष पैगाम आया हमें॥
जमीं सारीसतनामकी हांकहै। तोदरकौमका मुक्ति की झाँक है॥
हुईसारे आलममेंयहधूमधाम। त अस्सुब न जो और भ जोसत्यनाम
जमीं सारी पर हुक्मरानी हुई। बाहर कौमपर मेहरबानी हुई॥
यहूदी तिसार मुसलमां हिनूदा। पढ़े कमलये सत्यनामे हुरूदा॥
चातर्कनामसाहबकाएकतीसदौर। जमींपरनथा कोरहेयमकाजोर
बत्तीसवेंबरामदहुएआदि नाम। हुएसारेनफसानीहरकतगुलाम॥
हैं ततीसवें वेद नामें बुजुर्ग। कि जिस सामने हो न रौता सतर्ग॥
साहब आदिनाम हुए तीस चार। कि उसमेहसेजीवहोंकामगार॥
महानाम साहब हैं पैंतीसवाँ। जमींपरहुवा है अमन ओ अमाँ॥
छतीसवें हैं निजनामसाहबखदीन। नबाकीरहेरेवकुछनफसदेन॥
साहबदाससाहबकासैंतीस अस्त। दियबारशइनसानकेजिसनेवस्त
उदयदाससाहबहों अडतीस पुश्त। इलमतिलमस्बमें न कोईदुरुस्त
कुरदनामसाहबकानौतीसवक्त। बहरहोजहांजिन कोहैनाजोरुक्त
चेहले दग मुनीसाहब नामले। तोसत्यलोकका आदमीसबचले॥
महामुनि साहबनामचालीसएक। बदी बेखकुन आदमीसारेनेक॥
बयालीस मुक्तामनी साहब है। आखिर जमां सत्पुरुष नायब है॥
यह जबतक बयालीसपीढ़ी रहे। परमधामकी जगमें सीढ़ी रहे॥
बयालीसका जबतलक नाम है। नकब्बीरका जगतमें काम है॥
यह सद्गुरुकेसबहंसहैंजानशीं। परमपुरुषके सारशब्द अभीं॥
बयालीस जबतकरहेंगेवजीर। जहांमें न जाहिरफिरेंफिरकबीर॥

बहर एक फरमाँ खाई खिताब । कहे हैं खुदावन्द ऐसा हिसाब॥
बरसइनके पच्चीस ओबीसरोज । हरकेतख्तपरहोवेरौनकफिरोज ॥
हजार एक ऊपर दो पञ्जाहसाल । महेतीनदिनबीसगद्दीबजाल॥
इतेरोज सतपुर्ष फरमान है । जो आवे शरण सोई निर्वान है ॥
जो सतपुर्षके हंस गायब हुए । न होंबहरःवरकोइजोसाहब हुए ॥
यहकलियुगमेंसतयुगगुजरजायगा ।पुरुषकालकाअहदतबआयगा
करे आदमीफिरजोतदबीरकोट । कभीसोसकेनाबचाययमकीचोट
मेरी बात जो कोई जाने दरोग । कभीफेरउसको न होवे फ़रोग॥
परमपुर्ष पीरां शनासिन्दगां । उसी लोक जावेंगे सो वन्दगां ॥
यहकलियुगमेंसतयुगलगी है लडी । वहरसिम्तहैआवेहैवांवाझड़ी
हैंगुरुमुखकोईउसकेनोशिन्दगां । जोसतगुरुमोब्बतमेजोशिन्दगां
जोउसगुरुकेमिलनेकीकोशिशकरे।अजरओअमरजामःपोशिशकरे
जो पहचानसोईहैंशाहशहाँ । न जाने जिन्हें आदमी इबलहां ॥
बयालीसका जबसे ठीका हुवा । नइनसानकाबाल बीकाहुवा ॥
यहमाहूद ठीका जो पूरा हुवा । तो यमजालका फिरजुहूराहुवा ॥
मो इसअदहमें होकोई बख्तमंद । जेढ़े बामबाला बनामेंकमंद ॥

गजल।

बयालीसवंशसतगुरुकीनिशानी । हैंबखशिन्दःहयातेजानहानी॥
उसीहमशक्ल हैंसबनाखुदायह । रहेदुनियांमें जबतकयहकहानी ॥
सनाख्वानीहैंकरतेहंसजिनकी । कहेसौबारसतगुरुखुदजबानी ॥
तमीजो अक्लसे खुद परखलीजे । मकांमें हंस आए कामकानी ॥
दरोगोंरास्त अब पहचाना होगा । जो मुतफर्रिक करेंगेदूधपानी
कदमउनकेपकड़परवाज करअब । गुजरबग चालसे अपनेदुरानी
हवासो अक्ल ओ हम लंगपा हैं । वहांपहुँचे नकुरआं वेदबानी ॥
समझओ बूझकरलीजै खमोसी । अबजसिरके मिलेगीआसमानी

करेक्या यह बनी आदम बेचारा।मददपावे न जबतक आसमानी
पेयालाइश्कपीकर मस्त होजा । जो चाहैं चेहरै खुद अरगवानी॥
पडेखाते हैं गोता भेष पाखंड । बरहमन भाट ओं मुल्ला कुरानी॥
मेहर हो गाय बकरी मुर्गियो । खुदावन्द मोहाफिजपासवानी॥
उतरचलपारइसदरियाकेआजिज । हुईतुझपरजोमुरशिदमेहवाणी

यह चार गुरु तथा बयालीस वंश जो मुख्य कबीरपंथी कहलाते हैं उनका विवरण हो चुका । इस समय धर्मदासके साहबके वंश उपस्थित हैं और उन्हींके पंथ दिखानेसे समस्त मनुष्य सत्यलोकको जाते हैं। दश स्थानोंका चिह्न जो मैंने दिया उन सब स्थानोंका पंथ इन्हींको दया द्वारा प्राप्त होता है और नौ स्थानोंका पार करके दशमें स्थानको पहुँचता है। इन समस्त स्थानोंके बीचमें शून्यकी डोरी लगी हुई है । वे शून्य (खला) की डोरियाँ हैं उन डारियोंके भिन्न २ नाम कबीर साहबने कहे हैं । उन डोरियों पर सत्यगुरुके पथ दिखानेसे हंस चढ़कर पार जाते हैं । जबलों पारख गुरु नहीं मिलता तबलों उन डोरियोंकी तनिक भी सुध नहीं मिलती । ये गुरु लोग भवसागरके पार उतारनेवाले हैं । उनकी प्रशंसा अनेक बेर स्वयम् कबीर साहबने की है । देखो ग्रन्थ श्वासगुञ्जार ।

साखी–बिरछा नाहीं फल भखैं, नदी न अचवैं नीर ।
परमारथके कारणे सन्तन धरा शरीर ॥
सन्त बड़े परमारथी, धन जो बरसै आय ।
तप्त बुझावे औरकी, अपनो पारस लाय ॥
साधु सरा हैं ताहिको, जाको सतगुरु टेक ।
टेग बनाए देह भर, रहे शब्द मिल एक ॥
सत्य शब्द हित जानके,सुमिरे सतगुरु धीर ।
धरमदास तुम वंशको, सिरज्यो गुरू कबीर॥

चौपाई।

सत्य सुकृति सुमिरो मन माही। टूटत बज्र राखलेउ ताही ॥

साखी–सत्य सुकृतिकी बालकहै, जो चितवै कर डीठ।
ताजन तोरौ चौहटे, गुनहगारकी पीठ ॥
जदिया कहूँ तो जगतरैं, परकट कहो न जाय।
गुप्त परवाना देत हौं, राखो शिरै चढ़ाय ॥
जिन डरपो तुम कालका, कर मेरी परतीत।
सप्तद्वीप नौखण्डमें, चलिहौ भवजल जीत ॥

यहांलों तो चार गुरु और बयालीस वंशका लेखा लगचुका है इनके अतिरिक्त कबीर साहबके बारह पंथ और भी कबीरपन्थी ही कहलाते हैं।

कबीर साहबके बारह पंथोंका वृत्तान्त।

१–नारायणदासजीका पंथ २–यागौदासजीकापंथ। ३–सूरत गोपाल पंथ। ४–मूलनिरञ्जनका पंथ। ५–टकसारी पंथ। ६–भगवान्‌दासजी का पंथ। ७–सत्यनामी पंथ। ८–कमालीपंथ। ९–राम कबीर पंथ। १०–प्रेमधामकी वाणी। ११–जीवा पंथ। १२–गरीबदास पंथ।

यह तो कबीर साहबके बारह पंथ हैं। इनमें कोई २ अच्छे हैं। और कोई निर्बल विश्वासके हैं। और रामकबीरके लोग ठाकुरपूजा करते हैं। और सत्यनामियोंके ध्यान भी विचलित प्रायः हैं। इन बारह पंथोंका यही विवरण है और इन बारह पंथोंके अतिरिक्त कबीर साहबके और पंथ भी हैं।

कबीर साहबके भिन्न २ पंथोंका वृत्तान्त।

नानकपंथ–दादू पंथ–यानिप पंथ–मूलकदास पंथ–गणेश पंथ–इत्यादि।

इन पंथोंके अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमानोंमें कबीर साहबके कितनेही पंथ हैं जिनकी यथार्थता अभीलों भली भांति ज्ञात नहीं हुई है। इस कारणसे मैं कुछ लिख नहीं सकता हूँ। और कितने पंथके लोग ऐसे हैं कि, जिनके पंथके मनुष्य अब कबीर साहबको नहीं मानते सुतरां नानकशाह और दाऊद राम और शिवनारायणदास इत्यादि।

जो लोग कबीर साहबको नहीं मानते उनका नाम शिष्योंमें लिखना किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं है। तो भी यह नहीं कहा जासकता है कि, जो कबीर साहबको नहीं मानते हैं उसमें उनके गुरुओंका दोष है. अथवा उनके पंथदर्शकोंका जिसको दोष होगा वही दोषी माना जावेगा।

महाप्रलयका वृत्तान्त।

महाप्रलयके विवरणका निचोड़ यह है कि, प्रलयके अनेक भयानक चिह्न परिलक्षित होंगे और पृथ्वीपर पाप विशेष होंगे। महाप्रलयके सवासौ वर्ष पूर्वपर्यन्त बराबर ग्रहण लगता जावेगा, एकसौ वर्ष पर्यन्त बराबर चन्द्रग्रहण होगा और इसके उपरान्त सूर्यग्रहण होगा जब सूर्य और चन्द्रग्रहण समाप्त हो चुकेगा तब महाप्रलय आवेगी। इतनी पानीकी विशेषता होगी कि, पृथ्वीसे ऊपर इतना ऊँचा चढ़ेगा कि, जलकी लहर व झाग दश सहस्र योजन ऊँची उठेगी और समस्त जीव मरजावेंगे और समस्त शून्य हो जावेगा। पृथ्वी तथा आकाशमें कहीं कुछ दिखलाई नहीं देगा। और समस्त संसारकी रचनाको कालपुरुष समेट लेगा। और पांच तत्त्व तीन गुण कालपुरुषमें समाजावेंगे और आद्याको कालपुरुष निगल जावेगा। और निरंजनके मस्तकमें एक अर्ध गोलाकार

प्रसादशृंगके समान एक स्थान है उसी स्थानमें समस्त रचना सूक्ष्म वेषमें होकर प्रवेशित होजाती हैं । और समस्त रचनाको वह अपने मस्तकके उसी विशेष स्थानमें रखलेता है और समस्त रचनाको अपने शिरके बीचके गुम्बदमें लिये हुए सत्तर युगपर्यन्त बराबर शून्यमें फिरा करता है, सत्तरयुगके उपरान्त उसका चित्त व्याकुल होता है। जब एकान्त होनेके कारण उसके मनमें अत्यन्त घबराहट होती है और उससे कुछ हो नहीं सकता है और वह अपने चित्तमें यह शोचता है कि, मैं स्वयम् सत्यपुरुष हूं और वह बल अपनेमें नहीं पाता और दुःखी होता है कि, अब क्या करूं ? तब वह सत्यलोककी छाया अर्थात् आस पास जाकर निवेदन करता है तब समर्थकी आज्ञा होती है कि, ऐ ज्ञानी ! शून्यमें निरंजनके पास जाओ और कहो कि, वह जाकर अब कूर्मजीकी पीठके ऊपर तीन लोककी रचनाका प्रस्तार करे। उस समय ज्ञानीजी सत्यपुरुषका समाचार लेकर निरंजनके पास जाते और समर्थ की आज्ञा सुनाते जब पुरुषकी आज्ञा सुनता है, उसी समय निरंजन दौड़कर कूर्मजीकी पीठके ऊपर तीनों लोककी रचनाका सामान करते। तब निरञ्जन अपने मुहँसे आद्याको उगल देता और आद्या तथा निरञ्जन मिलकर तीन देवताको उत्पन्न करते। फिर पांचों मिलकर सब सृष्टिकी उत्पत्ति करते और पहले सत्यस्वरूप सृष्टि उत्पन्न होती है और सब लोक नितान्त ही धर्मात्मा होते हैं और जैसा कुछ कि, मैंने पूर्वमें लिखा है उसी प्रकार समस्त रचना प्रकट होती है । इस प्रकार उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश हुआ करता है। और जब उत्पत्ति होती है तब इसी प्रकार कबीर साहब मनुष्योंकी शिक्षा

के निमित्त पृथ्वीपर आया करते और मनुष्योंको मुक्ति प्रदान किया करते हैं।

यह तो ब्रह्माण्डके महाप्रलयका विवरण हुआ और इसी प्रकार पिंडकी प्रलय भी होती है। कारण यह कि, जो कुछ पिंडमें है सोई ब्रह्माण्डमें है तनिक भी न्यूनता नहीं है। परन्तु सबसे बड़ा महाप्रलय भी एक दिवस होगा। जब केवल एक सत्यपुरुष और सत्य लोकही रह जावेगा और कहीं कुछ न रहेगा। अर्थात् दयाद्वीप नामुतसे लेकर सहज द्वीप अर्थात् आहूत स्थान पर्यंत सब विलोपित हो जावेंगे। केवल सत्य-लोकमें ही शान्ति रहेगी। और सत्य लोकके हंस सब सुरक्षित और सत्य पुरुषकी रक्षामें सदैव समान रहेंगे।

कबीर साहबके अन्तर्धान होनेका वृत्तान्त।

जब काशीके मनुष्योंने कबीरसाहबकी अनेक लीलाएँ देखीं और जान लिया कि, यह तो स्वयम् परमेश्वर हैं और न किसीके मारनेसे मरते हैं न काटनेसे कटते हैं और न डुबानेसे डूबते हैं और न जलानेसे जलते हैं और न कोई हथियार आपके ऊपर फलित होता है और न मनुष्य तथा पशु और देवता आदि आपपर किसी प्रकारकी क्षति पहुँचा सकता है। तब उन लोगोंने आपसे पूछा कि, आपकी मृत्यु क्यों कर होगी? उस समय आपने कहा था कि मैं मग्गह देशमें जाकर छिप जाऊंगा। अपने कथनानुसार जब कबीर साहब एकसौ बीस वर्ष पर्यंत काशीजीमें रहचुके। दो दिवस आपके जानेमें शेष रहगए तब आपने लोगोंसे कहा कि, अब मैं यहांसे कूच करूंगा और मग्गह देशको जाऊंगा—वहां छिप रहूंगा। यह बात सुनकर

काशीके लोगोंको अत्यन्त दुःख हुआ और दुखका बादल काशीजीपर छा गया और लोग अत्यन्त दुखित हुए और कहने लगे कि, आज काशी शून्य तथा उजाड़ जान पड़ती है। आज काशीका सूर्य छिपचला और नेत्रोंके सामने अन्धकार होने लगा, सब लोग कहने लगे कि, हाय ! हम बड़े ही अभागे हैं, हमने ऐसे सत्यवादी महात्माकी आज्ञाको अंगीकार नहीं किया। समस्त नगरमें इस बातकी धूम मच गई कि, अब कबीर साहब काशीजीसे चले जावेगे । समस्त नगर दुःख तथा कष्टसे भर गया। काशीके लोग हाहाकार करते और कहते थे कि अब हम क्या करेंगे ? हाय ! हमने ऐसे महात्माका कहना नहीं माना । पीछेसे खरा खोटा जान पड़ता है। अबलों हम लोगोंको दिखलाई नहीं दिया । राय वीरसिंह बघेल राजा बनारसने जब सुना कि, सतगुरु मगहदेशको जावेंगे वहां जाकर अन्तर्धान हो जावेंगे । अब जानेके केवल दो दिवस शेष बचे हैं तब उक्त राजा अपने दलबल सहित पहलेहीसे वहां जा पहुँचा और वहांपर सत्यगुरुकी प्रतीक्षा कर रहा था। काशीवासी कबीर साहबको घेर रहे थे और उस समय आपके समीप दश सहस्र सेवक और शिष्य उपस्थित थे, उनमें कुदराम पड़ रहा था और सब बिलाप कर रहे थे और मगहदेशका अधिपति नब्वाब बिजलीखां पठान था । वह पठान कबीर साहबका शिष्य था। जब उसने सुना कि, कबीर साहब अपना अन्तिम दिवस यहां करेंगे तब बड़ा प्रसन्न हुआ कि, भली बात हुई कि, सत्यगुरु अपना अन्तिम दिवस यहां करेंगे मैं अंतिम क्रिया तथा कफन दफन सब कुछ अपने मत्यनुसार करूंगा । वह आपकी प्रतीक्षा

कर रहा था और कबीर साहब काशीसे चलकर मग्गहदेश को जा पहुँचे। आमी नदीके किनारेपर किसी साधुकी कुटी थी इस कुटीमें जाकर वह बैठ गये । और इस समय राजा बीरसिंह और नौवाब बिजलीखाँ और कबीर साहबके बहुत सेवक और शिष्य थे । वह नदी जिसके किनारेपर कबीर साहब आकर बैठ गए थे, वह अनेक दिवसों शुष्क पड़ी थी तब कबीर साहबने गुप्त रीतिसे कमलपुष्प तथा दो चादरें मँगाई और आप लेट गये और लोगोंसे कहा कि, अब ताला बंद कर दो । तब राजा वीरसिंहने कहा कि, गुरुजी मैं आपके शवको लेकर हिन्दू धर्मानुसार क्रिया कर्म इत्यादि करूगा । तब नौवाब बिजलीखां बोले कि, मैं आपको ऐसा कदापि करने नहीं दूंगा, मैं मुसलमानधर्मानुसार उनको कफन दफन करूंगा, तब कबीर साहबने देखा कि, ये दोनों युद्धके निमित्त प्रस्तुत हैं, इसमें व्यर्थका रक्तपात होगा और दोनों-को युद्धके निमित्त प्रस्तुत—दोनोंको दलबल सहित—प्रस्तुत पाया। तब आपने दोनोंसे समझाकर कहा कि, सावधान दोनों आपसमें विवाद न करना और कदापि शस्त्र मत चलाना जो मेरी बात मानेगा सो प्रसन्न रहेगा, और सत्यगुरुकी आज्ञाको दोनों दलने स्वीकार कर लिया। तब सबोंने सत्यगुरुको दंडवत् प्रणाम किया और सबका चित्त खेदसे भर गया । तब कबीर साहबने चलानेका शब्द पढ़ा और चादर तानकर लेट गये अपने मुंहपर कपड़ा ले लिया और लोगोंसे कहा कि, अब इस कोठरीका ताला बन्द कर दो लोगोंने वैसा ही किया । जब ताला बन्द किया तब एक ऐसा शब्द हुआ कि, जिसको सुनकर उपस्थित मनुष्योंके चित्तपर बड़ा प्रभाव पड़ा और जयजयकार हुआ कि, सत्यगुरु सत्यलोकको सिधार गये ।

जब उस कोठरीका ताला खोला तब केवल दो चादर मिले और कुछ कमलके पुष्प मिले, इनमेंसे एक चादर और आधे फूल राजा वीरसिंहने लिये और दूसरी चादर और कमलके फूल नोवाब बिजलीखांने लिया। कबीर साहबका शव कहीं दिखलाई नहीं दिया। राजाने चादर तथा पुष्प लेकर सत्यगुरु की समाधि काशीमें बनायी और बिजलीखाँने भी समाधि बनायी जो मगहरमें है।

हिन्दू मुसलमान दोनों गुरुभाइयोंने एक मंदिर बनाया। अद्यापि हिन्दू मुसलमान दोनों कबीरपंथी वहां मौजूद हैं। आमी नदी जो बहुत कालसे शुष्क पड़ी थी उसमें जल भर गया। जो अबतक प्रवाहित है, अगहन सुदि एकादशी सम्बत् १५७५ विक्रमीको कबीर साहब छिप गये! अन्तिम प्राकट्य में एक सौ उन्नीस वर्ष पाँच महीने और सत्ताईस दिवसोंपर्यंत आप पृथ्वीपर लोगोंको शिक्षा देते रहे थे।

कबीर साहबका आदि और अन्तमें शरीर नहीं था केवल एक तेजका प्राकट्य था। ऐसा ही कबीर साहबका प्रकट होना तथा छिप जाना है। जब इच्छा हो तब प्रकट हों और जब इच्छा हो तब छिप जावें। जब कबीर साहब मगहरमें गुप्त हुए तब पुनः मथुरा नगरमें प्रकट हुए, वहां रतको शिक्षा देकर फिर धर्म्मदासजीको बांधोगढमें दर्शन देकर उनको सब सत्यपंथका पथ और धर्म्म कर्म्मकी राह बता बयालीस वंशके नियम भली प्रकारसे कह और कालपुरुषके कपट जालसे भली भांति सावधान करके अन्तर्धान हो गये।

गज़ल।

खुरशेद फलख परतव मालूम हुआ है। इन्सान खबर खैरसे

महरूम हुआ है॥ आई जो खिजां और गया वक्त बहारी। बुलबुल गुजरा जाए नशीं बूम हुआ है। है कौन जहांमें जो मिटा डाले वह तस्तीर। जो कुछ कि कजा काजी से मरकूम हुआ है॥ तकदीर बयक नाकः बिठाला है दो महमल। एक नेकनुमा दूसरा बदशूम हुआ है। बाकी न रहे और कहीं शम्स शोआय। अफवाज लिये तब मद्दे मालूम हुआ है॥ पा खाक तेरेसे धरा एक जरः सर अपने। सो रहम दो दारैन का मौसूम हुआ है॥ जो जहर मो अस्सर बहमः सालिको मसलूक। हर इन्स व जिन उससेही मसमूम हुआ है॥ आई सब और पुश्त दिखाया शहे आदल। रैयत जमाः जम जोरसे मजलूम हुआ है। इस अहदमें कोई न सुन मर्दुम फरियाद। मखलूक मलिक मौतका महकूम हुआ है॥ है मौत का चारः आदम जाद बिचारः। अज रोजे अजल उसके ही मकसूम हुआ है॥ क्या कह सके तुझसे न कहा जाय सो आजिज। जो कुछ कि तुझे गैबसे मफहूम हुआ है॥

कबीर पंथके धार्मिक नियम।

कबीर मन्शूर से।

१–एक अविगत अतीत ब्रह्म सत्य पुरुषकी भक्ति करना, उसके अतिरिक्त किसी ओर भी ध्यान न करना। वह ब्रह्म (सत्य पुरुष) केवल पारख गुरुकी शिक्षा और स्वसंवेदके अध्ययन (पढ़ने) से जाना जाता है, अन्य कोई भी मार्ग उसके प्राप्तिका नहीं है।

२–सत्य पुरुष और कबीर साहब एकही हैं, केवल नाम मात्रकाही भेद है। वह एकही दो नामसे कहे जाते हैं, उनमें

लेशमात्र भी भेद नहीं समझना, जो भेद समझेगा उसकी मुक्ति होनेमें भी भेद रहेगा ।

३—अपने गुरुकी सेवा तन, मन, धनसे करना । गुरु बचन का विश्वास करना । गुरुका आज्ञाकारी रहना । सत्य कबीर और गुरुमें कुछ भी भेद न समझना, गुरुके ऐश्वर्य्य और सिद्धि आदिका विचार न करना । जो अपने गुरु को ईश्वर करके मानता है और ईश्वरके समान ही उसमें भक्ति रखता है उसीका कार्य्य पूर्ण होता है । जो गुरुमें भेद बुद्धि करता है वह हतभाग्य सदा निष्फलता ही पाता है ।

अपने उपार्जनका दशवाँ भाग अवश्य गुरुके भेंट करना । सदा अधीनतासे गुरुका धन्यवाद करते रहना ।

४—साधुकी सेवा, भेदबुद्धि त्यागकर, सदा प्रेम और भक्तिसे करना जिसपर संत गुरुकी दया होती है वही दोनों लोकोंमें भाग्यवान होता है । वही दोनों लोकोंमें सफलकाम होता है ।

सर्व प्रकारके साधुओंकी सेवा निष्कपट हृदयसे करना परन्तु ज्ञानी विचारवान, विवेकी पारखी सन्त जो सत्य पुरुषकी भक्तिका उपदेशकर सदाचरणमें लगावें, उनकी सेवामें सदा तत्पर रहना । विशेषतः स्वधर्म्मके सच्चे विवेकी सन्तोंकी शिक्षाको सावधानीसे सुनना और उनको ध्यानपूर्वक विचारना चाहिये क्योंकि, स्वधर्ममें पूर्ण और दृढ़, सन्तोंके वचनसे धर्ममें दृढ़ आस्था और स्वधर्म प्रवीणता होती है । इसके उलटा परधर्म[१] (विपक्षीधर्म) के पक्षपाती साधुओंके वचनसे स्वधर्ममें अश्रद्धा और भ्रम होता है ।

१—पर धर्मके पक्षपातीको अपने धर्म पुस्तकमें भी किसी प्रकारसे हस्ताक्षेप करने न दे । उनसे कभी भी अपनी धर्म पुस्तकके शुद्ध करने अथवा अनुवाद आदि अभिलाषा न करे ।

जिस साधुमें अपने गुरुसे मिलते हुए गुण पाये जावें उसको अपने गुरुसे भिन्न न समझना, अभेद बुद्धिसे श्रद्धापूर्वक निष्कपट भक्ति करना।

५–सर्व चराचर जीवधारियों पर समान भावसे दया रखना, किसी स्वरूप आकारमें भी कोई जीवधारी हो, सबको अपने शरीर और आत्मा समान जानना। किसी देश कालमें भी किसी जीवधारीको दुःख न देना। संसारमें अपना निर्वाह इस प्रकार करना कि, कभी भी अपनी ओरसे किसी जीवधारीको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचे। सब जलचर, थलचर, वनचर, पशु, पक्षी, स्थावर जंगम पर समान दया दृष्टि रखना, सबको अपने ही शरीर और प्राणके समझना।

६–मांस अहारको सब घोर पापोंमें बड़ा पाप समझना। मांस अहारी चाहे कैसे भी गुण और पुण्यसे पूर्ण क्यों न हो परंतु कभी भी वह सत्य मार्गको प्राप्त नहीं कर सकता। मांसाहारी आत्मज्ञानका अधिकारी नहीं हो सकता, उसकी मुक्ति कदापि नहीं होसकती।

७–मदिरा तथा अन्य सर्व मादकपदार्थ भी मांसके समान ही त्याज्य हैं। कोई मादकपदार्थका व्यसनी ध्यान नहीं कर सकता, ध्यान बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता, ज्ञान बिना मोक्ष नहीं मिलता।

८–व्यभिचारी नर्कको प्राप्त होता है।

९–जितने आकार और रूप ब्रह्माण्डमें हैं वे बुत कहलाते हैं, उनमेंसे किसीको भी पूजनेवाला मोक्षका अधिकारी नहीं हो सकता। जिस प्रकार बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) ज्ञान

१–आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति।

मार्गकी टट्टी है, इसी प्रकार गुरु मूर्तिका ध्यान और उसकी भक्ति, ज्ञानद्वारकी कुंजी है।

१०–जो कुछ भोजन, छाजन आदि अर्थात् अपने यात्रा सम्बन्धी पदार्थ होवे, सो सब प्रथम परमात्मा (सत्य पुरुष) को अर्पण करले तब स्वयम् स्वीकार करना।

कोई भी पदार्थ जो प्रथम किसी देवी देवताको अर्पण हो चुका हो उसे सत्यपुरुषके भक्ति करनेवालेको कदापि ग्रहण न करना चाहिये उसे कभी भी अपने काममें न लाना चाहिये क्योंकि, सत्यपुरुषको अर्पण किये बिना किसी भी पदार्थका ग्रहण करना महापाप है और जो पदार्थ दूसरे देवी देवताको भोग लग गया वह सत्यपुरुषको अर्पण हो नहीं सकता क्योंकि, दूसरे देवका अर्पित पदार्थ सत्यपुरुषको अर्पण करना एक तुच्छ सेवकके जूठे पदार्थका बादशाहको अर्पण करनेके तुल्य महान अपराध और अनर्थका कर्ता है।

सत्यपुरुषको भोग लगाये बिना भी कदापि कोई पदार्थ ग्रहण न करे। जो सत्यपुरुषको अर्पण करके किसी पदार्थको ग्रहण करता है उसका फल अमृत समान मिलता है इसलिये उचित है कि, अत्यन्त शुद्ध और स्वच्छ भोजन आदि काममें लावे।

११–न झूठ बोलना न झूठ वचन देना, न झूठे का संग करना और न झूठेसे किसी प्रकारका व्यवहार करना।

१२-न चोरी करना, न चोरोंको साथ देना, न उनकी सम्मतिमें सहमत होना, न उनको सम्मति देना, न उनका माल लेना, न उनके निकट जाना।

१३–जूआ न खेलना, जूआ महान दुखका घर है,

जुआरियोंकी महान् दुर्दशा होती है। महाराज नल, महाराजा युधिष्ठिर आदि पुण्यस्वरूप धर्मावतारोंको भी इस जूआने कैसा नष्ट और दुर्दशाग्रसित कर दिया। जूआ, झूठ, चोरी, व्यभिचार और हिंसा आदि सब पाप परस्पर ऐसे संबन्ध रखते हैं कि,एक दोष आनेसे क्रमशः सर्व आपही आप आ जाते हैं। इनमेंसे एकको भी धारण करनेवाले पुरुष महान् कष्ट और दुःखोंको संसारमें अनुभव करते हुए परलोकमें नर्कके भागी होते हैं।

१४–शरीरके ऊपर द्वादश तिलक लगाना, कपालमें खड़ी लकीरके समान सीधी तिलक करना, वैसे ही मस्तक, दोनों आंख, नाभि, हृदय, दोनों भुजा और दोनों छातीसे लेकर मोढे-की ओर फिरता हुआ, पीठपर और कानपर तिलक करे।

१५–वस्त्र श्वेत और उज्ज्वल रखे।

१६–ग्रीवामें तुलसीकी माला और तुलसीकी कंठी धारण करे।

१७–सत्य नामका जप, कीर्तन और भजन करे।

१८–सत्य पुरुषकी भक्ति और सत्य पंथका उपदेश करे। एक मनुष्यको सत्य पुरुषकी भक्ति और सत्य पंथमें प्रवेश करानेका फल क्रोड़ों गऊको कसाईके हाथसे बचानेके पुण्यसे भी बढ़कर है।

१९–यंत्र[१], मन्त्र, तन्त्रादिकी ओर कभी ध्यान भी न दे, ये मुक्ति और भक्तिके शत्रु हैं,इनका साधन करनेवाला छल कपटके व्यसनमें फँसकर महा दुराचारी हो नर्कका अधिकारी होता है, जितने तन्त्रादिके साधन हैं सब नर्कके मार्ग हैं।

२०–स्वसंवेद[२]के बिना दूसरी पुस्तकोंसे मुक्तिपथ मिलनेकी

---

१ यंत्र मन्त्र तंत्रका आशय देखो, पण्डित श्रद्धाराम फिल्लोरी विरचित सत्यामृत प्रवाह पृष्ठ १८० में।

२–वेदादी विद्या सबै, बोध हेतु हिय धार। सब मत महरम करे,तब देखो निजसैन॥

आशा न रखना, परन्तु अन्य पुस्तकोंको बोध और 'ज्ञान वृद्धिके हेतु पढ़ना।

२१-सत्य कबीर और उनके सच्चे हंस और कडिहारके अतिरिक्त दूसरेको मुक्तिपथका दर्शन नहीं समझना।

२२-पारख गुरुकी शिक्षा बिना मुक्ति कदापि नहीं हो सकती।

२३-सत्य पुरुषकी भक्तिके अतिरिक्त अन्य सब भक्तियां भवसागरमें डुबानेवाली हैं।

२४-तीर्थ, व्रत आदि सब यमके बन्धन हैं।

२५-नौधा भक्ति और चार प्रकारकी मुक्ति सब बन्धनही हैं।

२६-निर्गुण और सगुणके ध्यान करनेवाले सदा बन्धमें रहते हैं।

२७-हिन्दू[1], मुसलमान, ईसाई, यहुदी आदि सब जाति और धर्म्मके लोग कबीरपन्थमें मिल सकते हैं सबके हेतु समान ही भक्ति और मुक्ति है।

२८-नर्क स्वर्ग तथा अन्य सर्व लोक अज्ञानियोंके हेतु ठहराये गये हैं जिसको सत्य आत्मज्ञान प्राप्त हुआ उसके हेतु सब असत्य और भ्रममात्र हैं।

२९-सार शब्दके अतिरिक्त मुक्तिका द्वार कोई भी नहीं।

३०-निन्दा, ईर्षा, वैमनस्य, छल, कपट, अभिमान आदि मुक्तिके शत्रु हैं।

३१-अधीनताके द्वारा सर्व शुभगुण और पुण्य प्राप्त होते हैं।

३२-मुक्ति मार्ग बहुत सांकरा और नर्कका मार्ग बहुत चौड़ा है।

१-कबीर-हम बासी वहि देशके, जहां जाति वरण कुल नाहिं। शब्दमिलावा होय रहा, देह मिलावा नाहिं॥ जाकी मर्यादा जौन विधि, वरते सोई प्रमान। जमा मांहि कछु भेद नहीं, उज्ज्वल धर्म औ ज्ञान।

३३-कबीर साहब विदेह हैं उनका देह कभी नहीं कल्पे।

३४-कैसीहू विपति क्यों न आनपड़े अपने सत्यगुरुके अतिरिक्त किसी दूसरेकी सहायताका ध्यान न करें। सत्यगुरुके अतिरिक्त किसीसे भी किसी प्रकारकी आशा न रखे।

३५-जो कोई सतगुरुकी शरणमें आवे उसे शरणके नियमोंको भली प्रकार पूर्ण करना उचित है। पूर्ण विश्वास रखे कि सत्य गुरु अवश्य कालके जालसे निकालेगा और दुःखसागरसे पार करेगा।

३६-सत्यगुरुकी कृपाका धन्यवाद कभी न भूले, क्षण क्षण में धन्यवाद ही देता रहे। ऐसा नहीं कि, प्रथम तो प्रार्थना करता रहे और पश्चात् भूल जावे। कृतघ्नी कभी भी मुक्त नहीं होता।

३७-ईश्वरीय भय मुक्तिका चिह्न है। मृत्युको सदा स्मरणमें रखना।

३८-सच्चे प्रेमके बिना भक्ति निष्फल है।

३९-धन्य हैं वे जो शरीरका मोह छोड़कर भक्तिमें लगते हैं।

४०-उदारताके बिना कोई भी भक्तिता पद प्राप्त नहीं कर सकेगा। उदार दोनों लोकमें सुखी होता है और उसका थोड़ा पुण्य भी बहुत फलदायक होता है। कृपणके भजन और तपस्या निष्फल होते हैं, चाहे वह जितना भक्ति और भजनका ढोंग करे परन्तु निष्फलताके अतिरिक्त उसको कुछ भी प्राप्त न होगा। कृपण दोनों लोकमें दुःखका ही भागी होता है।

४१-मौन परम उत्तम गुण है। आवश्यकताके अनुसार यथा अवसर बोलना, निरर्थक बकबक न करना। मिथ्यालाप करनेसे आत्मा और शरीर सबकी हानि है।

४२–सत्यगुरु (कबीर साहब) की वाणीका पाठ करना, बारम्बार मनन करना, उनके आशयके ऊपर विचार करना, उसके भेदको भली प्रकार सोचना, समझना और सदाकाल उन्हींका चिंतन रखना। उनके आशय समझनेमें कोई भी युक्ति उठा नहीं रखना। सत्यगुरुके शब्दोंको यथा अवसर गाना और कीर्तन करना, सत्य गुरुकी प्रशंसा और प्रार्थना सदा करते रहना।

४३–जितने धर्म संसारमें प्रचलित हैं सबके आचार्य्य कबीर साहब हैं परन्तु मुक्तिदाता तो स्वयम् (कबीर साहब) और चार गुरु तथा उनके वंशोंकोही ठहराया है, अन्यको नहीं।

४४–किसीको कभी शाप न देना, किसीको कुवचन न कहना, न किसीका अहित चिंतन करना।

४५–परमात्माको सर्वत्र पूर्ण जानना। किसी प्राणिको भी दुःख देनेको ईश्वरको दुःख देनेके तुल्य जानना।

४६–अभिमानी कभी परमात्माको व्यापक नहीं देख सकता।

४७–गुरुकी आज्ञाकारिता परम तपस्या है।

४८–जबतक शरीरसे लाड़ प्यार है उसकी पोषणमें वृत्ति लगी है तबतक आज्ञाकरिता असम्भव है।

४९–मूर्ख, शठ और विद्याहीनको मुक्तिपद कदापि नहीं मिलता।

५०–जबतक शरीरका भय और चिंतन है अर्थात् देहाभिमान है तबतक विदेह कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। जो स्वयम् विदेह हो वही विदेहको प्राप्त हो।

कबीर साहबके लोक और हंसोंका वृत्तान्त।

कबीर साहबका वह लोक है जिसका गुण कहने और सुनने-के बाहर है, केवल स्वसंवेद थोड़ासा विवरण करता है।

जिस समय उस लोकको हंस चलते हैं उस समय उनके प्रतापका वर्णन कुछ किया नहीं जा सकता है, उनके सौन्दर्यका बखान किससे हो सकता है जिनका एक एक बाल ऐसा देदीप्यमान और तेजमय है कि, जिसके सामने करोडों सूर्य और चन्द्र छिप जावें, उनके सौन्दर्य्यका वर्णन कौन करसके उन हंसोंके मनमें तनिक भी बासना नहीं रहती है और निरंजन, आद्या, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ऋषि,मुनि इत्यादि वासनाके ही अधीन हो वारम्वार संसारमें जन्म लेते हैं । राम कृष्ण सिद्ध साधु इत्यादि सब धर्म वासनासे जन्म लेते हैं ।

जिस समय कोई मनुष्य मरता है तब उत्तरकी ओर होकर ऊपर चलकर प्रथम विष्णुके निकट अपने पाप पुण्यका लेखा देनेके निमित वैकुण्ठको जाता है और जब हंस कबीर चलते हैं तब सत्यगुरुके शब्दके लवद्वारा अपने पूर्ण बलसे ऊपर की ओर चढ़े चले जाते हैं जब ब्रह्माण्डके पार हुआ चाहते हैं तब धर्मरायकी तीनसौसाठ कन्या मिलती हैं जिनके वस्त्र आभूषण और सौन्दर्य आदिका मैं क्या वित्ररण करूँ ? सत्यकबीरके अतिरिक्त ऐसा कोई भी तीनों लोकोंमें नहीं है कि, उनको देखकर आसक्त न हो जावे; वे कन्यायें उस स्थानपर इस कारण नियत की गई हैं कि, हंस कबीरको अपने जालमें फँसालेवें जब वे हंस कबीरके निकट जाती हैं तब नाना प्रकारके हावभाव कटाक्ष द्वारा उनको मोहित करना चाहती हैं । परन्तु वे उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते ! वे कहते हैं कि दूर हो और चली जा तुम्हारी तनिक भी इच्छा तथा कामना हमको नहीं है । तब वे निराश होकर लौटती हैं । भला मकडीके जालमें भारी पदार्थ कैसे फँस सकते हैं । जब

हंस उनको अनादर करके चलते हैं तब आगे धर्मराय मिलते हैं दंडवत् प्रणाम करते हैं और हंस ऊपरकी ओर चले जाते हैं। जब सत्यलोकको पहुँचते हैं तब सत्यलोकके हंस उनकी अगवानीके निमित्त बाहर निकलते हैं और प्रत्येक हंस अपने हृदयसे लगता मिलता और प्रसन्न होकर कहता है कि, बहुत दिवसोंके पृथक् हुए हंस आज हमसे आकर मिले। समस्त हंस मिलकर उनको सत्य पुरुषके निकट ले जाते हैं और वे हंस सत्यपुरुषका दर्शन पाते और दंडवत् प्रणाम करके कृतार्थ हो लोकमें बास करते हैं।

शेर ।

मुर्गे रूह आखिरी नफसको। जब छोड़े इस उनसरी कफसको॥
सतलोक सिधार साथ सतमाज। उसवक्त करे बुलन्द परवाज॥
दर सिम्त शुमाल सरबसर जाय। बासुर अत सो उबूर कर जाय॥
वह नूरो जलाल बेबयाँ है। गुफ्तारे कबीरमें अयाँ है॥
जब सुकृत लोक रुखरवाँ हो। रागोरंग देखते दवाँ हो॥
देखे कहीं सब्जः लाल जाराँ। बाहुस्नोजमाल गुलअजाराँ॥
सदहा गुलशन चमनबहारी। शीरीं नहरों पुर आब जारी॥
गहे बर्क बदन है नाजनीनाँ। हे खूब लगी बजार मीनाँ॥
है फिरते कहीं ये हूरो गिलमाँ। बैठे कहीं जाहिदो मुसलमाँ॥

सैकडों प्रकार की बस्तियां और सृष्टिकी रचना देखते हुए ऊपरको चलता है—और स्वर्गों तथा वैकुण्ठोंकी सैर करते और समस्त बस्तियों और शून्यको पार करके तब सत्यलोकको पहुँच जाता है।

कबीर साहबका मंगल ।

चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ो यह संसारा हो।

यहि संसार काल है राजा, कर्म्मको जाल पसारा हो।
चौदह खंड बसे वाके मुखमें, सबही को करत अहारा हो।
जारबार कोयला कर डारन, फिर फिर दे अवतारा हो।
ब्रह्मा विष्णू शिवतन धरिया, और को कौन विचारा हो।
सुर नर मुनि सब छलछल मारले, चौरासीमें डारा हो।
मध्य अकाश आप जहँ बैठे, ज्योति शब्द ठहियारा हो।
ताको रूप कहांलग बरनो, अनंत भान उजियारा हो।
श्वेतस्वरूप शब्द जहां फूले, हंसा करत बिहारा हो।
कोटिन चांद सूर्य छिपि जैहैं, एक रोम उजियारा हो।
वही पार इक नगर बसत है, बरसत अमृत धारा हो।
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा, लखो पुरुष दरबारा हो।

इस सत्य लोककी मनोहरता और हंसोंका रहन सहन और रीति व्यवहार सूक्ष्मवेदके पढ़नेसे जाना जावेगा।

मुसद्दस।

यह हरदो जहां काल पुरुषके है हिजारे।
हर सिम्त व हर जायमें यम जाल पसारे॥
यक लोक व यक वेद दो दरियाके किनारे।
सैयादके काबूमें हैं सब जीव बेचारे॥
चलती है यहां तेग व तलवार दो धारे।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥
जब भूल गया आदमको आपही आपा।
पावन्द हुवा तिफली जवानी व बुढ़ापा॥
सब पर है लगा मलिक मौत मोह व छापा।
है आग लगी बेशः जलेगा यह सरापा॥
जलते हैं धोल उड़ते धुवें धार शरीरे।

चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे ॥
अफसोस लिया लूट धरम धरमन धूरत ।
एक इश्क जदः भई है एक हुस्न है औरत ॥
हर कौन किया भौन है यह मोहिनी मूरत ।
दिल पार हुवा पारः बमह पारए सूरत ॥
बाजार खड़े मार बा बीमार नजारे ।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे ॥
कैलास चलेगा व जिनूँ लोक चलेगा ।
अमरावती अलकावती गोलोक चलेगा ॥
सब स्वर्ग चलेगा व तपोलोक चलेगा ।
जो हद जनो मर्दमें सो लोक चलेगा ॥
वोभी चल जावे जहां नौलाख सितारे ।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे ॥
कोई न रहे एक पुरुष लोक रहेगा ।
आवे जो वहांसे सो खबर उसकी कहेगा ॥
सब कौल कर शमः अजिले सोल बहेगा ।
जिसको वह नजरआवे सो फिर कछु न चहेगा॥
निश्चल सो रहे कायक जहां अमृतधारे ।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे ॥
हंसोंकी हुस्न खूबी कही जाए सो कैसे ।
यह नातिकः गुम सुम्म बयां कीजिए ऐसे ॥
एक मूय मुनौविर कह इस नूरका जैसे ।
छिप जायँ करोडों महेहुर तलअत तैसे ॥
सब हंसापुरुषरूप पुरुष उनको दुलारे ।

चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥
जहाँ रात न दिन है व नहीं सूरज चन्दा।
सोहँग दुरै चँवर करे पुरुष अनन्दा॥
यक मूरत सारे न खुदावन्द न बन्दा।
इस मंजिल नजदीक नहीं कालका फन्दा॥
जिस लोक महेशःको परमहंस पधारे।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥
सतगुरुकी शरण लेके चलो वहके उसपार।
वह कादिर मुतलक हुवा जिस जीवका मददगार॥
कर पलमें सुबुकदोष उठा उसका गराँ बार।
पहुँचावे वतनमें न बुतनमें होवे औतार॥
आजिज से गुनहगार कतारोंको जो तारे।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥

इति कबीर चरित्र बोध समाप्त।

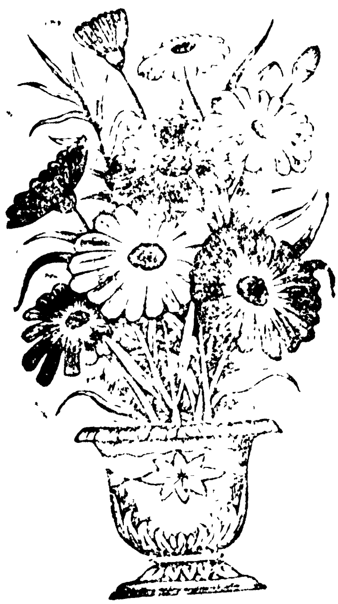

सत्य

अथ गुरुमाहात्म्य-प्रारंभः ।

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.

संवत् १९८७, शकाब्द १८५२.

सत्य नाम ।

श्री कवीर साहिव ।

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतान, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानाम की दया, वंश-ब्यालीसकी दया ।

अथ श्रीबोधसागरे

अष्टत्रिंशतिस्तरंगः ।

अथ गुरुमाहात्म्य-प्रारम्भः ।

धर्मदास वचन ।

धर्मदास कर जोरे ठाढ़े । एकटक सुरति प्रेमचित बाढ़े ॥
करहु दया तुम निर्गुण स्वामी । वचन सुनावहु अन्तर्यामी ॥
किमि गुरु ध्यान बन्दना कीजे । होहि सुदृष्टि मोहि कहि दीजे ॥
जा पद जीव तरे भवसागर । शोक हिये हंसनपति आगर ॥
तेहि मगाशिष गुरुपद लागू । नहिं धन धाम होय अनुरागू ॥

सतगुरु वचन ।

धर्मदास बूझे भल ज्ञाना । तुमसे कहौं सत्य चितमाना॥
साहेब सम सतगुरु कहँ जानो । दुजी भावना चित्त न आनो॥
जब गुरु मिले करे परनामा । छन छन पल पल आगे जामा॥
गुरु चाहत जो शिष हे नागर । होय अधीन शीख मतिआगर॥
शीष सुमिरि निशदिनअनुरागा। पानदेन वाइस मतभागा ॥
सद्गुरु शब्द गहे टकसारा । भवजल जीव उतारे पारा ॥
सद्गुरु कर्म देखि जिव केरा । तत्क्षण गुरू करहि निर्वैरा ॥
तिनुका तोरि देइ जिव याना । फिर नहिं जन्म धरे भवआना॥
तुरते तब पावे टकसारा । होय हिरण्मय हंस हमारा ॥
वर्णभेद निर्णयकरि पावे । कालत्रास तेहि निकट न आवे॥
प्रथमहि गुंजबरणको लेषा । सत्यशब्द गुरु कहैं विशेषा ॥
गुंजवरण जो हंसा होई । गुरुलहि तेई हंस समोई ॥
गुंजवरण पावे परवाना । राय बंकेज हंस मगु जाना ॥
कर्म देखिकै तिरन तुरावे । राय बंकेजको पान जो पावे ॥
साखी–देहि पान जेहि जीवको, कर्म कटा तेहि जान।
हंस होय सत्यपुर चले, सद्गुरु वचन प्रमान ॥

चौपाई ।

वरण भेद पावही प्रवाना । सो हंसाकर लोक पयाना ॥
पावे दर्श पुरुषके जाई । रहे अटल पुनि छत्र तनाई ॥
करे अटल युग युगका राजू । जिन पाया निर्णयका साजू॥
होय बहुरि स्थिर गर्भ न आवे। वरण भेद परवाना पावे ॥
सो गुरुकी पुनि आरति कीजे। चरण पखारि चरणरज भीजे॥
सो रज हिय अरु शीश चढावे।कालप्रबल तेहि निकट न आवे॥
ऐसे गुरू मुक्तिके मूला । तेहि पद सम दूजा नहिं तूला॥

गुरुसाहेब जाने दृढ़ हीता। जेहि परताप काल जग जीता॥
शिष्य जो करे गुरूसे चोरी। अजगर योनि होय तेहिकेरी॥
शिष्य जो गुरुसे अन्तर करई। जन्म जन्म चौरासी परई॥
गुरुनिंदा श्रवण सुने जबही। वेगिहि ठांव तजे पुनि तबही॥
जेहि कानन सुमिरन सुनि लीन्हा। निंदा सुनि चह मूँदन कीन्हा॥
साखी-गुरुनिंदा श्रवणन सुने, तत्क्षण छोड़े ठांव।
जेहिकान गुरुस्तुति सुने, निन्दा निकट न ल्याव॥
गुरुसे द्रोही शिष्य जो, संतन कीन्ह विरोध।
सो चौरासी भर्म ही, मारे काल करि क्रोध॥

चौपाई।

गुरुकी आशीष नहिं मानी। करि अभिमान कालसम जानी॥
गुरुहि छोट करै शीष समाई। सोई जन्म जन्म भरमाई॥
शिष्य जो भोगै गुरुकी नारी। होइ अजगर बसै विपिनमँझारी॥
तन छूटे धरि वृष अवतारा। लहि अनेक विधि पापविकारा॥
काया छुटै वृषभकी जहिया। स्वानजन्म पुनि पावे तहिया॥
भूँकि भूँकि जग मरे गँवारा। विषय पाप पचवे संसारा॥
शूकर जन्म होय पुनि ताही। सकल अपावन निशिदिन खाही॥
निलज होय योनिनमें परई। लख चौरासी भ्रमता फिरई॥
साखी-पाप विषय नहिं परिहरे, मरि मरि ले अवतार।
कहें कबीर धर्मदाससों, ऐसे कर्म अपार॥

धर्मदास वचन-चौपाई।

धर्मदास विनती अनुसारी। हे सद्गुरु मैं तुम बलिहारी॥
तेहि जीव किमि होय उबारा। फांसी डारै काल अपारा॥
सो साहब कहिये मोहिं सांचै। जैसे जीव कालसे बांचै॥

सद्गुरु वचन।

धर्मदास बूझेहु भल बाता। सो अब तोहि कहों विख्याता॥

कुटिल है जीव कर्म अति आगर। तासु कथा भाषों सुनो नागर॥
चौथी पीढ़ी अंश मम होइहैं। नाम प्रमोददास जग पैहैं॥
दास प्रमोद प्रकटि संसारा। लेखा शब्द देहि टकसारा॥
जीव अंध शरण कर्म जैहैं। तासु कर्म सब दूरि बहैहैं॥
नरियर हाथ लेहि पुनि जाका। तिरन तुराव कर्मगति ताका॥
ता पीछे परवाना देहैं। हंस उबार अपन कर लेहैं॥
सत्यशब्द चले टकसारा। पलमें हंस उतारे पारा॥
दास प्रमोद प्रकटे जगमाहीं। बिछुरे हंस लोककूं जाहीं॥
अमृत धारी देहि प्रवाना। सो हंसा पुरुष मनमाना॥

साखी--कर्म कटे तेहि जीवके, जाकहँ देहैं प्रान।
ऐसे ऐसे पुरुषके, हंस करे निर्वान॥

चौपाई।

जेहि जीव देहैं कड़हारी। सत्यशब्द देहैं टकसारी॥
ध्यानभेद भाषो समुझाई। निर्णय देख हंस मुकताई॥
निर्णय पाय करे कडहारी। धर्मराय मुख जरत उबारी॥
सो कडिहार सत्य धर्मदासू। जीवन कर्म करे जो नासू॥
निर्पवनहिका करे विचारा। तासु जीव हम पार उतारा॥
निर्पवनहि ले गहिहे हाथा। " " "॥
छहरतके आगे भाषा। तावट हंसलोक ले राषा॥
सोई पवन हंसन रखवारा। भवजल जब उतारे पारा॥

साखी--छहतरके आगे, सतहत्तर गह योग।
जरा मरण भम मेटके, कबहि न व्यापै सोग॥

चौपाई।

सात पाँच नरियरमें नाहीं। ता सजीव जानें गहिहो वाहीं॥
ताहे जीव आपना जानी। कर्मरूपता कर्म न मानी॥

युग बंधन पाये जो पाना। हंस होय सत्यलोक समाना॥
दृढ प्रतीत होइ करे गुरुसेवा। भक्तिहीन गुरु पावन देवा॥
साखी-दीन्ह नील जेहे नानहूँ, भक्तिभाव अनुराग।
निश दिन गुरु चरण गहे, हंस होवे बड़भाग॥

धर्मदास वचन--चौपाई।

धर्मदास कहे हंसन पति राजा। भलविध कीन्ह हंसको काजा॥
तुमहि पुरुष हो तुमही ज्ञानी। तुमहीं वंश रूप हम जानी॥
पुरुष रूप तुम उत्पन्न कीन्हा। वंश रूप जग तारण लीन्हा॥
सतयुग कौन जीव जग रेहू। केहि विध हंसन आन उबारेहु॥
कौन नग्र कहवा तुम गयऊ। केतिक जीव शरण तुम भयऊ॥
कैसे सेवा कीन्ह बनाई। हिये दलक होके समुझाई॥

सतगुरु वचन।

पुरुष अवाज आये भव सागर। सत्य सुकृत हम नाम उजागर॥
उत्तर दिशा गयउ निज ठामा। श्रीनग्रै पहुँचेउ तब ग्रामा॥
राय मोहम तहाँके राजा। भक्त करत भेटत कुल लाजा॥
सुन्दर बदन रूप अधिकाई। परजा सुखी राजसुख पाई॥
शुचि संयमआत्मज्ञान उजागर। दीन लीन्ह संतन सो आगर॥
करत खोज साधू सो प्रीती। अति आनंदरूप सुखरीती॥
भांति भांतिके मंडप छावा। साधु संत आदरके लावा॥
करे महोत्सव साधु बोलाई। प्रेम पुरुष निशदिन मनभाई॥
निश दिन वेदकथासों प्रीती। कौनभांति जिव यमसों जीती॥
साखी--खोज करत चित व्याकुल, ढूँढत सगलो भेष।
सिरजनहार बतावई, सबही कहत अलेष॥

चौपाई।

चले राय तहां बद्रीनाथा। सुत सुमित्र लिये रानी साथा॥

साधुरूप हमही कर लीन्हा। रायसंग तत्क्षण पग दीन्हा ॥
गये नृप जहवाँ प्रीतमबिराजा। भांति भांतिकर बाजन बाजा ॥
कछुक द्रव्य ले आगे राषा। विनय दंडवत बहुविध भाषा ॥
होत कुलाहल मंगल चारी। भांति भांति गावे नर नारी ॥
बद्रीपरश रायकर आसन। बैठे नृपति जाय सिंहासन ॥
हम जीवन सौशब्द पुकारा। धार धार फिरे सेवनके धारा ॥
चेतहु प्राना शब्द सँदेशा। चलो जहां तहां हंस नरेशा ॥
तहवाँ जाय बहुरि नहिं आवे। एक चित्त होय नाम लोलावे ॥
सकल जीवसे कहेउ चेताई। एको जीव नहीं पतिआई ॥
सात दिवस रायहि तब बीता। कौतुक एक तहां हम कीता ॥

छंद--गयउ मंडपपास तत्क्षण जहां बद्रीनाथ हो।
रूप पाहन कीन्ह पारस दिनेहु मस्तक हाथ हो ॥
बीति निशि भिनसार भो तब जाय पंडा पूजहीं।
करत आरति भयउ चक्रित देखादेजावे तब बूझहीं॥

सोरठा–आरत आहेकू घात, प्रतिमापद कंचन भयो।
कहत सकल सो बात, राजारामदासजाय जनायो ॥

चौपाई।

राजा सुनत हर्षि चित दीन्हाँ। प्रभु मायाको जानन लीन्हाँ ॥
भयो अचम्भो लोगन सबही। लीला आप कीन्ह प्रभु अबही॥
स्तुति करत बहुत हर्षाहीं। सत्य भेष कोइ चीन्हत नाहीं॥
राजा दिल केरे सब साधू। चले संत जुथ जुथ मतबाधू ॥
राजा झारी लीन्हे हाथा। सकल भेद कह नावहि माथा॥
रानी साधुन चरण पखारा। राजा आपन कर जल ढारा ॥
सकल भेष कहे बैठे जेवनारा। जय जय मंगल होत उचारा॥
तब हम तहां बैठे जाई। पूर्ण शशी सम रूप दिखाई ॥

श्वेत अंग कीन्हेउ अति पावन । बैठे अधर सुकृत मन भावन॥
देखि लोग सब भये अचंभा । हर्षित राय चरण गहिथंभा ॥
बहुतक साधू मम गृह आया । ऐसे साधू नहिं हम पाया ॥
को तुम आहु कहांते आई । आपन परचे कहो बुझाई ॥

सुकृत बचन ।

जो तुम बूझहु राय सुजाना । आपन कथित कहां सैदाना ॥
अमरलोकते पुरुष पठाई । जीव उबारन हम जग आई ॥
आए उत्तर दिश चितलावा । श्रीनग्र तुम कारण आवा ॥
बद्रीनाथ आवें तुम जहिया । पापपुञ्ज सब भागे तहिया ॥

छन्द–जीव सबसों कहेउ घरघर, शब्द काहू ना गहे ।
गयउ बद्रीजीको मंदिर, चित्त मम हर्षित अहे ॥
दीन्ह मस्तक हाथ तत्क्षण, रूपपारस जिन दियो ।
प्रीति तुव हिय देखि दृढ़ होय, दरश अब तोकह दियो॥

सोरठा–भक्त हेतु तुव अंग, साधन प्रिय तुव हिये अहे ।
निश साधनके अंग, तातचित तोहे राचहे ॥

चौपाई ।

एतिक बचन राय सुने जबहीं । राजा बचन माहि विहसि तबही ॥
निःसंगत जिमिउगे अकाशा । कोक शोक मिट होत हुलासा ॥
इमि राजा दर्शन आनंदा । जिमि चकोर पायो निशिचन्दा॥
रानी राय चरण उर धारा । क्रिया कीन्ह मम ब्रिथा बिसारा॥
मोहि सनाथ कीन्ह प्रभु पावन । मग अकर्म हमरा मनभावन ॥
आपनकर कीजे मोहि दाया । हम चीन्हा यह तुम्हरी माया ॥
सकलजीव चकित मन भायउ । नगरलोग सब देखन धायउ ॥
तरुण वृद्ध औ बालक धाए । सबही देखि प्रदक्षिण लाए ॥
सन्त वृद्ध बहु जुरे अपारा । अस्तुति करे सकल बहु वारा॥

छन्द–पाणि जोरे राय ठाढे दोहु पद मोहि पावनो।
चरण कमलअधार तुम्हरे उभय ओर नभावनो॥
छोड़ी नारी पुत्र पुत्री तुरगधन गज संपता।
राज काजगूमान छोड़ेउदेखत तब पद मन रता॥
सोरठा–अब प्रभु तुमते काज, यहि विध मनमें मानि तोहि।
तजे लोक कुल लाज, सत्यपद चित अनुराग मोहि॥

सतगुरु वचन–चौपाई।

राजा विनय कीन्ह बहु मोरी। हृदय गुमान तजीहै तोरी॥
कैसे तोह काल उठ भाजा। ऐसी तब मति भई दराजा॥
राजगुमान छोड़ि गहु चरणा। भेंटो तोर जरा औ मरणा॥
सतगुरु चरण सीख मन लाई। काल प्रबल तब निकट न आई॥
सत्रह रानी कुँवर पचासा। एकचित होय भर्म सब नासा॥
जब लग भर्म मिटे हिय नाहीं। तोलग काल गहे जिव बाहीं॥
गृह जिव सुमत होय सब एका। तब तुम गहो सन्तका टेका॥
एकही सुर्ति भक्ति होय ठाना। ते हंसा मम संग सिधाना॥
बातन भक्ति होय नहिं राजा। बातन नाहे सरत कछु काजा॥
जब तुम मोहत जो मद माया। तब तेहिले हम लोक सिधाया॥
गृहसंपत सब देह लुटाई। राज काज छोड़ो चतुराई॥
गज धनतुरगसकल तुम छोड़ो। दुर्लभ मारगमुख मति मोड़ो॥
तब मैं तोहि अपनो करि जानो। भक्त प्रेमचित ज्ञान समानो॥
छन्द–मोह मद अभिमान संयुत, लोभ तृष्णा अतिबली।
कामि कामिनी करत क्रीडा, देवऋषि जिव सब छली॥
वह सकल त्यागै सबू पागै, ज्ञान अविचल पद गहै।
ताहि जीवले लोक पहुँचे, काल कर तेहि ना गहै॥
सोरठा–सो जीव सँग मम होय, सकल त्याग एकनाम गह।
और आश नहिं कोय, शब्द गहे मन हर्षिके॥

राजामोह वचन—चौपाई ।

एतिक शब्द सुनो मतिमाना । दृढ प्रतीति उपजा चित ज्ञाना ॥
तत्क्षण हस्ती तुरग मँगवावा । धनसंपति सब तुरत लुटावा ॥
एकचित होय राय औ रानी । कुँवर पचास सुर्त एक आनी ॥
पुत्र पचास संग बे रहई । एक सुर्त ते बाते करई ॥
इमि सतगुरुकी सेवा कीजै । जेहि परतीत अभयपद लीजै ॥
हे सद्गुरु जीवन सुख दाता । देत राज युग युग यह बाता ॥
नेगी योगी राय बुलावा । सकल नग्र तुम कहँ गोहरावा ॥
सद्गुरु शरण राय गहि पाई । जेहि अनुराग होय हो आई ॥
नेगी जाय कहे सब पासू । राजा गह साहेब विश्वासू ॥
प्रजा सकल कीन्हा मत एका । होय सुमति गहो शब्दहि टेका ॥
नेगा और प्रजा सब आये । राजासो उठि बिनती लाए ॥
राय मता तुम है अवगाहा । हम सब जीव संग तुम आहा ॥
जो आयसु होवै महाराजा । सो हम करें मेटि कुल लाजा ॥

राजाका मोह वचन ।

सफल जन्म चाहो रे भाई । सद्गुरु शरण गहो लौलाई ॥
एक सुर्त हर्षों दृढ नागर । गुरु रानिय हंसा होय आगर ॥
ऐसे गुरुसों बिनती लाऊ । सकलो नग्र संग ले जाऊ ॥

छंद—सकल जीवन सुर्ति करिके, राय चलि हार्षित भये ।
जहां आप विराजे सुकृती, धाय पदपंकज नये ॥
जीव सब तुम शरण आये, आपने करि लीजिये ।
दयाकरि जिव बन्दि छोरे, अमर वासा दीजिये ॥

सोरठा—रानी सत्रह साथ, कुँवर पचास पद गहिलिये ।
सब जीवन नायेहु माथ, दरस दान प्रभु दीजिये ॥

चौपाई ।

साहेब चलो महल पग दीजै । हंसराज आपन कर लीजै ॥
दूजो चित कीजै जनि मोही । बारबार बिनवौं प्रभु तोही ॥
हम अजान कछु जानत नाहीं । तुम तो पुर रहे सबही माहीं ॥
कृपा करो मम बिथा विसारो । कालजाल जीवन निर्बारो ॥
चलि मंदिर पगु दीजे स्वामी । विनय करों सुनो अन्तर्यामी ॥
चले सुकृत महल पगु धारा । परजा रानी कुँवर भूआरा ॥
राजा रतनसिंहासन लाई । चरण बंदि सुकृतहि बैठाई ॥
सत्रह रानी आरति करहीं । बहुविध चितसों बिनती धरहीं ॥
सकल जीव हैं शरण तुमारे । भवसागरते जीव उबारे ॥
हंसमती जेठी नृपरानी । साहेब चरण पखारे आनी ॥
हाथे चवँर कुँवर सब ढावत । एकहिटक सबै रूप निहारत ॥
ठाड़े राय जोर दोय पाना । साहेब कहो शब्द सहेदाना ॥
जेहिविध जीवमुक्त परभाऊ । सो साहेब मोहि भाषि सुनाऊ ॥

सुकृत वचन ।

छंद–बचन साहेब भाषे राजा, करहु आरति पावनं ।
चार गुरु किंकरहु साजी, कालकर्म नसावनं ॥
चित्र चौका चित्र धोती, श्वेत वस्त्रहि लावनं ।
चित्र आरति साज राजा, करहु मंगल गावनं ॥
सोरठा–मेवा अष्ट प्रवान, चौका चंदन फेरहू ।
दलझारी तहां आन, सवासेर महँ चेतहू ॥

चौपाई ।

तंदुल सवासेर ले आना । हार आरती कलश परवीना ॥
पुंगीफल अरु श्वेतहि पाना । चौकामहँ धरो जो आना ॥
जिव पीछे नरियर कर लेहू । जनियर सुकृत हाथ सो देहू ॥

कञ्चन कलश पांच धरो बाती । ज्वलित कपूर धरो बहु भांती ॥
दल अमृतकी कञ्चन झारी । डार सुगन्ध धरो तेहि बारी ॥
खरचा सात मँगावहु सेता । मासे सात वजन कर लेता ॥
आगरु साते ताहि प्रवाना । सोख रचा ले दल ये आना ॥
खरचा सात धरे दल जबही । धर्म देख थरहर भये तबही ॥
कनक पटम्बर कीन्ह सिंहासन । तापर साहेब कीन्हे आसन ॥
आनंद मंगल कीन्ह उचारी । राय धरा नरियर तेहि बारी ॥
युथ युथ जूरे जीव सब आए । नरियर धरे सुकृत मन भाए॥
सत्रह रानी सुत सुत नारी । ते सब आय चरण चितधारी॥
युग बंधे राजा अरु रानी । सोविधिसकलजीवमिलजानी॥
भावरि देय प्रदक्षिण दीन्हा । हंस उबार अपनकर लीन्हा॥

छंद–तब चरण मृदु मंजुल पावन अतिहि सुहावन भावन ।
अमि मूरतिसूरत धारत त्रिविध ताप नसावन ॥
आदि अनंत अनादि पुरुष करहु दया जाहिको ।
जीव जेहि तुम पकरि बहियां कालग्रस नहिं ताहिको॥

सोरठा–तुम प्रभु शब्दस्वरूप, अमित भाव लखि ना तरे ।
तुच्छ बुद्धि मनरूप, जीवनपकरि नचावहुँ रे ॥

चौपाई ।

दीजे मोहि शब्द सहिदानी । तुमते नहीं बड़ो कहु दानी ॥
जेते जीव अमरघर जाई । होइ अमर भव बहुरि न आई ॥

सुकृत वचन ।

राजा रानी तृणहि तूरावा । त्रिगुण पदवितें जीव बचावा ॥
कुँवर पचास रायमत लीन्हा । हर्षित हाय सुमत इन कीन्हा ॥
प्रजा सकल नग्रनके आवा । सत्य सुकृतके दर्शन पावा ॥

बालक तिया वृद्ध सब आए। सो साहबके पद लपटाए ॥
पुरुष अंक दीन्हेउ मति आगर। पाय पान भये हंस उजागर ॥
स्मतकहाथ दीन्ह जिव सबही। जाते यम नहिं रोके कबही ॥
पाय पान तब भए सनाथा। सकल जीव तब नाये माथा ॥

राजाका मोहवचन—छन्द।

जिमि घन नभमें शशि अवलोकत सिद्ध होत उमंगही ॥
शब्द नभ गुरुचरण इमि निशि कर्म सूर्त तरंगही ॥
तिमि हर्षे राजा सकल जिव मिला करत कोलाहल सोहही ॥
वृद्ध हंसन यूथ ठाढे निरखि सुकृतहि मोहहीं ॥
सोरठा—अब दीन्हा निज पान, अधम जीव अपने किये।
बिनय एक अनुमान, देश आपने ले चलौ ॥

चौपाई।

यह भवसागर अति अवगाहा। सुर नर देव पाए नहिं पाहा ॥
दर्शन आय दीन्ह तुम जाही। आपनकर राखे गहि ताही ॥
निशदिन यमहीफंद लगावत। शब्दहित्यागि विषयमनध्यावत
पलपल काल करत है घाता। शब्द तुम्हारा श्रुति नहिं राता॥
ताते बिनय करों बहुबारा। सकल जीव हैं शरण तुमारा ॥
एकहि सुरत सकल जिव केरा। अब जनि साहेब लावहु बेरा ॥
बेगि लै चलो वांही देशा। अमरपूरी जहां हंस नरेशा ॥
अब जनि मोहि राखहु भवसागर। ले चलो जहवां हंस उजागर ॥
दीनबंधु प्रभु कीजे दाया। सकल हंस ले लोक सिधाया ॥
भेटे चरण पुरुषके जाई। अब भव चिर नाहीं ठहराई ॥

सकल हंस वचन—छन्द।

जीव चढ़ावें करत करुणा, सुनहु नरपति नागरा।
करहु सद्गुरु बिनय दृढ होय, नहिं रहब भवसागरा ॥

गुरु करे हिय दया त्यागे, मामा चिंता व्याकुल अहे।
अमर शोभा देख वे गुन, हर्ष जीवन अति अहे॥
सोरठा—अब जिन लावहु बेर, ठाढ़े सकल अकुलावहीं।
प्रभु दयावंत जो होइकै, वे पुरुष दर्श करावहीं॥

राजाका मोहवचन—चौपाई।

राजा रानी कुँवर पचासा। सकल जीवविनती परकाशा॥
बेग लये चलो हंस पति राजा। वह विनती करे सकलसमाजा॥
चातक स्वातिरटत जिमि जैसे। तृषावंत सबरे जिव तैसे॥

सुकृत वचन।

सत्य सुकृतमें सूरति समानी। होय निशंक करो रजधानी॥
पुरुष नाम राजाकहँ दीना। संग लोग हंसन सब लीन्हा॥
राय मोह हम लोक चलि जाई। सत्तर सहस्र हंस सँग लाई॥
ऐसे सुमति करो जो बंदा। कालत्रास नहिं हो दुखद्वंद्वा॥
एकचित होय सुरतिजेहि लागा। सत्यशब्द सो तन मन पागा॥
देखि काल दूरहिते भागे। जो पदपुरुष नाम दृढ़ लागे॥
राय गए जहां हंस समाजा। आए हंस आरती साजा॥
गावहिं मंगल करहि कुलाहल। षोडश शृंगारा अंग भल।

राजाका मोह वचन।

राजा देखि चक्रित मन पागा। बारबार सुकृत पद लागा॥
देखेउ लोक वरन अतिपावन। अब हमपाये निज मनभावन॥

सुकृत वचन।

सुकृतहि चले राय ले साथा। जाय पुरुष कहु नायउ माथा॥
छंद—दर्श पायनित जीव वे सब, रूप भयो परकाश हो।
अमिय फल जब पाये हंसा, द्वीप द्वीप विलास हो॥

सुबना सज्य शिर छत्र सोहे, बैठ हंस समाज हो।
भए हर्षित राय रानी, कीन लोक निवास हो॥
सोरठा–इमि हंसन परसंग, युग बाधे सो हंस होय।
लोक लाज तज रंग, ते पहुँचे अमरा पुरी॥

इति श्रीगुरुमाहात्म्य ग्रंथ संपूर्ण।

सत्य

अथ जीवधर्मबोध-प्रारंभः ।

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.

संवत् १९८७, शकाब्द १८५२.

सत्य नाम ।

श्री कवीर साहिव ।

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतान, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुवालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानाम की दया, वंश-ब्यालीसकी दया।

अथ श्रीबोधसागरे

एकोनचत्वारिंशस्तरंगः।

अथ जीवधर्म बोध।

दोहा—कौन धर्म है जीवको, सब धर्मन सरदार।
जाते पावै मुक्ति गति, उतरे भवनिधि पार ॥
धर्मरूप यक वृक्ष है, मूल गुरू विख्यात।
ज्ञान फूल फल मुक्ति है, शुभ कर्म शाखापात ॥
ज्ञान जीवको धर्म है, भ्रम त्रास जो मेंट।

सत्य पंथ पावे परखि,तब तेहि सतगुरु भेंट ॥
जबलों नहिं सतगुरु मिले,तबलों ज्ञान न होय ।
ऋद्धि सिद्धि तपते लहै, मुक्ति न पावै कोय ॥

अथ जीवको सत्यस्वरूपी देह और ज्ञानको लोप होना
और स्थूलदेह और संसारको भासना और
नानाप्रकारकी सृष्टिको फुरना और
कर्मधर्मको विस्तार वर्णन ।

चौपाई ।

जीव धर्म बरनो अब सोई । सब भ्रम भासजाय जिहि खोई ॥
मोह रैन जग सोवन हारा । स्वप्नरूप यह जग विस्तारा ॥
नींद गई कछु दरसै नाहीं । सबही भर्म भास मिटिजाहीं ॥
छूटे सकल कालको फंदा । ज्ञान पाय जिव होय अनंदा ॥
जेते धर्म धर्म कोइ माहीं । जीव भर्म सबही ये आहीं ॥
सत्यअसत्य सकल है माया । माया सब मिथ्या बतलाया ॥
मायाते सब काया जागी । तनमनधन उपाधि संगलागी ॥
जब अभाव कायाको होई । माया सबही जाय बिगोई ॥
प्रथहि सत्यरूप जिव रहेऊ । कच्ची देह बहुरि सो गहेऊ ॥
जिहि कारन सतरूप लोपाना । स्वसंवेदमें प्रथम बखाना ॥
अहंकार कर निरख निकाई । ताते अपनो रूप गवाई ॥
अपने रूपसे जब सो भटका । अतिशय दुःखद्वन्द्वमें अटका ॥
काल स्वरूपी है हंकारा । ताते प्रकट काल बरियारा ॥
काल कराल सोई अन्याई । सकल जीवको धरिधरि खाई ॥
यही जीवको बंधन कीने । भवसागरमें गोता दीने ॥
जाको हिय हंकाराते जूटे । निश्चय शीस तासुको टूटे ॥
अहंकार कह तीन प्रकारा । द्वै प्रकार कर अंगीकारा ॥

जीवन मुक्त केर गुन दोई। त्याग तीसरो कह श्रुति सोई॥
प्रथम दृश्य जेती जग माहीं। मोते इतर और कछु नाहीं॥
मैं अद्वैत परमातम सारा। जीवनमुक्त परम हंकारा॥
पुनि दुतिया हंकार बखानो। आपको जो अति सूक्षम जानो॥
सर्वा भाग कच तेहौं कीन्हा। दोउ हकार केर यह चीन्हा॥
जीवनमुक्तको दोउ हंकारा। पुनि तीजा यहि भांति उचारा॥
देहको जो आपा करि माना। ऐसी निश्चय तुच्छ बखाना॥
जाने सत्य जो अपनी देहा। बन्धनको कारण है येहा॥
शुद्ध आतमते चित्तको फुरना। ताको नाम अविद्या धरना॥
दोय भांतिकी फुरना होई। यक संसार और कह जोई॥
ताको नाम अविद्या राखा। आतम ओर फुर अविद्या भाषा॥
दोऊ स्पंद रूप उर मद्या। नाश अविद्या करे अविद्या॥
जो विकल्पको कारण गाई। चित्त शक्ति क्षेत्रज्ञ कहाई॥
नाम शरीर क्षेत्र सो जाना। तेहि अंतर बाहरको ज्ञाना॥
नाम तासु क्षेत्रज्ञ कहीजै। सो जब सहित वासना भीजै॥
आत्मते इतर रूप जो धारे। निश्चय कलना ताहि पुकारे॥
निश्चय कलना जब सो गहई। बुद्धि नाम ताहीको कहई॥
अहंभावते निश्चय जोई। पुनि संकल्प ताहिमें होइ॥
ताही कलनाको मन कहिये। चित्तशक्ति मनभाव जो गहिये॥
घन विकल्प मनमाह जो बंधा। शब्द स्पर्श आदिक भे गंधा॥
ताते इंद्रियानी फुरि आई। हाथ पांव प्राण आदि बताई॥
इंद्रिन सहित देह तब भासे। चार खानकी थित कह तासे॥
अचलते दृश्य दिशा फुरि आवा। तासु नाम संकल्प कहावा॥
संकल्पहिते सकल पसारा। सबही स्थूल मूल हंकारा॥
अग्निस्वरूपी है हंकारा। ताते तमगुनको बिस्तारा॥

तमते त्रिगुन तत्त्वको होना। ताते जक्त बीजको बोना ॥
ब्रह्मा बुद्धि रूप तन धारा। बुद्धिते रचित सकल संसारा ॥
अग्निरूप है प्रकटा काला। ताते जक्तकेर जंजाला ॥

सत्यकबीर वचन।

तेज रूप गुरु काल उपाया। ताते सकल सृष्टि दुःख पाया ॥

दोहा—मैं करता मैं भोगता, मेरो सकल जहान।
मैंही जगमें पूज्य हों, सुर मुनि मनुष महान ॥

चौपाई।

अहं ब्रह्मास्मी कह ब्रह्मा। ताते रचनाको आरंभा ॥
अहंते सकल सृष्टि यह ठाढी। कथा कहानी जगमें बाढी ॥
यही अहं अज्ञानको मूला। ताते जीव सहै सो शूला ॥
अहं बोलि यह जीव सिधारै। बहुरि नवीन कलेवर धारै ॥
आवा गौन अहंते होई। यक तन तजि दूसर गह सोई ॥
ज्यौंज्यौ जीव तुच्छता गहई। त्यौं त्यौं अधिक अहंसों लहई॥
ज्यौंज्यौं श्रेष्ठ पदनको पावे। त्यौं त्यौं ताही दीनता आवे ॥
भृगमुनिविष्णुको मारचौलाता। सोकरि क्षमा कह्यौ मृदुबाता ॥
देखो दारिद्री कंगाला। धनपाये तेहि गर्व विशाला ॥
गहे न अहंकार हरि प्यारे। जीवहि अहं तुच्छ करि डारे ॥
अहंकारके है षट अंगा। ताते जीव केरि मति भंगा ॥
जब मति भंग जीवकी होई। नानाविधिको तन गह सोई ॥
देह सदा वासना ते पूरी। सुखी होय करि ताको दूरी ॥
जबलों रहै वासना मनमें। तबलों बिचर विषयके बनमें ॥
जीव कहाव देह अभिमानी। ताको मुक्तिपात्र नहिं जानी ॥
निर्बासनिक होय निस्प्रेही। जक्त पूज्य है साधू येही ॥
जिनके हृदयमें अभिमाना। तिनको कबहु उगै न ज्ञाना ॥

जो कोइ कह मैं बड़ा कुलीना । सबसे ताको जाय मलीना ॥
जो कोइ कह मैं हौं बड़ सुन्दर । महाकुरूप सो होय छछूंदर ॥
जो कोइ कह मैं उत्तम जाती । सो बैठे ककुरनकी पाती ॥
जो कोइ कह मैं पंडित ज्ञानी । होय निरक्षर पुरुष प्रानी ॥
जो कोइ कह मैं बड़ गुनवन्ता । होय सोय विष्ठाको जन्ता ॥
जो कोइ कह मैं बड़ बलवाना । होय अबल सो कीटसमाना ॥
जाति पांति कुलके अभिमानी । भ्रमत फिरै चौरासी खानी ॥
अभिमानिनकी कहो कहानी । धर्म महम्मद यथा बखानी ॥
त्रिविध तकब्बुर निर्नय ठानी । प्रथमजो भये ऐसे अभिमानी ॥
जस नमरूद आदि फिर उन्ता । नृप मद आपको ईश्वर गुन्ता ॥
प्रथम तकब्बुर प्रभुके ऊपर । नबीपै बहुरि तकब्बुर दूसर ॥
तृतीय तकब्बुर जग लोगनपैं । मैं गड तुच्छ और सब जन हैं ॥
हौं बड़ श्रेष्ठ गुनन मलसही । औरनमें यह गुन कह बस ही ॥
प्रथम कहो विद्या अभिमानी । दुतिये तपसीतपजिन ठानी ॥
विद्याके अभिमानी जोई । तिनके मत विचार अस होई ॥
हमही मनुष और सब पशु गन । जिनके हृदयन विद्याको धन ॥
विद्या धन सर्वोपर गाई । ताते हम ईश्वर लखि पाई ॥
जगमें हम सबके शिर ताजा । हमरे हाथ है काज अकाजा ॥
दुतिये तप सिन केर समाजा । बिना मान नहिं कोई ऋषिराजा ॥
सो ऐसो निजु मनहि विचारी । दरश हमार जक्त हितकारी ॥
आपको मुक्त युक्त लख औरा । और तुच्छ हम सब शिरमौरा ॥
ये दोनों पदको मद भारी । रूप गर्व धारत है नारी ॥
धनअभिमानी पुनि अस बोला । मैं चाहों औरहि लेव मोला ॥
बलमद कुलमद कुटुंब अरुचाकर । शिखशाखा बहु मानधरे नर ॥
अभिमानिनकी दशा बखाना । हशरगाह जो न्याय स्थाना ॥

चिउँटी रूप होय हंकारी । तिनहि लताडे सब नर नारी ॥
इशरगाह ते जब सो चाले । हबहब कूप नरकमें डाले ॥
हजरत सुलेमानकी बानी । वृथा सकल तप हो अभिमानी॥
राई भरि जामें हंकारा । सो विहिशतको नहिं पग धारा॥
पुनि रसूल मकबूल बतावे । होय दीन बड़ि पदवी पावे ॥
ऐसो नर जगमें नहिं कोई । जाके शिर लगाम नहिं दोई ॥
गहे लगाम सो दोय फिरिशते । जगजिव तिनहि दीनहो दिस्ते॥
तब दोउप्रभुसे बिनय उचरना । हे प्रभु याको ऊँचा करना ॥
धरि लगाम तेहि ऊँचा करही । जगमें श्रेष्ठ नाम तब परही ॥
जब जिव ऊंचा शीश उठावै । दोऊ फिरशते बिनय सुनावै ॥
हे प्रभु याको कीजै नीचा । धरि लगाम नीचेको खींचा ॥
अभिमानिनके शिरमें पौना । ताको चित्त फलावै तौना ॥
सोई पौन हंकार कहावै । बुरी चाल सब ताते आवै ॥
पढ़ि विद्या जगको भरमावै । आप न शुभकरनी मनलावै ॥
विद्याके अनुसार न करनी । अन्तमें तिनकी यह गति बरनी॥
नरकमाह प्रभु तिन्है पठै है । औरनते दशगुन दुःख पैहै ॥
गरदन पीठ तासु टुटि जाई । नरकमाह अतिशय दुख पाई ॥
जिमि खर चक्की को भरमावै । तैसे यम ताहि नाच नचावै ॥

दोहा–अग्नि कतरनी करगहे, कतरे तिनको ओठ ।
नरकमाह बड़ दुख भरे, विद्या पढ़िभे खोट ॥

चौपाई ।

अभिमानिनकी कथा बखानी । ईश्वरको बैरी तेहि जानी ॥
सकल बड़ाई प्रभुको सोहै । और बड़ा जगमें कहु कोहै ॥
जिनके हृदयेमें हंकारा । तिनको कोई करे नहिं प्यारा॥
नृप फिर ऊन महाअभिमानी । आपको जो ईश्वरकरी जानी ॥

अबिरहामके जो संताना। निजु गोला गोली करि जाना॥
मूसामें प्रभु सो गुन खोला। ईश्वर बना तासुको गोला॥
फिर ऊंबर मूसा ह्वै जाई। मानमर्दके गर्द मिलाई॥

सोरठा—एक गृही यक साधु, दोय पक्ष है जीवको।
यक संग्रही उपाध, एक रसिक निजु पीवको॥
निजु निज धन सुखहेतु, दोनों उद्यमको करे।
होय सजग चित्त जेतु, जेती बुद्धि विवेक जिहि॥
कृपा जो करे करतार, पूर्ण होय मनकामना।
यह धन वह भवपार, जैसो जाके आगमें॥

दोहा—ग्रहीके धन अधिकात, जब तब तेहि कहे अमीर।
अधिक अधिक धन बितलह्यो, कह्यौ अमीर कबीर॥
जबहि अमीर कबीरमों, तामें किब्र समाय।
यथा दर्ब दिनदिन अधिक, तथा किब्र अधिकाय॥
किब्र अधिक अधिकान जब, तबलाग्यौ बलकान।
बलकत बलकत अंतभो, आप किब्रिया जान॥
आप किब्रिया जान जब, गह्यौ ज्ञान शद्दाद।
भूपर मोहिसम नहिं रहा, हरि ऊपर कर बाद॥
प्रथम अमीर कबीर भो, पुनि अकबर अल्लाह।
सो कबीर अकबर सोई, कहे किब्रिया ताह॥
अल्लह जब बनि बैठिऊ, पहुँची तिनकी मौत।
दौजखमें दाखिल भये, सेन सहित भै फौज॥
जगमें भये कबीर बहु, जो लागे गहि तीर।
आप तरे जग तार जो, सोई साच कबीर॥
जिन जिन धारचो किब्र उर, टूटचौ सबको शीश।
जासु किब्र टूटे नहीं, परम पुरुष जगदीश॥

जाको किब्र अघट्ट रह, तीन काल युग चार ।
ताहीको सब ठट्ट है, हट्ट लगी पन सार ॥
जिन जिन शीश उठायऊ, टूटचो सबको किब्र ।
सत्यकबीरको किब्र जो, सदा एक रस तिब्र ॥
श्रीमुख सत्यकबीर कह, किब्र जाहिमें दीप ।
मोड़ो तेहि छोड़ो नहीं, तोड़ो ताको शीस ॥
किब्र सहित जब जोय नर, होय नहीं तब खैर ।
परे किब्र या संगमें, याहि ढंगते बैर ॥
वैर किब्रियासे भयौ, गयौ नरक जिव सोय ।
कुशल कौनि बिधि तासुकी, रिपु जाको हरि होय ॥
जासु किब्रिया नाम है, किब्र ताहिको सोह ।
और किब्र जो कोई गहे, ले कबीर सँगलोह ॥
धनवितकों यह अंत है, संत बिचारो जाहि ।
सो धन पर हंकारकर, अहं दुःखद सब आहि ॥
जैसे गृहीकी कथा, कहति निक्कीरकी आहि ।
जब फकीर गुनज्ञान गह, तब हकीर कह ताहि ॥
घर घर मांगत भीख जो, दरदर होत हकीर ।
कोई गालीदे मार कोई, तनक न तन मन पीर ॥
अथ हकीरको तुच्छ है, कुछ रह्यौ नहीं मान ।
अधिकते अधिक हकीर भो, तब साहिब पहिचान ॥
तब साहिब पहिनेऊ, फना कियौ तब आप ।
गना आपके कुछ नहीं, तन मन धन लखि पाप ॥
अंत हकारत जब भयौ, तूही तू तब टेर ।
जहँ तहँ देखो तूहि तू, मैं नाहीं कहु हेर ॥
मैं नाहीं जब ही रह्यौ, कह्यौ तूहि तू सर्व ।

जल थल वायू व्योममें, तुही व्याप सब दर्व ॥
तूही भू जब देखेऊ, रहा कतहुँ नहिं आप।
आप आप मैं रमि गयौ, पुनि दुतियाकिन थाप॥
दुतिया गयौ गवाय जब, सिंधुमें बूंद समान।
गहे गरीबी संत जब, अंत दुःख तब जान ॥
जब हंकार अतिशय बना, धन्य फकीर है सोय।
किब्र तकब्बुरके गहे, गयौ धनिक सब खोय ॥
यथा फकीर हकीर भो, गृही अमीर कबीर।
दोहु गुन दोष बिचारके, जीव तरे भवतीर ॥

इति अहंशब्द ।

अथ कामवर्णन—चौपाई ।

अहंते तम तमते आकाशा। तमते त्रिगुणतत्त्व परकाशा ॥
गुण प्रकृतमय तत्त्व जो पांचो। जगके अस्तंभन ये सांचो ॥
प्रथम अकाश है पंच प्रकृतमय। काम अरु क्रोध लोभमोहमय॥
प्रथम कामको यह गुन जानू। दहन ज्ञान बन कठिन कृशानू
स्वसंवेदमें प्रथमहि कहेऊ। ज्ञान गोप जब जिवको भेऊ॥
तब निज सम्मुख दृष्टि उठाई। झांई रूप नजरमें आई ॥
सो झांई नारी तन गहेऊ। ताके संग भोग जिव कियऊ॥
पुरुष छाहते प्रकटी नारी। सो भ्रम रूप जक्त बिस्तारी ॥
जबलों नारि पुरुषकी चाहा। तबलों नहीं कर्म कुल दाहा॥
अपनी छाहते करे लड़ाई। भ्रम कटि जूनिनमें भरमाई ॥
सोई कहो जक्तकी जननी। परम रूपके ज्ञानकी हननी ॥
वृद्ध जक्तकी कामते आहीं। बुद्धि विवेक तहां कुछ नाहीं ॥
कामविवश जिव हो जिहिबारा। ताके हृदय न रहौ बिचारा ॥

ताको गुन यह प्रकट देखावो । आवा गौनको लेख लगावो ॥
प्रथमहि दृष्टि दौरि जब जाई । नारि देखि केहि यह हरषाई ॥
जब नर ताहि निकट नियराया । कुचनके ऊपर हाथ चलाया ॥
कुचनको जब निजु करते परसा । अधिक मोद मनमें तब सरसा ॥
कुच नहिं भोजन पात्र पयोधर । अधिक प्रीति मानुष ताते कर ॥
प्रथमहि भोजन पात्र टटोले । आवागौन राह पुनि खोले ॥
तिहि मारगमें जब जिव धसेऊ । पुत्र होय पुनि बाहर खसेऊ ॥
भर्ता ह्वै तिहि मारग पैठा । पुत्र होय पुनि बाहर पैठा ॥
भोजन पात्र टटोल जो पहिले । बालकह्वै भाजन सोइ गहिले ॥
भोजन भाजन भार्या माता । पुरुष पुत्र एकै द्वै बाता ॥
भीतर बाहर पैठे निकलेरे । आवा गौन आपनो सकरे ॥
मनते मनमथ भयौ प्रचंडा । महाकाल सत सो बरिबंडा ॥
पांचबान सो निज कर लीने । सकल जीव अपने बस कीने ॥

दोहा–मोहन मारन बसकरन, उच्चाटन उनमाद ।
पांचबान ये काम गह, तिहु पुर परा विषाद ॥
भवसागरमें आयके, कोइ न भयौ समरत्थ ।
यक कंचन यक कुचनपर, को न पसाऱ्यौ हत्थ ॥

कुंडलिया ।

भवसागरमें आनिके, भै कबीर समरत्थ ।
कंचन कुचन दोहूनपै, सो न पसाऱ्यौ हत्थ ॥
सो न पसाऱ्यौ हत्थ, आप कमला चलि आई ।
चित चंचलावनहित, कीन सो बिबिधि उपाई ॥
कीनेसि बिबिधि उपाय, कबीरको मन किमिहाली ।
ह्वै निरास श्री तास, बहुरि बैकुंठहि चाली ॥

चौपाई।

कोइ ह्वै पती पयोधर पकरे। कोइ बनि पुत्र ताहिते टकरे॥
भरता पुत्र होय नहिं दोऊ। सत्य कबीरते और न कोऊ॥
नारिके बसमें सब संसारी। रचना तिहु पुरमाह पसारी॥
भवसागर भगसागर जानी। भवके करता भव रु भवानी॥
तीनों पुरको ईश कहाया। जिन भगचीरके राह बनाया॥
भगके रुधिरते भगवा भेषा। देव निरंजन अकथ अलेषा॥
उज्ज्वल भेष पुरुषको बाना। भगवा भेष निरंजन राना॥
अंग पिंड भग माह समाना। सत्य कबीर बचन परमाना॥
अंतर ज्योति शब्द यक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी॥
ताहि तियहि भग लिंग अनंता। तेउ न जाने आदिवो अंता॥
लिंग रूप यक शंकर कीना। धरती खिला रसातल दीना॥
भा बालक भग द्वारे आया। भग भोगनको पुरुष कहाया॥
अबला सम कहुँ बली न कोई। तीन लोक ताकी बस होई॥
अष्ट प्रकारके मैथुन अहई। ताते न्यारा कोइ न रहई॥

दोहा—श्रौतो सुमिरन कीर्तनो, चितवन बात यकंत।
दृढसंकल्पो रत्न पुनि, प्रापति अष्ट कहंत॥

चौपाई।

मिथुन बिकार जीव सब पागा। जरे तीन पुर तिय अनुरागा॥
जेती जगमें कथा कहानी। नारिप्रताप सकल सो जानी॥
जबलों रहै देहको खेला। तबलों हो नारी सँग मेला॥
नारि परे जो जाना चहई। ताकी देह तहां नहिं रहई॥
भग भोगै अरु भक्त कहावै। फिर फिर भगभोगनको आवै॥
जड़ चेतन दोउ नारि स्वरूपा। कनक कामिनी जिव भ्रमकूपा॥
बिषकी बेल दोहूको जानी। लगे ताहिमें जिव अज्ञानी॥

महामहाऋषि मुनि छलि मारा । यह मनोज पापी हत्यारा ॥
तप जप सकल भ्रष्ट करि दीने । ज्ञानी ध्यानी निज बस कीने ॥

छंद माधवी ।

सूखे पत्र अहार अरु पौन भषे, धृत धर्म परासरके सरके ।
दृग जोहनि मोहनि रूपमहा, मनमोहित नाहरके हरके ॥
बिधि नारद चंद स्वछंद भये, हृदया बजरोधरके धरके ।
अस कौतुक भो जो मन दौन कियौ,सब जी भवसागरके गरके॥

चौपाई ।

साध सिद्ध चल बनमें भागी । जाय नारि तिनके सँग लागी॥
मौनी होय बसै गिरकंदर । बसै नारि तिनके उर अंदर ॥
मैथुन अष्ट तबो नहिं जाई । ताते बिकल सकल ऋषिराई॥
बाहरको बिकार जो त्यागे । पुनि अंतरको दुःख दौ दागे ॥
इन्द्री मर्दके गर्द मिलाई । तऊ साधुको काम सताई ॥
जतन अनेक करे ऋषिराई । विजय मार पर ताऊ न पाई॥
जस नट मरकट खेल खिलावै । तथा मनोजभव जीव नचावैं॥
नारिके बसन आभूषन ओरा । साधु कबहू न निजु दृग जोरा॥
नारि चित्र कागज मूरत गन । ताहि न सन्त लखै निजु नैनन॥
निरखै ध्यान आव सो मूरत । चढ़ै काम पुनि ताहि विसूरत ॥
नारि पुरुष जिहि घरमें रसहीं । ताके निकट साधु नहिं बसहीं॥
कामकलोल करे पशुखग जहँ । साधु न कबहुँ दृष्टि डारे तहँ ॥
मदन विकार अनेक बिधाना । सो सब त्यागे ज्ञान निधाना ॥
जब लों यह बिकार दिल दागे । तब लों ज्ञान किरिननहिं जागे ॥
कामकरे जिहि औसर अंधा । करे जीव कछु उलटा धंधा ॥

छन्द--रतिनाथ भाथ जो हाथ गहि, निजु सुमनसरसंधानेऊ ।
तजि नीति गह बिपरीति, रह नर धर्मबंधन भानेऊ ॥

चैतन्यभे जड़ रूप जड़, चित चेत निजु उर आनेऊ।
शृंगार साजन लाल कहु कुस, कानिकौ मन मानेऊ।

इति काम।

अथ क्रोधवर्णन—चौपाई।

द्वितिये क्रोध महा बलवंता। सोसमस्त शुभ गुनको हन्ता॥
जाको देखि बुद्धिवर कम्पत। रहै न निकट भाजिहो चंपत॥
महा काल यह क्रोध उचारा। यह खल प्रकट होय जेहिबारा॥
धर्मको लेश रंच नाहिं रहई। यह अपराधी जप तप दहई॥
प्रलय करे सतगुनहि बिडारा। आप दाहि औरन दुहि डारा॥
वर्षहजार जो मुनि तप कीने। पलमें क्रोध भ्रष्ट करि दीने॥
नरकवास मुनि बरहि पठाई। कतहुँ न रही ज्ञान गहिराई॥
तप जप कहा क्रोध जब होई। जिवको निश्चय नरक बिगोई॥
सकल धर्मकी धूल उडावै। क्रोधको अंधकार जब आवै॥
अहंकार क्रोधादि विकारा। तुच्छ जीवमें अधिक निहारा॥
कीडा एक रहे घासनमें। ऐसो क्रोध ताहिके मनमें॥
जो कोइ ताको परसे जाई। महा-क्रोध ताके उर छाई॥
क्रोधितहै अस मनहि बिचारी। छूवन हार को डारो मारी॥
कूदे उछलै जो रन चलई। आपको अबल जानिके टलई॥

इति क्रोध।

अथ लोभवर्णन—चौपाई।

तृतिये लोभकी कथा बखानी। शुभ गति लहै न लोभी प्रानी॥
लोभी निशदिन माला फेरा। ताको पार होय नहिं बेरा॥
सूम है नरक कर अधिकारी। जपतपकियहु न जन्मसुधारी॥
लोभी जीव जेते जग माहीं। नरकहेत सबही सो आहीं॥
लोभते शुभ करनी नहिं भावै। सोई सब अघकर्म करावै॥

सो रनपर कलियुग को बासा। तेहि प्रिय कीने बुद्धि विनासा ॥
सोई दुष्ट सब करे अकाजा। प्रीछित धर्म-धुरंधर राजा ॥
ताहूको सो बुद्धि बिगारा। कञ्चनपरकलि आसन धारा ॥
धर्म महम्मद करे बखाना। सोरनको भागी शैताना ॥
गहि कर कञ्चनहग न लगाये। चूमि ताहि पुनि कह गोहराये ॥
कञ्चनसे जो प्रीति लगाई। सो नहिं भगवत भक्ती पाई ॥
सो लोभी इबलीसको बन्दा। निश्चय परे ताहिके फन्दा ॥
पुनि ऐसो इबलीस पुकारा। साधु सूम है मित्र हमारा ॥
सूम साधु जो जप तप करई। लोभ समस्त कृपा संहरई ॥
तैसे पापी दाता जोई। परमशत्रु मेरो है सोई ॥
जो कछु पाप करे सो दाता। दान किये सो सकल निपाता ॥
सो शैतानके वश नहिं परई। दाता कोटि पाप जो करई ॥
दोय वृक्ष द्वै ठौरमें देखा। यक औदारता लोभहै एका ॥
दानबृक्ष वैकुण्ठमें बरनी। गडी तासु जड़ ताही धरनी ॥
साष तासु दुनियामें आई। नरहित हेत सो दियो झुकाई ॥
जो कोई पकरे साष सखावत। सो निश्चयबिहिशतको जावत ॥
साष सखावत पकरि जो रहई। अघ औगुन सब ताको दहई ॥
नवीन प्रसंशिके बचन सुनावै। सखो अवश्य मेरे ढिग आवै ॥
ऐसहि लोभबृक्षकी लड़ है। घोर नरकमें ताकी जड़ है ॥
साष तासु जगमाह झुकाई। जो कोइ गहै नरकमें जाई ॥
शुभ करनी सब तासु नशावै। सूमको दौजखमें पहुँचावै ॥
सब धर्मनको मत है एहा। लोभी करे नरकमें गेहा ॥

अथ मोहवर्णन-चौपाई।

चौथे मोह महा दुःखदानी। भव भोगनकी यही निशानी ॥
ता पिता सुहृद परिवारा। सगे सहोदर सह सुत दारा ॥

प्रथमहि मातु पिताकी मोहा। अंधभो जिमि काई लग लोहा॥
जिहि औसर घरनी घर आई। मातु पिताकी प्रीति भुलाई॥
परम प्रीतमा नारी अहई। बाघिन यथा गरासन चहई॥
मधुर मधुर बोलै मुसकाई। महा ठगिन जिव ज्ञान ठगाई॥
हनै जबहि सो काम कटारी। सरबस छीन लेय सो नारी॥
ताते प्रकट भयो जो पूता। पूत नहीं आयो यमदूता॥
मधुर बोल बोलै मन हरही। दिनदिनअधिक प्रीतिपितु करही॥
पुत्र कि मोहमें जन्म गँवाये। ताते कबहुं न छूटन पाये॥
ताकी मोह भयो जिव अंधा। चला अंतको यमपुर बंधा॥
पुत्रसे कहो कौन सुख पाया। शूल गड़े जड़ मूल नशाया॥
जन्मतही युवती हरि लीनो। युवा भये तब धन वित छीनो॥
मूयहुपर कपालको फोरा। धौं यह सुत धौं वैरी मोरा॥
शत्रुको सदा मित्र जग जाना। मूढ़ नहीं चेते बिन ज्ञाना॥
मेरो मेरो कर अज्ञानी। ममतामें भूले सब प्रानी॥
मोर तोर कहि जन्म गँवावै। भक्ति महातम हाथ न आवै॥
बन्धु मित्र अरु संगे सखागन। सो समस्त है भक्तिके दुश्मनं॥
इन्हैं पेलिके हरि यश भनिये। प्रीति कबहुँ मति ठगनतेठनिये॥

छन्द पद्धडी।

दशदिश देख बहु दृष्टि पसार। कोई नहिं तेरो यहि संसार॥
मातु पिता स्वारथ हितकार। सुतदारादि सकल परिवार॥
कोई न तेरो उबारनहार। सब मिलि तोहि नरकमें डार॥
ताते तजो सकलकी प्रीत। यह दुनिया मतलबको मीत॥
जिहि औसर स्वारथ ना होय। तेरो संग करे नहिं कोय॥
बुद्धि विचारि विलोक विलोय। यह जग जान महाठग होय॥
ठगसे प्रीति किये धन खोय। लहे अमरफलको विष जोय॥

क्यों नहिं चिन्तामनिं चित चीत। यह दुनिया मतलबकी मीत ॥
जठर अग्निते तोहि जो बचाय । काहे ताको दियो भुलाय ॥
महा दुःख जब घेरे आय। संकटमें सो करे सहाय ॥
भजु तेहि जन्म सुफल ह्वै जाय । परमहंसकी पदवी पाय ॥
ताकी कृपा चलो यमजीत । यह दुनिया मतलबकी मीत ॥

इति मोह ।

अथ भयवर्णन चौपाई ।

पंचम भय बटपार बड़ेरा । जो गहि जीव नरकमें गेरा ॥
भयवश तपी न जपतपकरहीं । भयते कायर घरमें मरहीं ॥
भय करि शूरा करे न करनी । भय करि सती न अग्निमें जरनी॥
भय कीने शुभ कर्म न होई । भय करि शुभगति लहै नकोई॥
भयकरि विद्याबुद्धि की हानी । भय भ्रम करि भर्मै चहुँखानी ॥
पांच वर्षको वय ध्रुव पाया । तप कारन सो वनहिं सिधाया॥
मिले ताहि नारद ऋषिराया । विविधि भांतिसे भय दिखलाया॥
कानन महाभयावन कहेऊ । ध्रुवके हृदय न भय कछु गहेऊ॥
बनमें जाय गूढ़ तप ठानी । रंच न सो मनमें भय मानी ॥
तपकरि हरिहि लियो प्रकटाई । धन्य धन्य ध्रुव धन्य कहाई ॥
जिनको हृदया भयते पूरा । तिनमें कबहुँ न साहस जूरा ॥

दोहा—पंचप्रकृति आकाशकी, कीने कछुक बखान ।
एकते एक महाप्रबल, सकल नरककी खान ॥

इति भय ।

चौपाई ।

पंच प्रकृत आकाश बखानो । पंच बहुरि बायूको जानो ॥
पंच अग्नि जलकी है पांचो । धरती पंच प्रकृति उर जांचो॥
यहां जीवको बंधन करहीं । इनहीते देही थित धरही ॥

तेहि सर्वथा अभाव जो कीजै। तब कैसे निज देह धरीजै॥
पै अभाव कीजै गुरु द्वारे। तब जिव अपनो काज सँवारे॥
पुत्र अकाशको बायू होऊ। पिता समान शून्य है सोऊ॥
बायू बेटा अग्नि बखानी। सो तद्रूप तातके जानी॥
तासुत जल जलते यह धरनी। ये सब सन्न एक सम उरनी॥
शून्य अकाश शून्य तिहु गुन है। तम अरु अहंकार सब सुन है॥
पुत्र पिता परपिता सहीते। सर्व सुन कहु सार न चीते॥
शून्नको रचित देह यह अहई। शून्न सर्वथा ताको कहई॥
शून्नकि कृपा सूत्र सब जानो। शून्न सर्वसंसारहि मानो॥
तन मन धन सब शून्य बतावो। नाम रूप गुन शून्य कहावो॥
सो तन मन धन गुरुको दीना। नाम तासु बदले गहि लीना॥
शून्न जो दीना शून्नहि लीना। कहो कहा कारज निज कीना॥
शून्यहि दीन जो सूत्रहि पाया। तेहि व्योहार हाथ क्या आया॥
है परंतु कारय तह एका। तामें लहो भिन्य कछु लेखा॥
निश्चय नामहु शून्न बिचारी। तामें है कारज यक भारी॥
नाम डोरि दृढ़ गहै जो कोई। शून्न पार पथ पावै सोई॥
शून्नकि पारपथ जब पावत। बहुरि शून्नमें सो नहिं आवत॥
शून्न रूप भवसागर धारा। अंड पिंड सब शून्न सँवारा॥
भ्रमकारि शून्नमें खेल प्रकाशे। जस मृगजल मरुथलमें भासे॥
फेन बुदबुदा वारि तरंगा। वायु प्रसंग बनावहु ढंगा॥
जेहि औसर वायू नहिं चलहीं। गळके सकल मिले तेहिजलहीं॥
जल विकार सब जलहै जैसे। माया ब्रह्म जीव यक तैसे॥
भ्रम करि नाम धरे बहु डोरा। एकब्रह्म तजि कतहु न औरा॥
जेहि औसरजिव सोलखि पावै। एकै माह अनेक समावै॥
दृश्य अनेक जो एक समाई। पिंड अंडकी थाह सो पाई॥
थाह पाय जब जीव थिरोना। तब जान्यौ हौ चारु चिराना॥

मैं हो आदि मध्य अरु अन्ता । मोहि फुराफुर वेद बदन्ता ॥
पक्की तत्त्व देह जब पावै । तबनिजुघरजिव बहुरिकेआवै॥
पक्की तत्त्व प्रकृत पच्चीसा । स्वसंवेदकी विधि जो दीसा ॥
ताकौ गह कच्चीको त्यागे । ऐसे योग युक्तिमें लागे ॥
तनकी कृपा योग अष्टंगा । ताको तज भज मनको अंगा॥
मन अष्टांग योग उरधारो । स्वसंवेद जाको निरधारो ॥
तनकी कृपाकाज नहिं सरहीं । मन करनी जिवपार उतरही ॥
मनको रचित सकल संसारा । हो निवृत्त जिव मनके द्वारा ॥
तन मन यद्यपि मिथ्या दोई । मन करनी अति उत्तम होई ॥
तन है जाय आपनी बसमें । जेहि औसरआवै मन कसमें॥
तन मन दोनों बश ह्वै जाई । तब निज रूप नजरमें आई॥
ऐसे साधु जो जगमें आही । हरि ब्रह्मा शिव ध्यावै ताही ॥
ताकी गतिको सके बखानी । लखे न शारद वेद अरु बानी॥

मौनीजि वचन बिचार माला ।

दोहा--स्वसंवेद नहिं कहि सके,लक्षण सन्त महन्त ।
परसंवेद कहे कछू, संग प्रताप कहंत ॥

चौपाई ।

जिनकी गति अगम अगाधू । बानी वेद पारसो साधू ॥
स्वसंवेद गुण जासु न कहई । तिनको भेद जीव किमि लहई॥
समदृष्टि सो साधू ऐसे । सोई ब्रह्म रूप मैं पैसे ॥
।हू नहिं सो दुःख दुःखावै । जिनकी दृष्टिमें साहेब आवै ॥
को हिन्दूको मूसलमाना । को ब्राह्मण केहि शूद्र बखाना॥
कौन यहूदी कौन नसारा । एक ब्रह्मको सकल पसारा॥
रह्यौ चराचरमें सो पूरी । जाहि लखे हो सब दुःख दूरी॥
आप आप लख ब्रह्म सनेही । जहँ तहँ देखो नेरी देही ॥

मोहितजि और कतहु कोइ नाहीं । भ्रमकरि भिन्न भाव दरसाही ॥
मेरो मन अरु तन सब मेरो । तनमें मन मनमें प्रभु डेरो ॥
लखे अलखगति झगरा टूटा । जीव काल बंधनते छूटा ॥
अपनी देह सकल जग जानी । ताते सबहीको सनमानी ॥
काहूको नहिं करे निरादर । सबकोइ ओढ़े मेरी चादर ॥
स्वर्ग नरक मृत आपै आपा । जैसो कर्म तहां ले थापा ॥
सबदिल महल वहां प्रभुको है । आपै आप सर्वमें सोहै ॥
काहूको अनभल नहिं ताका । निजु अनभल ताते परिपाका ॥
औरको अनभल ताके जोई । अनभल अवश्य ताहिको होई ॥
एक मोगल क्रमकरे जो बनियां । तेहिढ़िग रह यक बैललदनियां ॥
मोगल परोसी धोबी रहई । लादनको एक गदहा गहई ॥
जिमि औसर खर करे पुकारा । मोगल दुखित होय तेहि बारा ॥
प्रभुसे नीति अस विनय उचरई । यहि धोबीको गदहा मरई ॥
यकदिन ऐसे कारन भयऊ । बैल मोगलको तब मरि गैऊ ॥
तिहि औसर मोगल गहि रोषा । परमेश्वरहि लगावै दोषा ॥
केते काल खुदाई कीना । गदहा बैल अजौ नहिं चीन्हा ॥
ऐसेहि सकल जीव अज्ञानी । प्रभु कह दोष लगावहि प्रानी ॥
सो नहिं दोष लगावन योगा । सबजिवनिजुरक्रमफल भोगा ॥
परभल किये भला हो अपना । निश्चय यह प्रमाण करिथपना ॥
जो काहूको कछु दुःख देई । सो दुःखअवश्यआपशिरलेई ॥
जो सबला अबला दुःखदानी । सो दुख अपने सिरपर आनी ॥
मांसरुधिर जिन जाको चाखा । परगल काटि आपसुख राखा ॥
औरकोशिरनहिनिजु शिरकाटा । अपनो तनकर बारह बाटा ॥
कोटिन यतन करे किन कोई । बदला अमिट छुटै नहिं सोई

सत्यकबीर वचन—शब्द ।

अपनो कर्म न मेटो जाई ।
कर्मको लिखा मिटै धौं कैसे जो युगकोटि सिराई ॥
गुरु वशिष्ठ मुनि लगन सोधाई सूर्य मंत्र य॰ दीना ।
जो सीता रघुनाथ विवाही पलयक संचन कीना ॥
तीन लोकको करता कहिये बालि बध्यौ परि पाई ।
एक समय ऐसी बनि आई उनहू औसर याई ॥
नारदमुनिको बदन बिगार्‍यौ कीन्हे कपिको रूपा ।
शिशुपालकी भुजा उखारी आप भये हरि ठूँटा ॥
पारबतीको बांझ न कहिये ईश न कही भिखारी ।
कहै कबीर करताकी बातें कर्मकि बात है न्यारी ॥

चौपाई ।

मेरो कर्म मोहि दुःख देता । जाने बिना भये वश प्रेता ॥
बदला भोगे आदि भवानी । बदला हरि हर अयशि आनी॥
बदलाके कारन जिव झारी । भोगे दुःख भये संसारी ॥
दिल दुःखाव मति काहू केरो । सब तन अपने तन सम हेरो ॥
सबको दुःख सुख एक समाना । एकै रूप रूप सब जाना ॥
एकै रूप अनेक बरन है । एकै इंद्री एकै तन है ॥
मनु सतरूपा वेदमें कहेऊ । सोई सकल रूप निज गहेऊ ॥
चौरासी लख योनि उपानी । एकै अंग न और बखानी ॥
सबमें रमा सो अकथ अनूपा । सबको जानो मनु सतरूपा ॥
मनु सतरूपा आपे साहेब । देखि परे जगमें नाना छब ॥
आदि पिता सबजग जिन हेरा । सो समदृष्टी सन्त बडेरा ॥
निर्बासनिक आदि ओंकारा । हिरनगर्भ वासना जो धारा ॥
भई वासना 'जगको कारन । दोय स्वरूप कीन तब धारन॥

हिरण्यगर्भ चितचाह जो चाली । एक चना कीना द्वै दाली ॥
नारि पुरुष मिलि द्वन्द्व मचाया । ताते रचना राम रचाया ॥
स्वामी एक एक भे दासा । करे एक दूजाकी आसा ॥
वासना जब निवृत्त ह्वै जाई । स्वामी सेवक तब मिलिजाई ॥
जैसे प्रथम भयो द्वै ढंगा । तैसे दोनों होय करंगा ॥
सकल बासना लियौ बटोरी । द्वन्द्व खेल तब कतहुँ न हेरी ॥
मन इन्द्री कछु रहा न बाकी । निशि दिन होय ब्रह्मकी झांकी ॥
जस प्रथमैं रह अंडकि गोली । तस ह्वै बहुरि वचनको बोली ॥
तन मन इन्द्रीकी गम नाहीं । परम रूप रमि अलख कहाहीं ॥
लखै न कोई अलख गुरु देवा । जाने बिना करे सब सेवा ॥
जब जान्यौ तब सेवा नाहीं । मैं तू तह तब कछु न रहाहीं ॥
मोहिमें तूमें तोहि समाना । एक भयौ नहिं दुतिया जाना ॥
सकल बासना मनते हरई । पारब्रह्म जब दाया करई ॥
ब्रह्मके खोजी साधो भाई । कैसे ब्रह्म कि खोज बताई ॥
भजनानन्दी संत सुजाना । ब्रह्म सर्वमय पूरण जाना ॥
जाना तौ पै मिले न ताही । बिना मिले कछु सुख है नाहीं ॥
जैसे नारि पुरुष बर होई । एक दूसरो जाने सोई ॥
जानेते कछु सुख नहिं सरसे । नारि पुरुष जबलों नहिं परसे ॥
अरश परशते सुख सरसाना । तब मनहीमनमें सुखसमाना ॥
कहे कहा सो कहो न जाई । निज सखियनते सैन बुझाई ॥
सखी कि सैन सखी कोइ बूझै । पियामिलनको सुख जेहि सूझै ॥
और कोई जो पूछे जाई । चुप ह्वै रहै तबै मुसकाई ॥
ब्रह्मको सुख जो कोई लहई । गूँगा होय न सो कछु कहई ॥
लून पूतली निज मन ठाना । सागर थाह लेनको जाना ॥
जलमें पैठत जल ह्वै जाई । ताकी खबर कहै को आई ॥

कीट पतंगसे पूछे बाता । दीपक गिरे कौन सुख आता ॥
तेहि पतंग अस वचनसुनावो ।तुमहि दीप ढिग चलि सुख पावो॥
कीट तबहि दीपक नियराया । पुनि पतंग ढिग सो चलि आया॥
आय पतंगसे वचन सुनाई । मैं कछु ज्योति स्वाद नहिं पाई॥
तेहि पतंग बोला चिल्लाई । तैं किमि ज्योतिके सुखको पाई॥
अरे मूढ संसारी कीडा । तोहि न व्यापी तन मन पीडा॥
सुख पतंग आसिक सो जाना । दीपकमें जो धाय समाना ॥
तू तो फिरा देखिके आगी । जाने कहा मूढ दुरभागी ॥
शीश काटि निज करमें लीजै । ब्रह्मके सुखमें तब चित भीजै ॥
चलै जक्त सब देखी देखा । सार असार करे को लेखा ॥
भेड़ा चाल सकल संसारा । नर पामरको यह व्यवहारा ॥
सबकोइ कह यह मेरो धर्मा । मेरो गुरू कह्या यह कर्मा ॥
सबते हमरो धर्म बडारा । सो बुधवंत जो करे बिचारा ॥
चले अंधके पीछे अंधा । बिना बिचार करे सोइ धंधा ॥
यक शृगाल तेहि औसर बोला। ततछन तासु जाति मुह खोला॥
वायस एक जो बोल उचारी । सबहिजातिगण तबहि पुकारी ॥
कीटके पीछे कीट जो चाला । तैसे जक्त धर्म प्रतिपाला ॥
यक धोबी यक गदहा राखा । सोढर नाम तासुको भाखा ॥
घाटके ऊपर धोबी गयऊ । ताहि ठौर सोढर मरिगयऊ ॥
ताते धोबीको दुःख होई । सोढर सोढर कहिके रोई ॥
घाटके ऊपर धोबिन आई । रुदन करत धोबीको पाई ॥
पुनि धोबिन निजघर फिर आई । सोढर कहिके रुदन कराई ॥
राजाकी रानी तेहि बेरी । धोबी गृह पठयो निज चेरी ॥
रुदन करत धोबिनिहि निहारा। सोढर सोढर करे पुकारा ॥
चेरी पुनि तहँते फिरि आई । सोऊ रुदन करे बिलखाई ॥

बांदी विलपत देखा रानी। रुदन बिलाप सोऊ तब ठानी ॥
राजा जब निज महलमें आया। रुदन करत रानीको पाया ॥
रानी रोवै सोढर कहि ताहा। सुनि सो रुदन रोवै नरनाहा ॥
राजा रुदनकरन जब लागा। नग्र नारि नर धीरज त्यागा ॥
सकल नग्रमें परा खँभारा। नृप मंत्री तब तहँ पग धारा ॥
मंत्री नृपते बचन उचारी। कारन कहा रुदन भो भारी ॥
तब नरनाथ बचन अस कहेऊ। दुखी सकल सोढर मरि गएऊ ॥
सोढर कौन सो मन्त्री बूझा। तब नृप कह्यौ मोहिनहिं सूझा ॥
रानीको मैं रोवत देखा। कीन्ह्यौ मैं पुनि सोई लेखा ॥
रानीते जब पूछा जाई। सोढर कौन सो देहु बताई ॥
रानी कहे न जाने सोढर। मैं रोई बांदीके औढर ॥
जब पूछै बांदीसे जाई। सोढर कौन कहा बतलाई ॥
बृषली बोलै मैं नाहिं जानी। धोबिन देखि रुदन मैं ठानी ॥
धोबिन कह मोर धोबी रोई। सो लखि सोग मोहिको होई ॥
धोबीसे जब पूछा जाई। सोढर गदहा नाम बताई ॥
ऐसेही अंधा संसारा। देखा देखी कर्म पसारा ॥
जिनके हृदये माह बिचारा। सो नाहिं लीकलीक पग धारा ॥

दोहा—लीक लीक गाड़ी चलै, लीके चलै कपूत ॥
तीन लीकमें नहिं चलै, सूरा सन्त सपूत ॥

चौपाई।

जगमें कतहुँ न तुर्क न हिंदू। सकल देखिये नाद अरु बिंदू ॥
जेते नाद बिंदु मय बंदा। सबही कर्मके फंदमें फंदा ॥
जसो कर्म करे जो कोई। तैसोई फल पावै सोई ॥
कर्म कुरूप स्वरूप सँवारा। कर्महि ऊँच नीच गति डारा ॥
कर्महि दुःखसुख जीव भोगावै। कर्महि सकल योनि भरमावै ॥

अष्ट कर्म विधि जैन बखाना। बहुरि मिमांसा कर्मप्रधाना ॥
सत्यकबीर कहै पुनि ऐसे। सब जिव कर्म फन्दमें पैसे ॥

सत्यकबीर वचन–कर्मखंडकी रमैनी।

कर्महि धरती पवन अकाशा। कर्महि चंद सूर परकाशा ॥
कर्महि ब्रह्मा विष्णु महेशा। कर्महि ते भये गौरि गणेशा ॥
सात वार पंद्रह तिथ साजा। नौग्रह ऊपर कर्म बिराजा ॥
कर्महि राम कृष्ण औतारा। कर्महि कंस रावन संहारा ॥
साखी–कबीर कर्म रख सागरबंध्यौ, सौ योजन मरजाद ॥
बिन अक्षर कोइ ना छुटे, सो अक्षर अगम अगाध ॥

रमैनी।

सो सागर भवसागर धारा। नहिं कछु सूझै वार न पारा ॥
तहँवा बावन अक्षर लेखा। कर्मरेख सबहिन पर देखा ॥
कर्मरेख बांधा सब कोई। खानी बानी देख बिलोई ॥
वेद कतेब कर्मही गाया। कर्महिको निह कर्म बताया ॥
सतगुरु मिले तो भेद बतावे। कर्म अकर्ममध्य देखलावे ॥
कर्मरेख तहँवा लगि राखा। जहँलगि वेदव्यास कछु भाषा ॥
साखी–कबीर कर्मफांस छूटे नहीं, केतो करे उपाय ॥
सतगुरु मिले तो ऊबरे, नातो परलय जाय ॥
कबीर बहु बंधनते बांधिया, एक बिचारा जीव ॥
जीव बिचारा क्या करे, जो न छुडावे पीव ॥

रमैनी।

सूरा होय सो सन्मुख जूझै। भोंदू शब्द भेद नहिं बूझै ॥
दुखिया होय रैन दिन रोवै। भोगी भोग करे सुख सोवै ॥
दुःख सुख भोग सोग सम जाने। भली बुरी कछु मन नहिं आने ॥
भली बुरीको करे सो त्याग। निश्चै पावै पद बैराग ॥

साखी—आसन साधे आपमें, आपा डारे खोय ।
कहैं कबीर सो योगी, सहजे निर्मल होय ॥

कुण्डलिया ।

मानुष है नहिं कोई मुवा, मुवा सो डंगर ढोर ।
चौरासी भर्मत फिरे, टूटै न कर्मकी डोर ॥
टूटै न कर्मकी डोर, भोर बुधि जहँ तहँ भटके ।
लहे न ज्ञान अनूप, कूप भवमें पुनि पटके ॥
पुनि पुनि पटके काल, कर्म बेरी पग भारी ।
वचन कह यक मृग चोट, जहां लख कोट शिकारी ॥

चौपाई ।

कृपा करे गुरु धनी दयाला । जीवहि खच लोक ले चाला ॥
ताकी कृपा योग जब होना । लगे मही तब कालको टोना ॥
कृपा योग जबलों नहिं लोई । कृपा कौनविधि तापर होई ॥

सत्यकबीर वचन ।

धर्मदास तोहि लाख दोहाई । सार शब्द बाहर नहिं जाई ॥
सारशब्द बाहर जो परि है । बिचलै पीढी हंस नहिं तरि है ॥
युगन युगन तुम सेवा कीनी । ता पीछे हम इहां पगदीनी ॥
कोटिन जन्म भक्ति जब कीन्हा । सारशब्द तबही पै चीन्हा ॥
अंकूरी जिव होय जो कोई । सारशब्द अधिकारी सोई ॥
सत्यकबीर प्रमाण बखाना । ऐसो कठिन है पद निर्वाना ॥
पै दुतिये विधि कह्यो बहोरी । जापर सद्गुरु कृपा न थोरी ॥
धर्मदास प्रति ऐसे कहेऊ । मांगु जो कछु तेरो चित चहेऊ ॥
धर्मदास तब वचन उचारा । तारो मोहि सहित परिवारा ॥
पिता पितामह सखा समेता । सबहि पारकर कृपानिकेता ॥

तेहि अवसर सतगुरु विहसाना। का मांगे कछु मांग न जाना ॥
तारो सकल सृष्टिको भाई। तुम तो आप रहे अरुगाई ॥
यामें नहिं कछु दोष तुम्हारा। कालपुरुष तुमरी मति मारा ॥
ऐसो समरथ सत्य कबीरा। पलमें सब क्रम कागज चीरा ॥
कोटिन जन्म जो परा भुलेषा। करे जो कृपा चुकावै लेखा ॥
जहँ तहँ देख आप सद्गुरु है। नहिं कहुँ असुर नहीं कहुँ सुर है ॥
असुर भाव जब सुरको आया। ता छन ताको असुर बनाया ॥
सुरते असुर असुर सुर होई। नारिते पुरुष पुरुष तिय सोई ॥
नीचते ऊंच ऊंचते नीचा। उत्तम मध्यम योनिमें खींचा ॥
ताते देखो दृष्टि पसारी। सकलधम प्रभु आप बिहारी ॥
मेरे मतसों सब धर्मनमें। खेले खेल सकल कर्मनमें ॥
जो कोइ चीन्है लाल बिहारी। दुबिधा सकल दूरकरि डारी ॥

सत्यकबीर वचन ।

राम रहीम करीमा केशव हरि हजरतहै सोई ।
गहना एकै दृढ है गहना दुतिया और न कोई ॥

चौपाई ।

सब धर्मनमें आपै खेले। एक दूसरेसे नाहिं मेले ॥
भर्मत सारी सृष्टि भुलानी। होय चहूँदिश ऐंचातानी ॥
झूठ सांच जब लख सविवेका। झूठको तज गहु सत्तको टेका ॥
यह संसार सकल भ्रम छाही। भ्रमकरि सर्व सत्य दरशाही ॥
एक अनेक अनेक भो एका। ज्ञानते होय सो एक अनेका ॥
यथा कांचके मंदिर माही। कोटिन मणि मानिक रहजाहीं ॥
झाड़ फनूस अनेकन टांगा। तामें यक भ्रम दीपक जागा ॥
भ्रम दीपक जब तहां प्रकासा। कोटिन दीप मंदिरहि भासा ॥
यक प्रतिबिम्ब अनेकन देखो। वार न पार लेख कह लेखो ॥

यक भ्रम दीप जो दियो बुझाई। सकलो भास नाश ह्वै जाई॥
ऐसे एकते भयौ अनेका। बहुरि अनेक एकही एका॥
यहि विधि सकल जक्त यह लागा। जस भ्रम दीप कांचगृह जागा॥
ज्ञान उदयते रहै न कोई। यथा नखतगण जलमें जोई॥
जल सूखे नहिं दरसै तारे। कोइ नाहिं देखजात किहि द्वारे॥
ऐसेहि सकल जक्त यह थापा। सबमें शोभित आपै आपा॥
ब्रह्म सब देसी लख ऐसे। यथा स्फटिकमणि देखी तैसे॥
यही स्फटिक मणिकेर सुभाऊ। जहँ जस मति तिस गति दरसाऊ॥
जौन रंग तेहि सन्मुख आना। गहै स्फटिक मणि सोई बाना॥
कर्मरंग जाढँग सघट्टा। देखफटिक मणिमें सोइ ठट्टा॥
राता पीता आदिक रंगा। होय स्फटिकमणि को सोइ ढंगा॥
सर्वांगी अस ब्रह्म बखाना। कर्म बनाव अनेक बिधाना॥
जहँ जस कर्म तहां तस भासू। सो निरलेप है स्वतह प्रकासू॥
कर्मडोरि जबलों नहिं तोरे। अपनो रूप न पावै भोरे॥
कर्मबंधते अलग जो होई। परम सोहावन उज्जल सोई॥
कर्मसूतमें बंधा जो रहई। नाना रंग ढंग गुन गहई॥
जेते धर्म जक्तके मांही। सबमें सोई ब्रह्म दरसाही॥
जो दरसै सो सब भ्रम भासा। नहिं दरसै तेहि कौन प्रकाशा॥
जो नहिं कहन सुननमें आवै। ताको कथा कौन कहि गावै॥
मन बानीकी गम जहँ नाहीं। पुनि मनबानी किमि कहताही॥
नैनते सकल जक्त दरसाई। पै निज रूप न सो लखिपाई॥
देखे आंख सुने सब काना। रसना रसिक गंध गह घ्राना॥
त्वचा स्पर्श तेहीको अहई। सबइंद्री निज निजकर्म गहई॥
आंखिन रशनाको गुन जाना। स्वाद भेद नाहिं सो पहिचाना॥
कान न कबहु रूपको देखे। नाक न कबहु स्पर्शको लेखे॥

इंद्री निज निज कर्महीं योगा। निजनिजभोग और नहिंभोगा॥
सो इंद्री जेहि ब्रह्म लखाही। कोई इन इंद्रिनमें नाहीं॥
जाते आतमको पहिचाना। ताकी है कछु और ठेकाना॥
मौन दशा ताते गह साधू। यह सब दीखै भर्म उपाधू॥
बिन जाने जो मौन गहाई। सो नहिं साधु मूर्ख कहलाई॥
जो कुछ कहो कहत नहिं बनई। जो चुप रहौं रहत नहिं बनई॥
आपै आप खेल सब खेले। भर्म कूपमें मोहि क्यों ठेले॥
रसै बसै सब माह समावै। अर्श प अपनो तखत बतावै॥
जो जाने सो कैसे कहई। नहिं जाने बहु बानी बहई॥
सबही धर्म जक्तमें तेरो। कहो तो दोष देय सब मेरो॥

सत्यकबीर वचन।

काल दयाल हमै है भाई। छोड़ो दुबिधा काल पराई॥
सबही धर्म ताहि सतगुरुके। चीन्हे बिनाकाल नहिं मुरके॥
स्वसंवेदमें कहा बखानी। ताहि बूझि सुख पावै ज्ञानी॥
काल पुरुष सतपुरुष समायो। सत्य पुरुषकी देह जो पायो॥
सत्यपुरुष दीनों निज देही। कालपुरुष गहि लीनो येही॥
विषयभोग सब कालकी अंगा। देखहु स्वसंवेद परसंगा॥
विषयवासना जिहि जिवजागी। सबको धर्मराय है भागी॥
निर्विकार अरु विषय विहीना। सकलवासना त्याग जो कीना॥
सो समस्त सतपुरुष सनेही। सत्यपुरुष पुर पहुँचे येही॥
इंद्रीभोग विषय जो ध्यावै। धर्मरायके धाम समावै॥
सदा रहै सो कालके फंदा। सो नहिं सत्यपुरुषको बंदा॥
रम प्रीतिसे भक्ति जो करही। विषय विहाय नाम निति ररही॥
कालहिमें दयाल प्रकटाई। गहि करतासु लोक ले जाई॥
सत्य पुरुषको भक्त कहावै। विषय विकार तजो मनलावै॥

प्रेमभक्ति जामें नहिं कोई। नहिं संतनकी सेवा होई ॥
सो सतपुरुषकि भक्तिसे गिरता। काल पुरुषके बंधन परता ॥
छंद–सत्यपुरुष जो निज वपुषवरकह काल पुरुषको दीन्हेऊ।
ताही पुरुषमें काल पुरुष कालमें तेहि चीन्हेऊ ॥
अंतरो बाहर दोऊ ठाहरमें निरखि भल लीन्हेऊ ॥
मोरे मते सतपुरुष सबही दूर दुबिधा कीन्हेऊ ॥

चौपाई।

जाहि धर्ममें जो जिव रहई। जब नखशिखसुकर्म सब गहई॥
तब सांचा सतगुरु समुहै है। परम धर्मको मारग पैहै ॥
जबलों नाहिं अति उत्तम करनी। परमपंथ तबलों नहिं धरनी ॥
होय यथा यक गोलाकारा। चहुँदिश ताके घेर सँवारा ॥
मध्यमें बिन्दु घेरके आही। घेरते बिन्दुको लीक जो जाही॥
सो लकीर सब होहि बराबर। जौं नहिं इंग बिङ्ग मारगधर ॥
तैसे यह मृतलोक बखानो। सब धर्मनको थोक बखानो ॥
गोलाकार जान यह धरनी। ब्रह्मबिन्दु सतगुरुको बरनी ॥
लीक समान धर्म सब जगको। गह सब ब्रह्मबिन्दु मारगको ॥
जौ सुकर्म सब उत्तम होई। पहुँचै ब्रह्मबिन्दुको सोई ॥
टेढ़े टेढ़े चले जो कोई। ब्रह्मबिन्दु पहुँचै नहिं सोई ॥
इमि सब धर्मनके आचारी। टेढ़ चाल जब तज एक बारी॥
ब्रह्मबिन्दुको तब सो पाई। ठाढ होहि तापर पुनि जाई ॥
सीधे खडे होहि तेहि ऊपर। तब चहुँओर निहारेहि भूपर ॥
सब धर्मनकी दशा निहारी। केहि कर्मन अरुझे नरनारी ॥
ब्रह्मबिन्दुपर पहुँचे जो कोई। सीधे ठाढ न तापर होई ॥
शुद्ध रूप तेहि दृष्टि न आवै। फेरि फेरि भव भटका खावै ॥
बिन्दुपैं सीधे खड़े भे आई। शुद्ध स्वरूप ताहि दरशाई ॥

शुद्ध स्वरूप जीव जब हेरी । करे न सो भवसागर फेरी ॥
गोलाकार स्वरूप बनावो । तामें सकल खेल दरशावो ॥

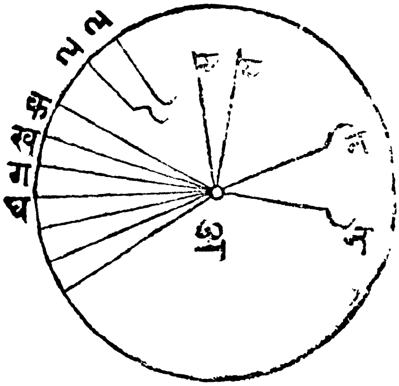

ब्रह्मबिन्दु है आदि पुकारा । कखग आदिकसबधर्म पुकारा ॥
निज निजमत जो आछे पाला । तौ सब ब्रह्मबिन्दुको चाला ॥
टट्टा टेढ़े मारग जाहीं । ब्रह्मबिन्दु पहुच सो नाहीं ॥
सस्सा बिन्दुपे पहुँचै जाई । सीधे खड़ें भये तहँ आई ॥
पूरन ज्ञानदृष्टि तिन पायौ । परम रूप रमि भवनहि आयौ ॥
नन्नाहू लह बिन्दु ठेकाना । ठाढ़ होनगति सो नहिं जाना ॥
टेढ़े जायके ठाढे भयऊ । ताते शुद्ध स्वरूप न लहेऊ ॥
गोलाकार जो कथा बखानी । यह संसार सकल है पानी ॥
पानीमें जिव गोता मारा । बूड़ि जाय पुनि शीस निकारा ॥
बूड़ै उछलै पार न पावै । लख चौरासी माह समावै ॥
जिमि शिशुमारचक्र यह फिरता । यकपलभरिनाहिं ताकोथिरता ॥
जो लग्नादिक चक्रमें आही । सबही ताके संग भ्रमाही ॥
भ्रमनकरे. निशिदिन सब सोई । तिनको थिरता कबहुँ न होई ॥
ऐसहि गुरू संग सब चेले । भवसागरमें बाजी खेले ॥
उत्तर दक्षिणको जो छोरा । तहँ जो पहुँचहो थिर तेहिठौरा ॥

जो कोई पहुंचै तेहि खूटा। ध्रुव तारा सम भ्रमनते छूटा ॥
ज्ञानी पहुंचे कुतुबके किल्ले। अटल होहि सो बहुरिन हिल्ले ॥
सतगुरु किला जो ऐसे पहै। बहुरि न सो भवमें भरमैहै ॥
यह दृष्टांत जो कोई बूझै। निश्चय परम पंथ तेहि सूझै ॥
सकल धर्मको एकै साई। सब पालै निज पुत्रकि नाई ॥
एक सोनार गढै सब गहना। जैसो कर्मरूप तस लहना ॥
सोन रूपको तार बनावे। गढ़िगुढ़ि ठोंकि ठांकि सुधरावै ॥
ठोंकि ठांकि जब सीधा करई। यंत्रमें तबहि तारसों धरई ॥
खैंच तार धरि यंत्रके माहीं। इंग बिंग तब सब मिट जाहीं ॥
ऐसहि सर्व धर्म जग केरो। टेढ बिंग व्यौहार जो हेरो ॥
धर्म कबीर धरहि जेहि बारी। खोट कर्म तब दूर पवारी ॥
तार समान सकल मत मंत्री। धर्मकबीर सोनारको यंत्री ॥
दोय प्रकार वासना अहई। भली बुरी जाको सब कहई ॥
दोनों भवसागरमें डाला। कहा करे यह जीव बेचारा ॥
अर्थ अरु धर्मकाम अरु मोखा। चारों त्यागे साधु सो चोखा ॥
चारते पार और जो होई। सतगुरु भेद बतावै सोई ॥

सत्यकबीर वचन।

साखी–तीरथ गयेते एक फल, संत मिले फल चार।
सतगुरु मिले अनेकफल, कहै कबीर विचार ॥

चौपाई।

कर्मको फल नर पावै कैसे। भोजन रस तन व्यापै जैसे ॥
जैसे भोजन जो को खाई। ताहीको गुन तामें आई ॥
अकशमात कर्म फल पावत। दुःखसुखसबजिवकोप्रकटावत ॥
जस बासना कर्म कर तैसा। तेहि अनुसार धर्म गह ऐसा ॥
सब निज निज वासना गहाई। ता तोषनकी करे उपाई ॥

नवी मलेक्षस्थानको यक रह । प्रभुप्रति विनतीकरि ऐसे कह ॥
हे प्रभु मोहि तियरति बलथोरा। यह बरदेव होय सो जोरा ॥
तेहि नभ वानी कीन पुकारा। रति कारन कर मांसु अहारा ॥
मांसु खान लागा तब सोई। जान्यो प्रभुकी आज्ञा होई ॥
जस मनोरथ तैसी प्रभु आज्ञा। सत्य कहो करिके परतिज्ञा ॥
जस वासना जीव उर खोले। ताको यतन अकाशते बोले ॥
तथा फिरिशते स्वपना सुथरे। तस कलाम अल्लाको उतरे ॥
मिश्रसे जबहि यहूदी चाले। जब उजाड़में आय निराले ॥
मांसु खान कह प्रभु प्रतिटेरी। दियो लगाय बटेरकी ढेरी ॥
खातहि खात मृत्यु तेहि डाला। कर्मको फल पायो ततकाला ॥
जिनजिन मांसु खानको रोये। बचा न एक प्रान सब खोये ॥
बीस बर्षके ऊपर जोइ। सब मरि गयो बचा नहिं कोई॥
ज्ञान बिनाको प्रभु पहिचाना। ताको धर्म न कोई जाना ॥
जैसो धर्म धरे जो कोई। तैसी गति निश्चय लह सोई ॥
कोई स्वर्ग नर्कको भोगा। कोई अधर मृत्यु पुर लोगा ॥
जीव वासना प्रेरि लेआवै। ताही गतिमति स्थित करावै ॥
तीनों पुर पसरा यमजाला। कोइ बचै जेहि राख दयाला ॥

सत्यकबीर वचन।

तीनों लोकमें लागी आग। कहैं कबीर कहँ जैहो भाग॥

चौपाई।

उभयवासनां ते जिव अटका। छूटे न आवा गौन को खटका॥
कालहि रचै कालही पोषै। कालहि सब रचनाको सोषै ॥
कालको कृत कालही खैहै। कोई विरला गुरुगमबचजैहै ॥

कुंडलिय।

निर्विकार आतम सदा, बंधाकर्मकी डोर।
मरकट नटके हाथ जिमि, फिरताखोरिन खोर ॥

फिरता खोरिन खोरि, कंठमें कर्म जञ्जीरा।
दर दर नाचत जाय,पाय तन मन बहु पीरा॥
पीरा लह मतिमंद, होय नहिं बन्द खलासी।
बंद दयाल जेहि काल, कालकी काटे फांसी॥
कबीर खड़े बाजारमें, गल कट्टोंके पास।
जो कोई करे सो भरेंगे,तुम क्यों भये उदास॥
तुम क्यों भये उदास, भास कर्महिको सारा।
कर्मको रचित जहान,खान चहुँ कर्म सँवारा॥
कम सँवारा दर्ब, सर्ब जहँलों जग दरसै।
आतम तो निरलेप, एक सम सबमें सरसै॥
हदमें चल सो मानुवा, बेहद चले न कोय।
हद बेहदके बीचमें, रह्यो कबीरा सोय॥
रह्यौ कबीरा सोय, कोय नहिं ताको परखै।
परखै संत सुजान, ज्ञानके नैनन निरखै॥
निरखै ज्ञानके नैन, परख पूरन सो पावै।
जहँ तहँ दरशै आप, ताप तिहुँ दूर बहावै॥
हदमें चलै सो मानुवा, बेहद चलै सो साध।
हद बेहद जो दोनों त्यागे,ताको मता अगाध॥
ताको मता अगाध,आध अरु व्याध न लागे।
कर्म जनित सब रोग, भोग भवमें नहिं पागे॥
नहिं पागे भवभोग योग, जग नाता तोरे।
टूटे न भजनको तार, प्रीति नामहिते जोरे॥
हिंदू कही तो हौं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पांच तत्त्वको पूतला, खेलैं गैबी माहिं॥
खेलैं गैबी माह, गैबको गैबी जाने।

कहन सुनन कछु नाहिं, विचारहृदय निजआने ॥
आने हृदय विचार, चारु चिर चोर चंपेरे।
मूसे जो घर मोर भोर, निश ताको हेरे ॥

चौपाई।

काल कराल आपही जानी। ब्रह्मा विष्णु महेश भवानी ॥
षट्दरशन सोई प्रभु थापा। सब पंथनमें आपै आपा ॥
मूसा ईशा महम्मद आदिक। सोई सब मतके मरजादिक ॥
सब धर्मनको सोइ अचारज। सबहीको कीने प्रभु कारज ॥
सब ही धर्म ताहिको जानी। प्रणवों सबहि मनोक्रम बानी ॥
सोई प्रभु सबही ये देखा। बपुरा जीव करे कह लेखा ॥
छन्द–आप खास है आप दासहै आप खेल खेलायऊ।
मलसोध जीव प्रबोध कीनो बौध होकर आयऊ ॥
जग जगन्नाथको माथ नावैं रूप और बनायऊ।
थापे महातम बौधको खुद बौधीदास कहायऊ ॥

चौपाई।

दोय पुत्र ब्रह्माके भयऊ। यक सुर दुतिये असुर जो कहेऊ॥
सतोगुनी सुर कह सब कोई। विषय विकारी असुर सो होई॥
तीन लोकमें विषय विकारा। चौथा लोक विषयते न्यारा ॥

सत्यकबीर वचन–चौपाई।

विषय विकार मान मद जेते। सो सब प्रभु असुरनको देते ॥
जाने थोर बहुत जो कहई। तीनों काल मूर्ख सो रहइ ॥
जेते जाने तेते जौ भनिये। मध्यम गतिमें ताको गनिये ॥
जाने बहुत कहे जो थोरा। सोई ज्ञानी सब शिरमौरा ॥
सब धर्मनको भेद जो पावै। ताकी बुद्धि शुद्ध ह्वै जावै ॥
जाको धर्म ताहिते जांचो तब लखिपरे झूठ कह सांचो ॥

जौन धर्मगति चह चितसुनिया । ढोंढो ताको पंडित गुनिया ॥
पक्षरहित जो बात बतावे । तामें कछू कसर जौं आवै ॥
तौ पूछो औरन बुध लोई । निजबल बुद्ध बतावे सोई ॥
एक कि भूल दूसरा कहई । यहिविधिचतुरशंकनिजदहई ॥
औरको धर्म औरते बूझै । ताको दिनदोपहर नहिं सूझैं ॥
वायस मिल वायसहि प्रशंसा । हम सम नहिं ब्रह्माको वंशा ॥
हमसम और न बोल सुधारा । जाने कह कोकिला गँवारा ॥
सो सुनि भूलि जाहि जिवसंठा । जानन कागहि जो कटुकंठा॥
जिमि उलूक निजपरको ठानू । कानते सुने न देखे भानू ॥
तामें सब कोइ मिथ्या करई । जगमें कतहु न सूरज अहई ॥
ताकी शाख भरनको साचा । चमगुदरी उठि बोली बाचा ॥
सुनि लीजै उलूक मम भ्राता । जो कछु कहो सत्य तुम बाता ॥
मैं कबहूँ दिनकर नहिं देखा । कहे जक्त सब झूठा लेखा ॥
भरे बहुरिके ताकी साखी । आय छछुन्दर ऐसे भाषी ॥
सत्य बचन तुम दोहुकी आही । दिनकर तीनकाल कहुनाहीं ॥
ऐसहि अंधहि अन्ध सराहत । जो दिनपतिहि दूरकरचाहत ॥
तिनके वचनमें जो जिव बंधे । तिनसमान सो सबही अन्धे ॥
जाघर पके हरामको दाना । तिनको धर्म कर्म बिन माना ॥
जो कोइ करे हराम कमाई । आप खाय अरु ओर खिलाई ॥
जो हरामको दाना दैहे । ताको दंड आप शिर लैहे ॥
खाय हराम हरामही करि है । करि हराम भवसागर परि है ॥
जो कोई अन्न हरामको खाई । ताकी बुद्धि अन्ध हो जाई ॥
बुद्धि विभंग होय जब जाको । धर्मकथा भावै नहिं ताको ॥
अन्धकार जब हृदयें घेरे । शुद्धपन्थ सो कबहु न हेरे ॥
खाय हराम हरामी जायौ । मातु पिताकुलकानि गवायौ ॥

करि श्रम शुद्ध अन्नभक्ष जोई । ताकी कृपा शुद्ध सब होई ॥
भक्ष सुअन निजधर्म जो पाला । ज्ञान दृष्टि पावै ततकाला ॥
विषकी बेल है यह संसारा । चहुँदिश आवै विषकी झारा ॥
जलथलमें विष रहा समाई । बिष नहिं तजै भजै चितलाई॥
बिषहीमें निज भौन बनाई । बिषय भोगि बिषको तनपाई ॥
सब ही सन्तश्रुति कहे बखानी । नरस्वरूप नारायण जानी ॥
लिखो वेद वेदान्त पुराना । तौरे तो इञ्जील कुराना ॥
सब ही मिल करते निरधारा । नर ईश्वर निज रूप सँवारा ॥
निश्चय नर नारायण देही । पै जब ईश्वर गुनगह येही ॥
जबलों ईश्वर गुन नहिं गहई । संज्ञा जीव तासुको रहई ॥
ताते जीव शीव शिव कहिये । विषयबिकारनतनमन गहिये ॥
जब सबही शुभगुनगहि लीना । ब्रह्मस्वरूप ताहि कहि दीना ॥
ब्रह्मस्वरूप आप जब मंडा । तब रचि सके कोटि ब्रह्मण्डा ॥
सिरजै पोष प्रलय करिडारी । पुण्यपाप नहिं ताहि बिचारी ॥
जिमि शिशुमाटीधूल खेलोना। नाना भांति रचै मनभौना ॥
खेलि खेलि पुनि मिट्टी मेला । ऐसहि ब्रह्म सृष्टि को खेला ॥
सकल सृष्टिको करता होई । ताको नाम जपै सब कोई ॥
जौ जिव विषयनमें लपटावै । दिन दिन तुच्छ देह सो पावै ॥
जब जब तुच्छ अन्त ह्वै जाई । नरकनमें निज भोन बनाई ॥
ताते विषई जीव सबनकी । विषयबिहिन देह ईश्वरकी ॥

सत्यकबीर वचन ।

साखी–कबीर कबीर तु क्या करो, साधो आपना शरीर ।
पांचो इन्द्री वश करो, तुमही दास कबीर ॥

बुल्लेशाह वचन ।

काम क्रोध लोभ मोह हंकार । पञ्जो कट्टवां जू दो मार ॥
इन्हा करवी है बदवो बुल्ला आपै अल्लह हो ॥

यह संसार दुसह दुःख दागा। बिरत बिचारी सन्तसो त्यागा ॥
कौन राम कौनी विधि जपना। कौन ठौर तेहिप्रभुको थपना ॥

सत्यकबीर–वचन।

साखी–रामजपतहै नामको, नाम जपता है थीर।
ताहूते कछु अपरहै, ताको जपै कबीर ॥

चौपाई।

उत्तम धर्म जो कोइ लखि पैये। आप गहो अरु और गहैये ॥
ताते सत्यपुरुष हिय हर्षै। कृपा वारि तब तोपर वर्षै ॥
सत्यकबीर केर परमाना। यहि विधि तैसो करे बखाना ॥
जो कोउ जीवहि राह बतावै। परमपुरुषकी भक्तिमें लावै ॥
ऐसो पुण्य तासुको बरना। एक मनुष्य प्रभु सन्मुख करना ॥
कोठि गाय जिमि गहे कसाई। ताके करते लेत छोड़ाई ॥
परम पुरुषते जब जिव जूटै। काल कसाई करते छूटै ॥
भक्ति कठिन अतिशय कठिनाई। बिना भक्ति कोइ पार न पाई ॥
भक्तिभवन अति उत्तम ऊंचा। इन सीढो बिरला कोइ पहुँचा ॥
लागे तहां त्रिविधि सोपाना। एकते एक बिचित्र बखाना ॥
रजगुन तमगुन सतगुन बरतो। द्वै तजिके तृतिये पग धरतो ॥
जब सतगुन सीढीपर चढ़िये। तब तहँ ज्ञान अगोचर पढ़िये ॥
पढ़िके ज्ञान भयो जब पक्का। तब सो भक्तिभवनको तक्का ॥
भक्तिभौन जब चाहत चलिये। तब सतगुरु प्रतिहारते मिलिये ॥
ताहि पौरि यहि भेट चढ़ावो। भक्तिभौन तब पैठन पावो ॥
तन मन धन सब अर्पन कीजै। शिर उतारि तेहि चरणधरीजै ॥
जो दयाल हो सो प्रतिहारा। भक्तिभौन तब हों पैठारा ॥
भक्तिभौनको भेद जो पाया। त्रिगुन पौरि सो बहुरि न आया ॥
आदि अन्त सतगुरु गुनगावो। जिन तोहि भक्तिभौन बैठावो ॥

भक्तिहि भक्ति भेद बहुतेरा। गहसो भक्ति भेंट भवफेरा॥
विमल भक्ति गहिये मन लाई। जाते त्रिगुनातीत कहाई ॥
आप आप जिव आप फँसाई। आपै बँधा आप दुख पाई ॥
जस कृमयक जेहि कह खुसियारी। ताकी ऐसी कथा उचारी ॥
सो ऐसो निज भौन बनावै। आपको तामें आप फँसावै ॥
आप चरित ग्रह बंधै आपू। काहूको कछु दोष न पापू ॥
ताहीमें सो फँसि मरिजाई। विविध भांतिसे सो दुखपाई ॥
बंधा तौ पै खुलै न कोई। जबलगि सतगुरु कृपा न होई ॥
हाथ पांव पटकै औ रोवै। तब गुरुकृपा केर भ्रम खोवै ॥
जाति पांति कुल कानि गवावै। भली बुरी कछु चित्त नहिं ल्यावै॥
सकल नेहको नाता तोरे। प्रीति सदा सतगुरुसे जोरे ॥
वेद कितोब शरा अरु सुन्नत। सो नहिं कछु निज मनमें उन्नत॥
यह सबही दुनियांकी फांसी। ताते नहिं भेटे अविनाशी ॥

कवित्त—शरीअतकी सलाई जिव आँखिन चलाई भय अंध यमबन्ध धोखधन्धमें परत है। कोई कह हम हिंदू हौ जो ऊंचे कुलबिंदू कोइ कह हौं ईसाई ईशा आसराध रत है॥ कोइ कह मुसलमान हौही साबित ईमान मारो काफिरन सारा जंग जेहाद करतहै। नहिं चीन्हे कोइ देव करे भरम कि सेव गुरु सैन बिन येव लड़ि लड़िके मरत है॥

सत्यकबीर वचन।

मुसलमानकी काटी चमड़ी हिंदूके बेधे कान।
कहे कबीर इस बोलतेको पहिचान हिंदूकी है मुसलमान॥

चौपाई।

जीवधर्म पुरुषारथ योगू। ताते सुख पावै सब लोगू ॥

कछुक कहो पुरुषन पुरुषारथ। जो हित स्वारथ अरु परमारथ॥
शिव दधीच हरिचंद समाजा। बलि विक्रम करणादिक राजा॥
सूराशाह सिकन्दर हातम। हनुमत भीष्म द्रोण भाषेतिम॥
ब्रह्मा हरि शिव मनु सतरूपा। गोरखदत्त कि कथा अनूपा॥
कौशिक व्यास वशिष्ठो नारद। शृंगी शुक विज्ञान विशारद॥
केते ऋषि मुनि करनी करहीं। कीरति जासु जक्त उच्चरहीं॥
जीअत ही साधू जो मरेऊ। सूरसती शुभ करनी करेऊ॥
साकजके हरी कानन कहई। स्वान शृगाल पेट तेहि भरई॥
सूर सन्त इमि करनी करही। जक्त जीव ले पार उतरही॥
तप बल शेष धरे महि भारा। तपबल ब्रह्मा सिरजन हारा॥
तप बल विष्णु जक्तको पोषै। तप बल शंभु ताहि पुनि सोषै॥
तप आधार जक्त जगदीशा। तप बल जीव बने हैं ईशा॥
जैसे जगमें सूर सयाना। निजभुजबल अरिदलदल नाना॥
करि श्रम सुखी भये सब सोई। तन धन मोह स्यार सबरोई॥
जहँ लगि जब विद्या चतुराई। पुरुषारथसे सब कछु पाई॥
आलसी जीवको विद्या नाहीं। धन नहिं होय अविद्या पाहीं॥
निरधनको कोइ मित्र न होई। बिना मित्र निरबल नर सोई॥
निरबलको सबही दुख घेरे दुखिया दीन तुच्छ जग हेरे॥
पुरुषनको पुरुषारथ चाही। नारि पतिव्रत धर्म निबाही॥
मृदु सज्जापर सोवनहारे। भय सो कीट पतंग बेचारे॥
बिबिधप्रकार विषय जिन भोगा। अंतकाल सहसो सब शोगा॥
मचै जबै घमसान लड़ाई। कोई धीर वीर ठहराई॥
कैसहु महा महिप किन होई। जो रन तजिके भागे सोई॥
कतल केंदहो राज विभंगा। कायर नहिं देखे रनरंगा॥
ऋषि मुनि शूर वीरकी करनी। कहलो कहो जाय नहिं वरनी॥

जहँ लगि तन पोषक नर नारी । सो नहिं करनीके अधिकारी ॥
सिन्धुमें जो कोई गोता मारा । सो नहिं राखै भय घरियारा॥
जबलों सिंधु न डुबकी मारे । तबलों रत्न हाथ नहिं धारे ॥
शर शय्यापर भीष्म विराजे । करि षटमास शयनगति साजे॥
तन मन कसहि मुनीश्वर ज्ञानी । लहै भक्ति सबसुखकी खानी ॥

सत्यकबीर वचन—रेखता ।

हमनसे मतमिलो यारो हमन खफकी दिवाने हैं ।
खुशीकी राह छोड़ी हैं कठिनमें जा समाने हैं ॥
हम न दिन रैन रोते हैं वो रामसे जान खोते हैं ।
सुली की सेज सोते हैं बिरहके ये रकाने हैं ॥
हमन हथियार हैं जानी पिया हरिनामको पानी ।
आखिर सब होवैंगे फानी बलीमें जा समाने हैं ॥
तजी खिदमत वजीरीकी लही लज्जत फकीरीकी ।
चढ़े किस्ती सबूरीकी फुकुरके ये रकाने हैं ॥

चौपाई ।

पुरुषारथकी ऐसी बातें । कर अवश्य पुरुषारथ तातें ॥
यथा कृषान कृषानी करई । उपजैं अन्न पेट निज भरई ॥
लहवाही अवश्य तेहि करना । भली भांति निजखेत सँवरना॥
बीज बोय रखवाली कीजै । पशु पंछी करिसो मति कीजै ॥
करि निज श्रम बिनवै प्रभुपाही । भरे खेत वर्षाकरि ताही ॥
जौ ईश्वर वर्षा नहिं करई । वृथा कृषानी ताकी परई ॥
जौ बरषैं बरवारी सुकाला । तो कृतान सो होय निहाला ॥
जौ आलस करिके नर कोई । संशय पै हल जोतै नहिं सोई॥
बीज न बोय न कर रखवारी । बर्षै घन अरु भरे कियारी ॥
ताहि अन्न फल हाथ न आये । मूरख मिथ्या आस लगाये ॥

बिन बोये कहु किनकिन लुनिया। सो जड़ जो यह ज्ञान न गुनिया॥
ताते पुरुषारथको कीजै। दोऊ लोकमें सुयश लहीजै॥
सर्वशास्त्र सदग्रंथ बिलोका। जान्यौ सर्व धर्मको थोका॥
तजि असार सार जो ग्राही। सो पंडित मराल मति आही॥
उत्तम धर्म धरे जो कोई। उत्तम करनी करिहै सोई॥
नीच धर्म जो कोई गहई। उत्तम करनी सो किमि लहई॥
साधु पुत्र नहिं करे कुकर्मा। पुत्र असाधु कुकर्महि धर्मा॥
कर्मयोनिजनिज मातुपिताका। जिवतेहि भली दृष्टिकरि ताका॥
ऐसहि सब धर्मनके लोगा। करहि कर्म निज गुरु संयोगा॥
शुद्ध अशुद्ध विचार न हारा। सो हंसा बिरला संसारा॥
कहूं कहूं बिपरीति देखावै। साधु सुअन असाधु कहावै॥
कहूं भक्तभा सदन कसाइ। पै यह कथा अनोख बताई॥
धर्म तुच्छ गहि बड़ पद पावै। ऐसहु कहूं कहूं देखलावै॥
है परंतु यह अति अज युतरी। रसिकस्वाद कहँ दे कठपुतरी॥
कोई चंडाल करे द्विज करनी। सो सतसंग केर फल बरनी॥
उत्तम कुलमें जो जिव होई। मध्यम करनी जाय बिगोई॥
त्यागहि पक्ष साधु जो ज्ञानी। हो अपक्ष यह मुक्ति निशानी॥
निज निज गुरुपद गह सब आछे। यथा भेड़गण पालि न पाछे॥
निज निज धर्म सत्य सब कहई। ताते परमपन्थ नहिं लहई॥
जब काहू सच शंका आवै। निज पद पौर गुरू बैठावै॥
रामचन्द्र मन संशय आई। देह विदेह मुक्ति अर्थाई॥
मुनि वशिष्ठ निज ज्ञान सुनाये। अपनी ठौर फेर बैठाये॥

योगवाशिष्ठ द्वितिय मुमुक्षुप्रकरण चतुर्थसर्गः ।

वाशिष्ठ वचन ।

दोहा—जीवन मुक्ति बिदेहको, तू नहिं जाने हेत ।
सहित असम्यकज्ञानके, जान न रघुकुलकेत ॥
स्वसंवेदमें भेद जो, भासत ज्ञान बिहीन ।
ज्ञानवन्तको भेव नहिं, सम्यकदृग जेहि पीन ॥

चौपाई ।

सदाकाल ऐसहि चलि आई । निज निजमता मुनीश मिलाई ॥
कोई कह भिन्न जो मारग लेई । गुरु निज पक्षन बिचलन देई ॥
उत्तम करनी जौं नहीं करिये । तो नहिं उत्तम गुरुपद धरिये ॥
शम दमादि करि इन्द्री जीते । आवागौन दुसह दुःख बीते ॥
चारि खानि जिव जौं तन धारी । मानुष प्रभु निज रूप सँवारी ॥
भक्ति हेत यह उत्तम देही । प्रभुहि बिसार जो धरि तन येही ॥
सोई अधर्म आत्महत्यारा । नर तन पाय न काज सुधारा ॥

इति ।

अथ मनुष्यको नित्यकर्म वर्णन ।

चौपाई ।

भोरहि उठि नित कर्म करीजे । करि तन शुद्ध भजन चित दीजे ॥
प्रभु प्रति बिनय बचनते मांगे । महा दीन है ताके आगे ॥
मोर मनोरथ कर प्रभु पूरा । दीनबन्धू कीजै दुख दूरा ॥
सर्व समथ तुही जग करता । तेरो हुकुम सर्वपर बर्ता ॥
मोर उधार करो प्रभु सोई । विघ्न बिहाय कृपा तौ होई ॥
गुरू अचारजको निज टेरे । सदा सहायक अपनो हेरे ॥
बारबार कर प्रभु प्रति बिनती । यद्यपि सो न करे कछु गिनती ॥
कबहुके दाया प्रभुकी होई । दुःखदरिद्र सब डारे खोई ॥
लाभालाभ एक सम गनिये । सदाकाल प्रभु गुनगन भनिये ॥

जपतप वेद पाठ शुभ कर्मा । गुरू जासु वश भाषे मर्मा ॥
गृही होयके साधू होई । निजुनिजु धर्म धरे सब कोई ॥

इति ।

अथ नरशरीर गुरु अधीन वर्णन–चौपाई ।

प्रथमै जिव जब गर्भमें आवै । तीन तापते सो अकुलावै ॥
जठरानलकी तीक्षन तापा । महादुःख तहँ जीवहि व्यापा ॥
जठर अग्निसे अस दुख पावा । जैसे तप्त लाल हो तावा ॥
तेहि तावापर जिव जो धरई । तलफि तलफि गरमीते मरई ॥
ऐसे जठर अग्नि तेहि दागे । तहँ जिव बिनय करे प्रभु आगे ॥
अबकि बार प्रभु मोहिं बचावो । बाहरनिकसि भजन मन लावो ॥
दुतिये मल अरु मूत्र मलीना । तामें दूवा दुखिया दीना ॥
भोगे दुःख महा दुरगंधा । तृतीये उलटा टांगा बंधा ॥
यहि विधि जीव नर्क तहँ भोगा । तीन ताप व्यापे सो शोगा ॥
बारबार तहँ करे करारा । त्राहि नाथ कर मोर उबारा ॥
भजन छोड़ि न करो कछुआना । प्रभुकी भावभक्तिमें ध्याना ॥
तहँ जिवके सन्मुख प्रभु ठाढ़ा । दया करे सोदुख लखिगाढ़ा ॥
सो करार सुनि हरि हर्षाना । बन्धन काटके बाहर आना ॥
जबहि गर्भसे बाहर काढ़ा । भूला कौल मोहमद बाढ़ा ॥
गर्भमें पोषे पालै आपै । प्रभुकी दया दुःख नहिं व्यापै ॥
पालि पोषि पुनि बाहर धरई । मातु पिताको आश्रित करई ॥
मातु पितहि सौंपे शिशुसेवा । गुप्त हो तबहि परम गुरुदेवा ॥
मातु पिता तबलों तेहि पाला । जबलों नहिं बीते पन बाला ॥
बालापन जबही बितजाई । विद्या पाठ गुरू ढिग जाई ॥
मातुपिता गुरु आदि अवस्था । ताबिन जीव न पावै रस्ता ॥
पुनि गुरु कुटुम्ब जातिगण जोई । कुल मरजाद सिखावै सोई ॥

विद्या पाठक पहँ जब जावै । विद्यासकल ताहिते पावै ॥
विद्यापढ़ि जब भयौ परवीना । धर्म अधर्म मर्म सब चीन्हा ॥
वेद शास्त्रको सबही छाना । तऊ न भक्तिभेद कछु जाना ॥
तब जिव संतकी संगति गहई । ताते ज्ञान लाभ सो लहइ ॥
ज्ञानपाय जब सतगुरु चीन्हा । ताके चरनमें चित दीन्हा ॥
आठ गुरूके नाम बखानो । जिनते जग जिव लाभ लहानो ॥
पहिले गुरू मातु पितु जानी । रज बीरजते देह उपानी ॥
दूजा गुरु है मनको दाई । गर्भमाह जिन युक्ति बनाई ॥
तीजा गुरू नाम जिन धारा । ताहि नाम ले लोग पुकारा ॥
चौथा गुरु जिन विद्या दीना । कुल मर्याद रीति सब चीन्हा ॥
पंचम गुरु जिन दीक्षा दीनो । रामकृष्णको सुमिरन कीनो ॥
छठयें गुरु जिन भ्रम गढ़ तोड़ा । सबसे तोड़ एकसे जोड़ा ॥
सतवां गुरु जिन सत्य लखाया । जहांको था तहँवा बैठाया ॥
एते गुरु हैं जक्त मझारा । जीवहि राह बतावनहारा ॥
अठयें गुरु पारख पद बंदा । जाते कटे सकल यमफंदा ॥
भक्तिहि भक्ति भेद अधिकाई । तासु कथा कछु देहु सुनाई ॥
अक्षर तीन भक्तिमें धारी । ताको ऐसो अर्थ उचारी ॥
प्रथम भकारसो भव बतलावो । आवागमन जो दूर करावो ॥
दुतिये ककार करे कल्याना । तृतिये तो जिवको दे ज्ञाना ॥
भक्ती दोय प्रकार बखानो । विहित अविहित जाको जानो ॥
ऐसे प्रथम बिहित निरतावो । वेद शास्त्र विधि भक्ति कमावो ॥
ताहि विहितमें चार प्रकारा । प्रथम कामना सहित उचारा ॥
जिमिहरिपदध्यायौव्रजवनिता । निजमनोर्थयुतभक्तिसोभनिता ॥
दुतिये बैरभाव करि ध्यावन । जिमि हरिनाकुसआदिकरावन ॥
तृतिये भयकारि भक्ति गहाई । जस मारीच भक्त रघुराई ॥

चौथ प्रथमभाव मर्यादिक। जैसे नारद अरु सनकादिक ॥
तिनमें द्वैको त्याग बखाना। भय अरु वैर न भक्ति प्रमाना ॥
पुनि दुतिये अविहित कहावै। प्रेम उमंग हृदयमें आवै ॥
आपसे आप प्रेम उमडाना। वेद शास्त्र विधि कछु नहिं जाना॥
उठै उमंग प्रेमको धारा। आपै भक्ति गहै हरि प्यारा ॥
सबसे श्रेष्ठ भक्ति है येही। मिले धाय निज परम सनेही॥
याहूमें कहिये द्वै ढंगा। प्रथम प्रमान कीन ज्ञान अंगा॥
ताके अंगा भक्ती कह सोई। ज्ञान उपाय मुक्तिकर जोई ॥
दुतिये सो मंत्र भाषिये ताही। याके आप ज्ञानमय आही ॥
भक्तिको भाग ज्ञान कहलावे। भक्तिमें सकल ज्ञानगुन पावै ॥
विहित अविहित कीन उचारा। बहुरि भक्ति कह तीन प्रकारा ॥
उत्तम मध्यम प्राकृत ताना। तिनको ऐसे अर्थ बखाना ॥
उत्तम भक्तीको यह लेखा। सब मई ईश्वरको देखा ॥
जल तरंग जस भेद न कोई। भक्ती श्रेष्ठ कहावै सोई ॥
शत्रु मित्र जगमें नहिं कोई। आपै आप रमै प्रभु सोई ॥
दुतिये मध्यम भक्ति बदन्ता। भगवत भक्त और भगवन्ता ॥
दोनोंते सो प्रीति लगावै। दुरजन देखि न ताको भावै ॥
तृतिये प्रतिमा पूजा ठाना। मूरतको भगवत करिजाना ॥
भगवत भक्तनसे नहिं प्रीति। प्राकृत भक्त केर यह रीति ॥
बहुरि भक्ति कह तीन बिधाना। सात्त्विकराजसतामस जाना ॥
सात्त्विक भक्ति कहे निष्कामा। राजस होय कामना जामा ॥
तामस बैरी विजयके कारन। त्रिविधभक्ति पुनि कीनउचारन॥
मानस बाचक कायक होई। बहुरि चार बिधि कहिये सोई ॥
प्रथम जो द्रोपदि आरतनिजहित।दुतिये जिज्ञासू नृप प्रीछित ॥
तृतिये अर्थी अर्थी सोई।.दुनिया चाहे ध्रुव जस होई ॥

चौथो ज्ञानीको मरजादा । जैसे सनकादिक प्रह्लादा ॥
बहुरि तीनविधि भक्ती धरिये । प्रथमहिभक्ति आप जो करिये ॥
दुतिये औरनसे करवावै । पुनि लखिभक्ति करतहरषावै ॥
नौधा भक्ती बहुरि बखानो । श्रौनो कीर्तन सुमिरन जानो॥
सेवा अरु अर्चा पुनि वंदन । दास सख्य पुनि आत्मनिवेदन॥
पुनि बारह प्रकारकी भक्ती । प्रथमै संतन संगत युक्ती ॥
पुनिहो भक्तन कृपाके लायक । ऐसे करिये कर्म सुभायक ॥
तृतिये भक्तन चरित जो आही। श्रद्धा अरु निश्चय तेहि माही ॥
चौथे हरिचरित्र सुन काना । पंचम सुनत प्रेम अधिकाना ॥
षष्ठम हरि निजरूप निरताये । जस अद्वैत बाद बतलाये ॥
सप्तम प्रीति माह नित गाढ़े । अष्टम प्रभु प्रकाश उर बाढ़े ॥
नौमें सकल बिकारहि त्यागा । हरिगुन आपमें आवन लागा ॥
सर्वज्ञता होय पुनि दशमें । ग्यारहे सब हरि गुनहो इसमें ॥
बारहे निजु तम हरिकी प्रीति । सकल भर्मभय जीवकी बीति॥
तीनप्रकार भक्तिको भेवा । प्रथम कीजिये गुरुकी सेवा ॥
तन मन धनसे प्रीति लगावै । गुरुकी सेवा सब सुख पावै ॥
दुतिये साधुन सेवा अहई । ताते जीव परमपद लहई ॥
तृतिये जप तप कीन प्रमाना । निर्गुणसर्गुण भक्ति विधाना ॥
अगुण सगुण जो भक्ति उचारा । स्वसंवेद थापे दोहु बारा ॥
दोहुते पार भक्ति जो गहई । परम पुरुषकी भक्ति सो अहई॥
ब्रह्मा भक्ती शिवकी भक्ती । रामकृष्ण विष्णू अरु शक्ती ॥
निर्गुण भक्ति योगेश्वर धारी । पुरुष भक्ति इनतेहै न्यारी ॥
जेते भक्ति जक्त में कीना । सबही जानिये गुरु आधीना ॥
प्रथमैं निश्चय गुरु की करई । निश्चयबिनकछु काज न सरई ॥
सबही धर्मकेरि समताई । गुरु निश्चय बिनमुक्ति न पाई॥

धर्म महम्मदमें बतलाये। निश्चय तरुपर गुरु बैठाये ॥
निश्चय माह गुरूका बासा। बिन गुरु निर्गुण नर्कनिवासा ॥
निश्चयमें जब सद्गुरु बैठे। जिवके हृदय ज्ञान तब पैठे ॥
जिनके हृदयें निश्चय नाहीं। तो सबही निगरे नर आही ॥
द्वन्दते भया सकल संसारा। द्वन्दहि तासु छोड़ावन हारा ॥
पुरुष नारिको भया जो मेला। ताते जगको पसरा सेला ॥
तैसे जब गुरु शिष्य मिलजाई। सकल भर्म भय जाय नसाई ॥
बिन गुरु जीव राह नहिं पावै। जप तप दान वृथा सब जावै॥
गुरुके बचन चरन चित दीजै। कबहू ताहि उलंघ न कीजै ॥
करिये गुरुकी सदा बड़ाई। गुरुअस्तुति सब अघ बिनसाई ॥
निशदिन ताहि सेवामें रहिये। ताते अधिक न तप कोइ कहिये॥
तन मन धन गुरुअर्पण करना। गोखुरसो भवसागर तरना ॥
गुरु बिरुद्ध करिये जो कर्मा। होय शुद्धपै तजे अधर्मा ॥

सत्यकबीर वचन।

साखी—कबीर गुरुबिन माला फेरते, गुरुबिन देते दान।
गुरु बिन दाम हराम है, पूछो वेद पुरान ॥
गर्भयोगेश्वर गुरु बिना, लागा हरिकी सेव।
कहै कबीर बैकुण्ठते, फेरि दियौ शुकदेव ॥
कबीर गुरुबिन भर्मा, यौ फिरे ज्यौं रामकोरोझ।
सतगुरुसे परचै भई, पाया हरिको खोज ॥
कबीर जो निगुरा सुमिरन करे, दिनमें सौसौ बार।
नगर नायक सत करे, तौ जरे कौनके लार ॥
गुरु आज्ञा निरखत रहै, जैसे मणिहि भुअंग।
कहै कबीर संसारमें, यह गुरु मुखको अंग ॥
गुरुकी आज्ञा आवई, गुरुकी आज्ञा जाय।

कह कबीर सो सन्त है, आवागौन नशाय ॥
कबीरगुरु मानुषकरि जानते, चरणामृतको पान।
ते नर नरकहि जायँगे, जन्म जन्म हो श्वान ॥
कबीरते नर अन्ध हैं, गुरुको कहते और।
हरि रूठे ते ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर॥
कबीर गुरु है बड़ गोबिन्दते, मनमें देख बिचार।
हरि सुमिरे सौ बार है, गुरु सुमिरे सो पार ॥
कबीरगुरुसे ज्ञान जो लीजिये, शीश दीजिये दान।
केतिक भोंदू पचिमुये, राखि जीव अभिमान ॥
कबीर तीन लोक नौ खंडमें, गुरुते बड़ा न कोय।
करता करे न करि सकै, गुरू करे सो होय ॥

चौपाई।

गुरुके लक्षन चार बखाना। प्रथमहि वेद शास्त्रको ज्ञाना ॥
पुनि हरि भक्त मनो क्रम बानी। तृतीये समदृष्टी कहि गानी ॥
चौथे वेदकी विधि सब कर्मा। यह चौ गुरुगुन जानो मर्मा ॥
मुख्य एक गुन गुरु कहि दीजै। चेलेको हरि सन्मुख कीजै ॥
गूको अर्थ अज्ञ तिमिराना। रू जाते प्रकटे हिय ज्ञाना ॥
दूर करे जो अज्ञ अँधेरा। गुरू नाम ताही को टेरा ॥
ऐसहि शिष्य धर्म चौ भनंत। गुरुकी सेवा तन मन धनते ॥
दुतिये सेव मैं विषयको त्यागे। तृतीये मन हंकार न जागे ॥
चौथे गुरुके वचन प्रतीती। जो कोइ गहै चलै यम जीती॥
शिष्यको दोय धर्म सर्वोपर। गुरु सेवा वाती निश्चयकर ॥
तामें दोय धर्म ये बसि हैं। गुरु असीबते सब गुन लसिहैं॥
आठ गुरु जो कीन प्रमाना। सबहि श्रेष्ठ अति उत्तम जाना॥
सर्वोपरि दीक्षा गुरु भाषी। जाते भक्ति मुक्ति पद राखी ॥

गुरु गोविंद दोउ एक स्वरूपा । बिनु गुरु परा जीव भ्रम कूपा॥
बिनगुरु कोइ विद्या नहिं आवै । अलख अभेद सो कैसे पावै ॥
बिना निशाने तीर चलावै । अंध समान ठौर नहिं पावै ॥
अच्छे गुरुके ढूंढन मांहीं । निगुरा रहन भलो कछु नाहीं॥
जो कोइ कर्म धर्म बतलाये । सो गुरु करि लीजे मन भाये॥
बहुरि जहां उत्तम गुरु पैये । ताके चरननमें चित लैये ॥
जो दृढ हो सांचा गुरु ढूंढा । निश्चय लहै गहै पद गूंढा ॥
गुरु बिन अज्ञ रहै नर कैसे । मानुष ज्यौं पशु देखी जैसे ॥
जो मानुष हो गुरु बीहीना । सो जड़ पशु पंछी ते दीना ॥
पशु पंछी जेते जगमांही । बिन गुरु सबही ज्ञान गहाही ॥
निज पितु मातु ढंग सब धरही । बिना सिषाये सब कछु करही॥
बिनगुरु करहि कर्म विधि नाना। नरके कबहुँ आव न ध्याना ॥
नर सब जिवते अबला बहूता । गुरुद्वारे पावै बल बूता ॥
शिष येत पशुहू सिषि जाहीं । मनुष सो ज्ञान होय तेहिनाहीं॥
गुर द्वारे नर सो गुन पावै । नरते सो ईश्वर ह्वै जावै ॥
यहिविधि नर है गुर आधीना । करिये कर्म कर्म हो छीना ॥
कर्म कीजिये सतगुरुसंगा। तब उर उपजै ज्ञान अभंगा ॥

दोहा–गुरुवानी रविकर निकर, कर उर शिष्य प्रकाश ।
ज्ञानदीपके जगमगे, भयौ धर्मको नाश ॥

चौपाई ।

सर्वोपरि गुरुकेर महातम । बिन गुरुको लखि पावै आतम॥
गुरुकी सेवा गुरुकी पूजा । गुरुसमान कोइ देव न दूजा ॥
गुरुके चरनन जिन चित दीन्हा। आतम परमातम तिन चीन्हा॥
गुरुकी कृपा हनै सब शोका । सोई सुखदायक दोउ लोका ॥
रामकृष्ण गुरुके गुन गायौ । ताके चरननमें चित लायौ ॥

संत कबीर गह्यो गुरु चरना। बारबार ताको जस बरना॥
गुरु करिके जो दोष लगावै। सूकर श्वान केर तन पावै॥
नारद गुरुको दोष लगायो। चौरासी ताको भरमायो॥
पूरव कथा यह कागभसुंडर। उठिके नहि प्रनाम गुरको कर॥
जाय करत शिवमंदिर मांही। गुरू तासु चलि आयो ताही॥
गुरुको देखि न सो सनमाना। निरखि अनीत शंभु रिसियाना॥
भै अकाशबानी तेहि काला। रे खल तैं गुरुधर्म न पाला॥
धरु जड़ माहस सर्प शरीरा। गुरू अपमान पाव बहुपीरा॥
एक बार पथकी यह बाता। बद्रिकाश्रममहिमें चलि जाता॥
जात दीख महि पंथ दुहेला। एक गुरू ताको एक चेला॥
परम प्रीति निजु गुरुसे धरई। चरनामृत बिन भोग न करई॥
लागे तहां पहारको पानी। खेदते दुःखित गुरु कह जानी॥
गुरुकी सेव शिष्य सो त्यागा। गारी देन ताहिको लागा॥
गुरुहि दुखी तजिके चलि गेऊ। बद्रीपतिकी मारग लियऊ॥
तहते पलटिके सो जब आई। कुष्ठवरन ताके तन छाई॥
बाटहि माह कुष्ठ भरि मारा। यह चरित्र निज नैन निहारा॥
गुरु निरादरको जिमि पापा। तिमि सेवाफल अगिनितथापा॥
कोटिन जप तप करे जो कोई। गुरुविहीन सब निरफल होई॥
मुनि सुकदेवसे को बड़ि ज्ञानी। गर्भते योगमुक्ति जिन ठानी॥
तपबल सो वैकुण्ठ सिधाया। बिन गुरु तहां रहन नहिं पाया॥
गुरुकी निंदा करे जो प्रानी। घोर नरकमें वासा ठानी॥
गुरुते ईर्षा जो जड़ करिहै। सो यमदंड भांति बहु भरि है॥
गुरुकह बड़ गोविंदते कीन्हा। जाकी कृपा गोविंदहि चीन्हा॥
गुरुसम और न दूजा दाता। सबको मन वेदन विख्याता॥
रिद्धि सिद्धि गति मुक्ति अमाया। बिन गुरु दया न कहुँ कछु पाया॥

गुरुबिन कहो गांठि को खोले । गुरुबिन अंध टटोलत डोले ॥
बारबार कर गुरु गुण गाना । कहा कौन गुरुदेव समाना ॥
धन्य धन्य गुरु देव गोसांई । तारयौ भव गोखुरकी नाई ॥
गुरुगुरु जपिके जागे योगी । विरति विचारप्रपंच वियोगी ॥
जादिनते गुरु शरनमें आये । तादिनते दुःख दोष दुराये ॥
गुरुकी पारन सकल सुखदाई । गुरुप्रसाद अमरावति पाई ॥
जौं गुरु जीवहि नाम न देता । तौ कहु कौन मुक्तिपद चेता ॥
तातें गुरु सब सुखको कारन । तासु चरन रजकर शिर धारन ॥
धन्यधन्य सो शिष्य बड़भागी । तन मन धन गुरुसेवा लागी ॥
तीरथ व्रत कछु काज न नाहीं । गुरुके चरणनमें पति जाही ॥
गुरुसमान तीरथ नहिं औरा । गुरू महात्मविदित सब ठौरा ॥
कोटिन तीर्थ गुरुजीके चरना । सत कबीर जो निजमुख वर्ना ॥
गुरुको शीव न मानै जोई । सो जिव निश्चय जाय बिगोई ॥
गुरुसे लगन जासुकी लागे । तन मन धन तृनसम सो त्यागे ॥
अब सुनिये गुरुपारख पदको । सोई परम गुरु है बेहदको ॥
हदके गुरुको जिन भल पूजा । ताहि मिले पारख गुरु दूजा ॥
हद बेहद माह गुरु सोई । बिना ज्ञान लखि परत है दोई ॥

सत्यकबीर वचन—चौपाई ।

गुरुसम दाता कोइ न भाई । मुक्तिको मारग दियौ बताई ॥
गुरुबिन हृदये ज्ञान न आवैं । ज्यौं कस्तूरी मृगा भुलावै ॥
गुरुबिन मिटै न अपनो आपा । धर्मजेवड़ी बांधा शापा ॥
गुरुबिन केहरि कूपमें पड़िया । गुरु बिन गजछायासे लड़िया ॥
गुरुबिन श्वान देखि बहु भेषा । मन्दिर एक कांचकी देखा ॥

चहुँदिश दीस आपनी छाया। भूँकत भूँकत प्रान गँवाया ॥
गुरुबिन सुवा नलनिसे बंधा। गुरूबिना कपि पड़ौ जो फंदा ॥
कहे कबीर भर्म संसारा। बिन सदगुरु को उतरे पारा ॥
साखी-भर्म जेवड़ी जगबंधा, फिर जन्मै मरिजाय।
कहैं कबीर सतगुरुमिलै,तब सतलोकसिधाय॥
मीन चकोर मराल मधु,पशु ह्वै तजै न नेह।
नर ह्वै तजै कबीर जो, तिनके मुँह दे खेह ॥

शब्द।

नरको नहिं परतीत हमारी।
झूठी बनिज कियौ झूठे संग पूजी सबैं मिलिहारी ॥
शब्दरशन मिलि पंथ चलायौ तिरदेवा अधिकारी।
राजा नग्र बड़ो परपंची रैअत रहत उजाड़ी ॥
इतते उत उतते इत राखत यमकी साट सँवारी ॥
ज्यौं कपि डोरि बांधि बाजीगर अपनी खूशी रारी॥
इहै पेड उतपति पर्लयको विषया सबै बिकारी।
जैसे श्वान अपावन राजित त्यौं लागी संसारी ॥
कहैं कबीर यह अद्भुत ज्ञाना को मानै बात हमारी।
अजहूँ लेव छोडाय कालसे जौंकै सुरति सँभारी ॥
दोहा-गुरुकी महिमा अधिक है, थके विष्णु विधि वाम।
जोरि युगलकर पायपरि, कोटि कोटि परनाम ॥

इति नर शरीर गुरुआधीन।

अथ शरनागतीको वर्णन-चौपाई।

सतगुरु शरण सकल सुखदाई। ताते जिव सत लोक समाई ॥
साचे गुरुकी गहिये शरना। सोई जीव दुसह दुःख हरना ॥
झूंठे गुरुसे काज न सरिहै। धोखे जिव यमके मुख परिहै ॥
सूर कि शरण परे जो कोई। सो जिव कबहुं न जाय बिगोई॥

कायर कूरकी शरणमें लागे । अंतमें छोड़िके ताको भागे ॥
श्वान पूछि गहि जाय न पारा । बूड़ि मरे भवसागर धारा ॥
अंधको राह देखाव कि अंधा । बंधेको खोले कह बंधा ॥
केत उपासक भाषे सोई । भक्ती अरु शरणागत दोई ॥
उभय भांतिसे प्रभुपद पाये । तामें ऐसो भेद बताये ॥
भक्ती ग्राहक ऐसे कहई । युक्ति जतन करि हरिपद गहई॥
एकजन्म नहिं जन्म अनेका । छूटै नहीं भक्तिको टेका ॥
काहू जन्म मिले हरि अपना । छूटै सकलभय भर्म कलपना॥
पुनि कह शरनागत जो ग्राही । करन करावन मोहि कछु नाहीं॥
शरनहो आपको हरि अर्पनकर । बहुरि नहीं कछु युक्ति यतनकर॥
शरणहो फेर यतन जौं गहिये । तो शरणागत मिथ्या कहिये॥
शरनहैं जौं निश्चयमें घाटा । ताकी यमगन रोकै बाटा ॥
जो सतगुरुकी शरणको ताकी । तेहि कछु यतन रहे नहिं बाकी॥
ताते शरणागत सब परहै । शरण गहै ते जीव उबरहै ॥
शरणागत कह सब गुण आवै । ज्ञानभक्ति तेहिमाह समावै ॥
शरणहो जब यह निश्चय आई । प्रभु मोहि दोनों लोक सहाई ॥
सकल पाप ताको जरि जावै । जो सतगुरुकी शरणमें आवै ॥
शरणागतहो षटगुन गहिये । ऐसे ताको ब्यौरा कहिये ॥
विधि निषेध निज गुरुकी टेवा । दुतिये साधु प्रीत अरु सेवा ॥
तृतिये यह निश्चय उरधारे । मो अघ बिसरि नाथ मोहितारे॥
चौथे यह निश्चय मन माहीं । प्रभु तजि मोर सहायक नाहीं॥
कैसेहु दुःख सांकरे गूढा । प्रभु तजि और सहाय न ढूंढा॥
पञ्चम सतगुरु मूर्तिको ध्याना । ताके सन्मुख बिनती ठाना ॥
प्रभु तजि मोर ठेकाना नाहीं । पावन पतित नाम प्रभु आहीं॥
मो सम पतित न कतहु निहारा । प्रभु सम और न तारनहारा॥

छठयें आपको प्रभुहिं समर्पै। ताको कबहुँ काल नहिं दर्पै॥
यह षटगुन जो कोई धारा। शरणागत पलमें कर पारा॥
काहू साधनको नहिं काजा। शरणागती सकल सुखसाजा॥
कोइ कोइ आचारज हैं ऐसे। शरणागत विधि भाषे जैसे॥
निशदिन प्रभुको ध्यान लगावै। यक क्षण भरि बिसरै नहिंपावै॥
टुटै न तार भजन दिन राती। शरणागत कहिये यहि भांती॥

सत्यकबीर वचन।

साखी–कबीर जो जाकी शरन गहै, ताको ताकी लाज।
उलटि मीन जल चढ़त है, बह्यो जात गजराज॥

चौपाई।

जल अरु मीन कि प्रीति निहारो। तजे प्रान हो जलते न्यारो॥
ऐसे सतगुरु पद रति राते। निशदिन तासु ध्यानमें माते॥

कुण्डलिया।

रामानन्द कि फौजमें, कबीरके शिरमौर।
लूला लंगड़ा पांगुला, सबको करिगये ठौर॥
सबको करिगये ठौर, सुनो कलिके नर नारी।
गहिये ताकी शरण, हरण भवकी भय भारी॥
भय भारी हटजाय, उपाय न कलिमें दूजी।
मेटे यमकी त्रास, आस ताहीते पूजी॥
शरणगहे सुख होय जिव, बीते सकल कलेश।
गह्यौ बिभीषण शरण हरि, कीन्हा लंक नरेश॥
कीन्हों लंकनरेश देशपति, प्रथम सो रहेऊ।
शरण कबीर सराहि, जाहि खल दल बहु तरेऊ॥
तर्‍यौ श्वपच चंडाल, डाल अघ रहेऊ न कनिका।
परमपुरुष पद पाय, यथा काशीकी गणिका॥

शरणागतको धर्म यह तन मन करिये भेट ।
गुप्त प्रकट सब आर्पिये पुनि यम गहे न फेट ॥
फेट गहे तब कौन सकल तेरो नहिं मेरो ।
बाहर भीतर पौर ठौर सब तेरौ डेरो ॥
तेरौ डेरो भयो वस्तु तामें सब तेरी ।
तूही तहँ रखवाल छुटी सब संशय मेरी ॥

चौपाई ।

अब कलिमें आयू नर थोरी । को चित योग युक्तिमें जोरी ॥
पुण्यदान कह ध्यान अगाधू । कर्मबिहीन गृही अरु साधू ॥
ताते शरनागत सुखदाई । और यतन कलिमें नहिं पाई ॥
कलिके जीव अनन्त अपारा । शरण कबीर होय भवपारा ॥
मूर्ख पुरोहित जस बिन ज्ञाना । ताको दान देत यजमाना ॥
दृढ़ ह्वै सतगुरु शरण गहीजै । सकल भर्मभय ताते छीजै ॥

सत्यकबिर वचन--शब्द ।

बिरिजमें महरि न खेले सिकार ।
चारपांच दश बीश महाभट संग लीने तीनो भरतार ।
मीनरूप ह्वै रहै जगतमें डारि बहावै तिरगुन जार ॥
जलरूपी ह्वै रहै संत कोई गहि पकरे गुरुचरण करार ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो यहिते रहियो सदा होशियार ॥

इति शरण ।

अथ सतसंग कुसंगका वर्णन--चौपाई ।

सर्व शास्त्रको यामें एका । बिनसतसंग न उपजे विवेका ॥
बिनविवेक नहिं उज्जल करनी । जाते मुक्तिपन्थ पग धरनी ॥
सतसंगतकी महिमा भारी । लिखते शेष शारदा हारी ॥
वेद कतेब पार नहिं पावैं । संतनको नित गुन गन गावैं ॥

विधिहरिहर नितजाको ध्यावै । संतको भेद सोऊ नहिं पावै ॥
सतसंगत सब सुखकी खानी । सर्वलाभ ताहीते जानी ॥
जौ तप कीजै वर्ष हजारन । छन सतसंगत कष्ट नेबारन ॥
सत्यस्वरूपी ईश्वर कहिये । ताके भक्तन संगत गहिये ॥
तासु नाम सतसंग कहावै । सो संगतगहि जिव तरिजावै ॥
साधुनकी सेवा मन लावै । तब सतसंगतको नर पावै ॥
सतसंगत कहु विविधिप्रकारा । तामें द्वैविधि मुख्य उचारा ॥
हरिभक्तन ढिग बैठन ढंगा । दुतिये वेद पाठ सतसंगा ॥
जोकर भगवतभक्तन सेवा । ताते मिलै परम गुरु देवा ॥
सदशास्त्रन पढ़ि तिनहि बिचारे । कंठ पाठ पुस्त तिनको धारे ॥
तेहि अनुसार कर्म सब करई । सार असार तहां निरुवरई ॥
सोइ शास्त्र है जिव सुखदाई । जाते भक्ती मुक्ती पाई ॥
जाहि शास्त्रपढ़ि तन मन भटके । ताको ले पानीमें पटके ॥
जैसे साधन अरु सतसंगा । वर्णन वेदकीन बहु ढंगा ॥
हरिभक्तनकी सङ्गत जोई । तेहि समान कहु तुलै न कोई ॥
सतसंगत जो ढूँढन चहई । सबही ठौर ताहिको लहई ॥
अपने पापको कारन आही । सतसङ्गत जेहि दरसे नाहीं ॥
अपनी दृष्टि दोष जो धारे । तेहिकारण परदोष निहारे ॥
निजु दृग दोष चंद द्वै दरसै । अंधेको अंधेर सब सरसै ॥
भक्तीमें दृढ होय न जबलों । सतसङ्गत करते रह तबलों ॥
मनक्रम साधुकि सेवा गहिये । गाहीते सबही सुख लहिये ॥
साहिब सदा सन्तके साथा । विन सतसंग न आवे हाथा ॥
सन्तजान साहिबकी देही । भक्तन संग पाइये तेही ॥
भक्तन मुख हरि भोजन करही । सदा सो तिनके संग विचरही ॥
वरन विवेक एक नहिं करिये । साधु जानि सेवा चित धरिये ॥

साधु सेवके बैरी पांचा । तामें भटकि जाय जिव कांचा ॥
रूप वरन विद्या बल धनमद । ताते जीवन लहै सेवापद ॥
जेते सुख श्रुति संत बखानी । सातो स्वर्ग मुक्ति सुखदानी ॥
ताहूते सुख अधिक जो होई । सत संगत सम तुलै न कोई ॥
सतसंगतसे ईश्वर पावै । ताते अधिक और कह गावै ॥
जहँ ईश्वर तहँ सुरगन छाया । सब दयाल जब प्रभुकी दाया ॥
मुन गन मुक्ति मुक्ति जिन पाई । जहँ लगि लखो विभूति भलाई ॥
सो सबहीं सतसंग प्रतापा । यह पद सब संतन मिलि थापा ॥
अब कुसंगको वर्णन करिये । दुष्ट देखि ततछन परिहरिये ॥
बरुअहि निज उर लेहु लगाई । दुष्ट संग याते दुःखदाई ॥
सर्प तो एक प्रानकर घाता । क्रूर संग ले नरक निपाता ॥
दोहूँ लोकमें काज विभंगा । मति मलीन हो किये कुसंगा ॥

इति ।

अथ मनमायाको वर्णन—कवित्त ।

यह मन महराज मनहीहै यमराज मन कीने सब काज मन पोषत भरतहै । ठाकुरवो ठग मन फैला सब जग मन कालवो दयाल मन तारत तरतहै ॥ मनसो न खोट मन कीने हरि ओट जिव भवमें डुबाय बरमायके छरतहै । अकथ अनूप मन ईश्वर स्वरूप मन तिहुँ पुर भूप जो उपायके हरत है ॥

चौपाई ।

यह मन तीन लोकको नाथा । तीन देव इंद्री तेहि साथा ॥
गुन इंद्री याते प्रकटाही । पुनि याहींमें लय ह्वै जाहीं ॥
यहि मनको कोइ भेद न जाना । सुर नर मुनि परे बंदीखाना ॥
ऊपर मन अरु हेठ है माया । तासुमध्य जग जीवनिकाया ॥

चक्की चले दल सब जिवको। होहि पिसान न पावै पिवको ॥
कहा बापुरा जीव कडारा। सुरनर मुनिसबछलिछलिमारा॥

कुंडलिया ।

चलती चक्की देखिके दिया कबीरा रोय।
दोपट भीतर आनिके साबित गया न कोय ॥
साबित गया न कोयमिले नहिं सन्त सनेही ।
कठिन कालको घेर फेर पर समुझावै तेही ॥
समुझाये जौंचेतसो किले सतगुरु अटको।
फेर न पीसो जाय देखतेहि यमगनसटको ॥

चौपाई ।

यह मन सकलजक्त बिस्तारा। यहिमनको कछु वारन पारा॥
मनको रचना सकल जहाना। सात प्रकार सृष्टि जग नाना ॥
मानुष देव नाग कहि देता। किन्नर पशु पच्छी अरु प्रेता ॥
सात जीवहै सृष्टि साता। तिनकी अब सुनिये यह बाता॥
दोहा–स्वप्ना जाग्रत प्रथमपुनि, संकल्प जाग्रित होय ॥
केवल जागृत त्रितयकह, चिर जागृत चौथो होय॥
पंचम दृढ़ जाग्रित कहै , छठे जागृत सुपनाहि ॥
सतये छीन जागृत कहो, सात सृष्टि यह आहि ॥

चौपाई ।

स्वपने विषे जो जागृत होई। स्वपना जागृत कहिये सोई ॥
पुनि संकल्प जागृतकह जोई। अजौं नींद नहिं आई होई ॥
तामें जो मनराज फुराना । तेहि मनराजमें जग दरसाना ॥
दृढ़ वासना भई तेहिमाही । पूर्व वासना बिसरी जो जाही॥
यहि मनराजको रचित जो देही। अधिभूतकता दृढ़ गहयेही ॥

केवल जागृत तृतीये होई । परमातम ततसे फुरोई ॥
संकल्प मात्र जक्त जो गहई । निश्चय आतम पदमें रहई ॥
चौथे चिर जागृत कह लाया । आतमतत्त्वसे जो फुरिआया ॥
निश्चय करि जो ताको गहेऊ । जन्मांतरको प्राप्ति जो भयऊ॥
पंचम सुषुप्ति जागृत नाना । दृढ घनभूत जो होय वासना ॥
पाप कर्म करि नो मन लाया । ताते थावर यूनी पाया ॥
षष्ठहि स्वपना जागृत कहिये । जब संतनकी संगत गहिये ॥
पढ़ि सच्छास्त्र भयो जो बोधा । नहिं विचारनिज मनकोशोधा॥
तबसो जागृत स्वपना होई । शुद्धबोध उर थपना होई ॥
सप्तम बोध विषे दृढ़ जोई । तुरिया नाम कहावे सोई ॥
छीन जागृत सोनाम बखाना । परमानंद प्राप्ति जिव जाना ॥
सप्त सृष्टि मन राजा केरो । मन जीते न करे भव फेरो ॥

सत्यकबीर वचन ।

साखी–कबीर मन गोरख मन गोविंदा, मनही औघड होय ।
जो मनराखै अतनकरि, तो आपै करता होय ॥
कबीरकीटिकर्मपलमें, करे यह मन विषया स्वाद ।
सतगुरु शब्द माना नहीं, जन्म गँवाया बाद ॥
कबीर मन पंछी भया, बहुत चढ़ा आकाश ।
ऊहाँ हांत गिर पड़ा, मन मायाके पास ॥
कबीर–मन जो गया तो जानदे, गहिके राख शरीर ।
उतरी परी कमान है, क्योंकर लागै तीर ॥

छन्द भुजंगप्रयात ।

महामत्त मातंग निर्द्वन्द्व गाजा ।
गहै कौन पावै मनी रामराजा ॥
लियौ योगमा छन्दंरा नाथ केरा ।

तपी सूर सिद्धा जपी नर्क गेरा ॥
यही जीवको नित्य बहकावता है।
यही ज्ञानी ध्यानीको डहकावता है ॥
महाकाल अन्याइया जो कही है।
यही है यही है यही है यही है ॥

इति मन।

अथ वाक्इंद्रीको दमन—चौपाई।

शम दमादि यह जिवको कर्मा। गहे सुचाल बहे सब भर्मा ॥
प्रथम वाक इंद्री वश करना। सुधा वचनते जगमन हरना ॥
भलिविधि बूझिविचारिके बोले। जीवबाक विष अमृत घोले ॥
कटुकवचनविषे कबहुँ न कहिये। जाते श्रोताको उर दहिये ॥
काहूसे बोलो मति करुई। ऐसो ऊंच न ऐसो हरुई ॥
मध्यम बोल तोलके आनो। धर्म नीतिमय वचन बखानो ॥
द्वै नर जबहि करे कनफुसकी। कान लगावन तब दिश उसकी॥
जब द्वै मानुप बात कराही। बात न काटो तिनके माही ॥
वचन पै तर्क करे जो कोई। शुद्ध होय तो मानो सोई ॥
वृथा पक्ष निज बात न करिये। शुद्धको गह अशुद्ध परहरिये ॥
तर्क करत जो आपते ऊंचा। तो तामें हो रहिये नीचा ॥
मिथ्या निन्दा तजो भदेशा। सत्य वचन कर हित उपदेशा ॥
वेदपाठ कर विद्या दाना। पात्र कुपात्र भले पहिचाना ॥
वेद पाठ सच्छास्त्र उचारी। धर्म कि विद्या कर्म सुधारी ॥
श्रुति ज्ञान विज्ञान कि पौरी। तासु प्रताप विदित सब ठौरी॥
कथनी मता महम्मदको है। विद्या सहित साधु किमि सोहै ॥
पूर्णचन्द्र जिमि तारागनमें। विद्वज्जन तिमि तपसिन घनमें॥
निद्रावश जो पंडित होऊ। मूरखके तपते भल सोऊ ॥

विद्या होय विनय संपन्या । ता पंडितको कहिये धन्या ॥
विद्या पढ़ि अभिमान भुलाना । सो जिव कीनो यमपुर थाना॥
रसना सब संशयको छेदा । परमपंथको पावै भेदा ॥
रसना द्वार ज्ञान गुन आवै । रसना द्वार अगनि गति पावै॥

इति रसना ।

अथ नेत्र और श्रवणका दमन—चौपाई ।

निज दृग दमन करो यहि लेखे । अन देखनी वस्तु मति देखे ॥
गुप्तस्थान मनुष पशु केरा । अति विशेष नहिं तादिशहेरा॥
नरपशु परदा देख न जैसो ! परे कुबानि जाहिमें ऐसो ॥
काल पाय निज दृष्टि गवावै । सो अवश्य अंधा ह्वै जावै ॥
जो परछिद्र निहारन हारे ।दुःखी होहिबिन सुमतिबिचारे॥
करता कृत निज दृष्टि निहारी । प्रभुहि सराह जीव तप भारी॥
काम अरु क्रोध कुदृष्टि न हेरे । सहज सुभाव नैन निज फेरे ॥
कामदृष्टि परतियपर डाले । जनु मैथुन करि धर्महिं चाले॥
निज पत्रिका लिखत जब कोई । ताहि न पढ़ो न निज दृगजोई॥
जब तिय संग अनंग बिहारी । तब न गुप्त अस्थान निहारी॥
जौ तादिश तेहिकालमें देखे । जन्मे पुत्र अंध यहि लेखे ॥
नैनन माह निरंजन थाना । स्वसंवेद इमि करे बखाना ॥
दृगन सपक्षी माह बसेरा । भोग हेत निज नैनन फेरा ॥
भोगे भोग दृगन आसीना । ताको छल नहिं कोई चीन्हा॥
मन चंचल नैनन चपलाई । मन थिर हो तिनकी थिरताई॥
नेत्रनमें है यमको बासा । सोइ जीव गल डारे फांसा ॥
जब जिव रोग सोग तन छावै । सबही अंग छीन ह्वै जावै ॥
नैन होहि कबहू नहिं छीना । सदा एकरस देखी पीना ॥
कैसहु कृशित रोग मल घेरीं । ज्योति अघट्ट निरंजन केरी ॥

अधी आंख निरंजन जूझे। बिन देखे मुनि सब कछु बूझे॥
ताते साधु प्रथम दृग बांधे। पीछे मन इंद्रीको साधे॥
श्रवणको ऐसे कीजै दमना। अनसुनती बातैं मति सुनना॥
चुगली चाई निंदा वानी। सुने न श्रवण जीव जो ज्ञानी॥
महा प्रबल इंद्री हैं येही। जीवहि दुःखसुख व्यापे जेही॥
गुरूपदेश कि कथा बताया। जीयत कैदी हाड तोड़ाया॥
देखन ताहि जुरे नारीनर। यक गर्भिणी रहे तिहि ठाहर॥
कैदी हाड लगा जब टूटे। निरखि गर्भिणी धीरज छूटे॥
फिर देखी जब लोग लोगाई। सबही निज निज भौन सिधाई॥
निजघर जाय गर्भिनी बाला। कैदी सुरति कीन कछु काला॥
मुनिताको दीन्हो बिसराई। गर्भ कि थित सरनता पाई॥
जन्यौ पुत्र तिहि औसर नारी। ता शिशुकी यह दशा निहारी॥
कैदी अस्थि टुटी रह जेतो। बालक हाड टुटा सब तेतो॥
हस्पताल सो शिशुले गऊ। बीसबर्ष लो जीअत रहेऊ॥
टूटा हाड़ बाल सो जीया। औषध ताहि न कछु गुनकीया॥
मातु दृष्टि बालक दुःख पाया। गर्भहिमें निजु हाड़ तोड़ाया॥
ऐसो नैन महाबलवाना। व्यासदृष्टि सुत तीनउपाना॥
ऐसहि श्रवण प्रबलकहि गानो। एकबारकी कथा बखानो॥
बौराकरे बिगार जो धुंधा। धरि तेहि खाटके ऊपर बधा॥
बंधा परा रहै जिहि ठांई। एक कलावत तहँ चलि आई॥
गावन और बजावन लागा। सुनते बौरा मन अनुरागा॥
बौरा रागको भेदी रहई। सुनि सुर तालप्रीति अतिगहई॥
परे परे निज अंग हलावै। ज्यौं सुरताल कि गतिसुनि पावै॥
दूर भयौ ब्यौरापन ताको। खाटसे खोलि दियौ पुनिवाको॥
गूँगे बहिरे चंगे होई। श्रवण नयन हारे ते जोई॥

श्रान देत मृग मधुरीबानी। ऐसहि प्रबल नासिका जानी ॥
इंद्री सकल अकलको हरही। ले सब जिव भवसागर भरही ॥

इति नेत्र श्रवण दमन।

अथ हाथ पांवको दमन—चौपाई।

उत्तम कर्म करनते कीजै। काहूको मति दुःख कछु दीजै॥
पंथमें पाहन कंटक होई। करते दूर डोर गह सोई ॥
दान पुन्य हाथन ते करिये। दुःखी दीनको सुखते भरिये ॥
मन्दे कर्मन हाथ उठाये। परधन परतिय दिस न चलाये॥
चरननको यह कर्म बखाना। हरितीरथन सतसंगत जाना ॥
संतदरस रोगी सोगी पह। यथा योग चलके दुःखदलतह॥
हरुये हरुये महि पग धरई। देखत चले न जिव कोइ मरई॥
लाखन जिव पायनतर आवै। दाया करिके तिनहि बचावै ॥

इति हाथ पांवको दमन।

अथ श्रेष्ठ पुरुषनकी सभा प्रवेश वर्णन—चौपाई।

श्रेष्ठ सभामें जब पग दीजै। तहँ सब कर्म विचारते कीजै ॥
सभामध्य जेहि औसर पैठे। आज्ञापाय तहां तब बैठे ॥
बिन बोले नहिं बोलो बोला। बिन पूछे कछु भेद न खोला ॥
बुद्धि विरुद्ध न बोलो बानी। जाकी कोई प्रतीत न आनी ॥
बहुत बड़ाई अस्तुति छोड़ो। निंदा चुगुलीते मुख मोड़ो ॥
कबहुँ न निजगन बुद्धि सराहा। दुःखमतिभाषो सभाउच्छाहा ॥
ऐसो वचन कहो जनि ताही। मनभायक नरनायक नाहीं ॥

इति सभाप्रवेश।

अथ मद्यमांस अभक्ष्यवर्णन—चौपाई।

मद्य मांस भक्षमलिनबखानी। ताहि न ग्रहन करे नर ज्ञानी ॥
निज निज हृदय विचारो येहा। मल अरु मूत्र कि जेती देहा ॥

सकल अभक्ष घिनावन सोई । चहूँ खानि जलमलते होई ॥
शुद्ध अशुद्ध ताहि पहिचानी । जलकृत शुद्ध अशुद्ध मलानी ॥
मलकृत जो जिव जंतु उपाये । हो अज्ञान ताहिके खाये ॥
जलकृत जो फल अन्न अंकूरा । ताते भूखको दुःख कर दूरा ॥
नर पशु जीब जंतु खग नाना । सबको दुःख सुख एक समाना ॥
नरपशु खग जो मासके भक्षक । सो नहिं कबहु जीवके रक्षक ॥
जिनके हृदये दाया नाहीं । सोई अधोगति मांह समाहीं ॥
मांसु अहारीके कस दाया । एकखाय बहु मारि गिराया ॥
जो कोई काहूको दुःख देहै । बदला तासु आप शिर लेहै ॥
सुरापान अरु मांसु अहारी । नरकधाम सो अवश्य सिधारी ॥

सत्यकबीर वचन ।

साखी–कबीर–मासुअहारीमानुवा, परतख राक्षस जान ।
ताकीसंगत मतिकरो, होयभक्तिमें हान ॥
कबीर–काजी को बेटा मुवा, उरमें सालै पीर ।
वह साहिब सबको पिता, भला न मानै वीर ॥
कबीर काटा कूटी जे, करे यह पखण्डको भेस ।
निश्चयराम न जानही, कहै कबीर संदेस ॥
कबीर–कहताहूँ कहि जातहो, कहा जो मान हमार ।
जिसकागलातुकाटिसो, फिर गलाकाटतुमार ॥

चौपाई ।

मुसलमान आदिक ईसाई । कबहु मदामि अशुचि बताई ॥
ईसाइनमें एक जमाती । अमली नहिं बैठे तिन पाती ॥

अथ टेम्पेरिस सुसैटीको वर्णन–चौपाई ।

टीटो टलर सुसैटी नाऊ । टेम्पेरिस बहुरी बतलाऊ ॥
दोऊ नाम अँगरेजी भाषा । अमल त्यागियोंकी यह साषा ॥

जगमें जेते अमलको नामा। तिनके लेखे सकल हरामा॥
तिहि मंडली मिलै जो कोई। यह सौगंध करावै सोई॥
आजते कौल करार हमारा। कोई अमल मुखमें नहिं डारा॥
आप न खाय न औरहि देही। नहिं बेचै न बेचावै येही॥
कबहुँ न करे तासु व्यौहारा। अमल निकट नहिं निजु पग धारा॥
जो कोइ ऐसो नियम गहावै। कागज परवाना लिखपावै॥
सो परवाना निजू ढिग राखे। मूलिकबहुँ कछु अमल न चाखे॥
जिनके मते ग्रंथ बहुतेरा। विषहू ते विष अमल बडेरा॥
सबहीं अमलकि निंदा करही। टींटो टलर धर्म आचरही॥
जो कोइ क्रियामें होय न पक्का। तेहि जमातिसे पावै धक्का॥
यूरुप नर केते यहि माहि। टींटो टलरको धर्म धराही॥
मुसलमान साधू बहुतेरे। मांसअहार कबहु ना हेरे॥
धम अहिंसा सम नहिं आना। वेदविदित सब संतन जाना॥

नानकशाह वचन।

क्या बकरी क्या भेड है क्या आपन जाया।
रक्तमासुसब एक है तुके किन फरमाया॥
नानक घट परचैभई सबही घट पीरा॥
सकलजक्तके आतमा महबूब कबीरा॥

इति मद्यमांस अमल सर्वथा अभक्ष।

अथ विचार जीवहितकार वर्णन।

कवित्त--बोलत बिचार कर डोलत बिचार कर मुक्तिद्वार पालन बिचार सरदार है। बैठत बिचार कर उठत बिचार कर हाट बाट घाटहू बिचार घरबार है॥ योगहू समाधि माँह ज्ञानहू अगाध माँह साधक अरु सिद्धको बिचार सब सार है। रनबन घन यज्ञदान सुमिरन महँ जहँ तहँ देखिये बिचार जिव तार है॥

सोरठा--जीवधर्महै यह, बारहि बार बिचार कर ।
मैं कह कह मम देह, केहि कारन फंदेपरा ॥

चौपाई ।

करत बिचार होय उजियारा । तेहि प्रकाशनिज दोषनिहारा॥
जब आपनो दोष लखि लीजै । तासु नाश हित उद्यम कीजै ॥
स्वसंवेद वद भेद अनूपा । प्रथमै जिवको सत्य स्वरूपा॥
सो सब प्रथमहि कह बखानी । जाते जीव भ्रमै चहुँ खानि ॥
अपने फन्दमें आप फँसाई । आपै आप रहा भरमाई ॥

सत्यकबीर वचन--शब्द ।

अपनको आपही विसरो ।
जैसे श्वान काँचि मंदिर में भर्मत भूसि मरो ॥
ज्यौं केहरि वपु निरखिकूप जल प्रतिमा देखि परो ।
ऐसेही गज लखि स्फटिकशिलामें दरसन हीतेअरो॥
मरकट मूठी स्वाद न छोड़े घर घर रटत फिरो ।
कहै कबीर नलनिके सुगना कौने तोहि पकरो ॥

दोहा--मनकी वृत्ती पंच है, प्रथम कहे परमान ।
बीपरजयो विकल्पकह, निद्रास्मृति मान ॥

चौपाई ।

मनकी वृती पंच उचारा । मनहीकोहै सकल पसारा ॥
सुन स्वरूप भर्म यह मन है । तेहि कारन सब योग जतनहै॥
मन बिनसात जक्त बिनसाना । अंडपिंड दोउ शून्य समाना ॥
जड़ शरीर चतन चित संगा । कर्म फन्द जिवज्ञान विभंगा ॥
जड़चेतन जन होय मिलौनि । दुःखसुख भोगे सुर नर मौनी ॥
द्वंदते परा जीव को धोखा । कौन भांतिसे पावै मोखा ॥
जिव निरद्वंद दोहू ते न्यारा । सत्य स्वरूपी अगम अपारा ॥

पांच तत्त्वको जानन वारा । सदा सो इन पांचोंते न्यारा ॥
मन इन्द्री तिरगुनते पारा । आप भूलि गल फन्दा डारा ॥

सोरठा–फन्दपरा जब जीव, अपनो रूपबिसारके ।
ढूंढन लागा पीव, विविधि प्रकारकी यतनकरि ॥

चौपाई ।

जिमि कपिकण्ठलगी जंजीरा । बँधा रहै बांसके तीरा ॥
कबहुंके बांस ऊपर चढ़ि आवै । कबहुंके हेठ उतरि सो आवै ॥
उतरा चढ़ी न छूटै ताको । दृढ़ जंजीर परी गल वाको ॥
तिमि जिव क्रमहीक्रम लहदेही । बिनसतगुरु पद पाव न येही ॥
जब जंजीर गलेकी छूटै । तब जिवरूप आपनो जूटै ॥
वपु विज्ञान शिखरकी चोटी । देही थूल मूल महिं मोटी ॥
मूलते जब चोटी चढ़ि जावै । निज प्रतिबिंबपै ध्यान लगावै ॥
ऊपर हेठ लख मोर स्वरूपा । झांई भेद न जाने गूपा ॥
यही देहु विज्ञान कहावै । झांई निरखि अपनको गावै ॥
जैसे तप्त तीख अंगारा । पर ताहीपर क्रमक्रम छारा ॥
ज्ञान अग्नि जब अन्त बुझाई । थूल शरीर बहुरि जिव पाई ॥
पुनि करि यत्न अग्नि उदगारा । तब विज्ञान देह सो धारा ॥
होय जाय इमि कालहि पाई । आवागौन सूत्र नहिं जाई ॥
जब कपि कंठकड़ी गुरु छोरे । तब भ्रम धोखा होय न भोरे ॥
बन्धनसो विज्ञान कि देही । आवागौन न छूटै जेही ॥
इहां लगि वेद पुरान बखाना । आगे मरम न कोई जाना ॥
दशों दिशा दश सूरज होई । तब छाया नहिं दरसै कोई ॥
छाया माया होय विनाशा । जीवहि निजुस्वरूप तब भासा ॥
दशों दिशा जब रवि खरधारा । प्रलय होय तबही संसारा ॥
जहँ संसार तहां नहिं ज्ञाना । जहां ज्ञान तहँ जक्त नसाना ॥

जबलों पारख पद नहिं पावै। तबलों आवागौन समावै ॥
ताते मनहिं विचार करीजै। कच्ची तत्त्वदेह किमि छीजै ॥
पक्की तत्त्व बहुरि जिहि पैये। कह संग्रह कह त्याग करैये ॥
पांचो तत्त्व पचीस प्रकृत्ती। भर्म रूप सबही ये बत्ती ॥
जाग्रित स्वप्न सुषुप्ति तुरिया। सो सब भर्म भावकी पुरिया ॥
जैसे जीव त्याग निज भूमी। चार खानिमें रहा सो झूमी ॥
ब्रह्मजीव जग दीसो माया। इत्यादिक बहु नाम धराया ॥
तैसे स्वसंवेद की बानी। धारि बहुरूप जक्त विहरानी ॥

इति।

अथ तत्त्वमासि तीनोंपद मिथ्यावर्णन–चौपाई।

ज्ञान ज्ञान द्वैभेद बखाना। स्वसंवेद अस करे प्रमाना ॥
मलसंयुक्त ज्ञानको वरना। सर्वजीवमें सो संचरना ॥
ज्ञान अमल विकार कहावै। ज्ञानहि मात्र जीव बतलावै ॥
मेघ झंप जिमि भानु लोपाई। मुख न दीख दरपन लगिकाई॥
तैसे ज्ञान भर्मकी ओटा। सत्य न भासै भासै खोटा ॥
पौन प्रसंग पटल घन चूरी। स्वतह भानु बहुडिस रह पूरी ॥
भानुउदय नहिं दरसै तारा। ज्ञानउदय नहिं यह संसारा ॥
अमल अखंड उदय दिनकरके। रहे न भर्मत तच्छन सरके ॥
ज्ञानति माया झंपन जबहीं। ज्ञान नाम कहिये सो तबहीं ॥
ज्ञानहिं मात्र जीवको कहई। विना ज्ञान सब मृतक अहई ॥
जक्त मांह जेते वैपारी। जीव जमावैं पार पसारी ॥
बिना जमावै पार न होई। खर्च कहांते करिहै कोई ॥

सत्यकवीर वचन।

साखी–कहै कबीर विचार, यह निर्णय परमान।
जीव जमा जाने बिना, सबै खरचमें जान ॥

चौपाई।

जो दीसै सबही बिनसाई। जो बिनसै सो जिव न कहाई॥
जीव सोइ जो है तिहुकाला। जड़ चेतन ते सदा निराला॥
आप मानि बंधनमें आया। भ्रमकरि तत्त्वमसी ठहराया॥
तत्त्वमसी तिहुँपद है जोई। आवागौन मूल है सोई॥
ततपद ईश्वर त्वं जिवरासी। असि पद कहै ब्रह्म अविनासी॥
ततपद ज्ञान है त्वं अज्ञाना। असि पद वेद ब्रह्म अज्ञाना॥
वस ब्रह्मांड ब्रह्मसो ईसा। जिव अभिमानी पिंडमें दीसा॥
असि पद जो दोनोंमें सनई। यमअनंद कछु कहत न बनई॥
ज्ञानी अज्ञानी विज्ञानी। ततसागर त्वं सर असि पानी॥
नामरूप मिथ्या है दोई। आत्मा एक जल सबमें सोई॥
मानन्दी यह तीन प्रकारा। मानि मानि निज बन्धन डारा॥
यही तीन हैं जिवको फांसा। षटदेहीमें कीनो बासा॥
दोविधि ज्ञान द्वैविधि भज्ञाना। दोय भांति विज्ञान बखाना॥
यक बिशेष अपरोक्ष बतावो। दुतियोको परोक्ष कहि गावो॥
निर उपाधि अपरोक्ष बखाना। सहित उपाधि परोक्ष प्रमाना॥

इति।

अथ त्वंपद द्वैभांतिको अज्ञानवर्णन—चौपाई।

जो विशेष अपरोक्ष कहावै। विषयी जीवनके मन भावै॥
विषय आसक्त जीव जब रहई। जाति पांति कुलकानि न गहई॥
भोग मदामिष परतिय संगा। विषयिन सङ्ग अनंग तरंगा॥
वेद शास्त्र मानै नहिं कोई। गति अपरोक्ष कहावे सोई॥
सो अपरोक्ष दोय विधि वरना। परइच्छा निज इच्छा चरना॥
परइच्छा जो हो अज्ञाना। सो समान अधिकरण बखाना॥
निज इच्छा अज्ञान गहीजै। सो विशेष अधिकरण कहीजै॥

गुरुजनकी कछु कानि न माने। वेद शास्त्रकी निन्दा ठाने ॥
गुरु सतगुरुको आदर नाहीं। ईश्वर देव कौन कह आहीं ॥
वामपंथ इच्छा आचरई। बाद अन्यथा सबसे करई ॥
जो कोइ ताको ज्ञान सुनावै। ताते उठिके झगरन धावै ॥
रस शृङ्गार गीत भल गावै। विषय सराह स्वाद मन लावै॥
निंदै ज्ञान भक्ति सतसंगा। सदाकाल विषयन रतिरंगा ॥
मृगनैनी तजि भे बैरागी। इन समान नहिं कोउ दुर्भागी॥
साधु संग करि नर बौराना। ताते विषय स्वाद नहिं जाना॥
कर्महीन दारिद्री येहा। हम ज्ञानी सब गुनको गेहा ॥
जो कछु है सो है यह देही। इन्द्री भोग देह भल येही ॥
मुये पिछार मुक्ति सब पाई। और सबहि जग भ्रम उपजाई॥
जैसे वृक्षते पत्ता टुटता। फेर न सो तरुवरमें जुटता ॥
जैसे मुये मुक्त सब होई। और मुक्ति कतहूँ नहिं कोई ॥
यह बिसे अपरोक्ष अज्ञाना। विषयी जीवनके मनमाना ॥
अब दुतियेको वरनन कीजै। तेहि परोक्ष अज्ञान कहीजै ॥
सो परोक्ष अज्ञान है जोई। समान अधिकरन कहावै सोई॥
जो समान अधिकरन कहावै। कर ताको दूजा बतलावै ॥
यंत्र मंत्र अरु देवी देवा। विविधिप्रकार करे सो सेवा ॥
तीरथ व्रत अस मूरत पूजा। कर्म करहि ईश्वर लखि दूजा ॥
वेदकि बिधि सबकरे अचारा। क्रम उपाह्लाको व्यौहारा ॥
कर्मोंमाह दोय विधि जाना। यक विशेष कह एक समाना॥
सुन धन धान्यलाभ जग हेता। पूजा सेवामें चित देता ॥
निज मनोर्थहित जो मन लावै। सो विशेष अधिकरण कहावै॥
कर्ता हेत कर्म जो करिये। मुक्तिवासना चितमें धरिये ॥
शम दमादि अरु योग समाधू। तन मन बहुविधि साधे साधू॥

यही कर्म भक्तन मन भावै। कोइ बड़भागी तेहि मन लावै॥
नाम समान तासुको धरते। मुक्तिवासना जिवमें बरते॥
दोय प्रकार कहे अज्ञाना। अकरम करम करै विधिनाना॥
अकरम सकल अकरमी केरा। करमिष्टी कर कर्म घनेरा॥
परइच्छा निज इच्छा होई। समान विशेष कहावै सोई॥
याहीको त्वंपद कर जानी। तामें बँधे सकल अज्ञानी॥
द्वै प्रकार अज्ञान उचारी। तामें फँसे सकल संसारी॥

इति त्वंपद अज्ञान।

अथ ततपद द्वैविधिको ज्ञानवर्णन—चौपाई।

ततपद द्वै विधि कह सविवेका। एक विशेष समान है एका॥
सहित उपाधि विशेष बखाना। निरउपाधि है मुक्तसमाना॥
ज्ञान विशेष ते ईश बखानी। ज्ञान समान कहावै ज्ञानी॥
निज जनकी उपाधि सब जाना। पर उपाधि सबही पहिचाना॥
तीन अवस्था दुःख सुखसारा। इन्द्री अरु इन्द्रिन व्योहारा॥
सब मिथ्या मृगजलवत जाना। सब असत्य में सत्य सुजाना॥
तीन देह माया भ्रम माना। बारम्बार फुरै अज्ञाना॥
सोई ज्ञान परोक्ष प्रमाना। ताहूमें द्वै भेद बखाना॥
सर्व समर्थ गहे सब सत्ता। ऋद्धि सिद्धि युत जगमें वर्त्ता॥
जो षटगुन ईश्वर जग होई। सोई सिद्धि ईश कह सोई॥
होनी अनहोनी करि डारा। अब समान करिये निरधारा॥
निरउपाधि कहियतहै ताही। ऋद्धि सिद्धिकछु मानतनाहीं॥
सकलउपाधि नास्ति करिभाषी। मैं आस्तीक सर्वको साखी॥
त्रिगुणातीत मोर व्यौहारा। विधिहरिहर नहि पावत पारा॥
ऐसो ज्ञान जाहिके तीरा। सोई ज्ञानी ज्ञान गंभीरा॥
यह परोक्ष द्वैविधि चितधारिये। अब अपरोक्षकि निर्णय करिये॥

तीन काल कोई नहिं भासा । त्रिपुटी सकलको होय बिनासा॥
ज्ञानाज्ञान गेय नहिं कोई । ध्याता ध्यान ध्येय ना होई ॥
आपन भाव रहै तिहुँ काला । द्वैत उपाधि नास्ति जंजाला ॥
यही ज्ञान अपरोक्ष कहावा । सो ज्ञानी शिवरूप बतावा ॥
योग समाधिसे जो मन मारे । मध्यम पक्ष सो वेद उचारे ॥
तामें कसर वेद निर्धारा । परो अविद्याको अंधियारा ॥

इति ततपद ।

अथ असिपद विज्ञान द्वैविधि वर्णन चौपाई ।

जानि बूझि जड़ वृती जो धारा । जस उनमत्त महा मतवारा ॥
यहिविधि सहजदसा जबगहई । एक अनेकन भ्रम कछु रहई ॥
महदानन्द मगन मन होई । याहूमें प्रकार है दोई ॥
जहँ विज्ञान दशा रह आई । सो विज्ञान हंस कहलाई ॥
कहवे मात्र बानीको ज्ञाना । सो मिथ्या विज्ञान बखाना ॥
दुतिये सो विज्ञान कहाई । जहां तहां आपै रह छाई ॥
द्वैतभाग कहूं नहिं रहई । कारन कारज आपै रहई ॥
आपै बोले आप बोलावै । आपै डोलो आप डोलावै ॥
करे करावै आपै आपू । द्वैतभाव कतहूं नहिं थापू ॥

इति ।

अथ स्वसंवेदमते चतुर्थपारखमदवर्णन—चौपाई ।

यहि विधि तीन भूमिका भाषी । चौथि भूमि पारखपद राखी ॥
तीन भूमिका है भ्रम भासा । चौथे परख काठे जिव फांसा ॥
तत्त्वमसीको ज्ञान जो गहता । तावमसीसे न्यारा रहता ॥
जैसे गूँगेने गुड़ खाया । बाक बिना कह स्वाद बताया॥
तत्त्वमसीको ज्ञान जो धारी । जानि बूझि सो भयौ सुखारी ॥
गूंगा गुड़को स्वाद जो गहई । सो तो गुड़से न्यारा रहई ॥

स्वादी स्वादसे भिन्न सदाई । क्या गूँगा गुड़ही ह्वै जाई ॥
नयन समस्त जक्तको देखे । अपनो रूप न सो पै पेखे ॥
मुखको भास परे दरपनमें । पै मुख नहीं बिचारो मनमें ॥
तत्त्वमसीगह ज्ञान जो कोई । अपनो भास आपना होई ॥
झाँई निरखी भूलि सो जाई । ताहीको आपा बतलाई ॥
जाते आवा गौनमें रहई । पारख बिना न सो पद लहई ॥
सब ऊपर गुरु पारख पद है । यहै जीवके ज्ञानको हद है ॥
षट प्रकारकी भूमि कहावै । पारख गुरू सकल परखावै ॥
छिप्रा प्रथम गतागत दोई । तृतिये सो लेष्टा कह सोई ॥
चौथी भूमि शूलनी गाई । पंचम भूमि आप्र भौराई ॥
छठई सत्य भूमि कहि दीजै । सप्तम पारख भूमि भनीजै ॥
पारख पर कोई पद नहिं जाना । ताकी कृपाते भय भ्रम भाना ॥
पारख बिना जीव यह भूला । ताते सहै त्रिविध तन शूला ॥

सत्यकबीर वचन--शब्द ।

यह जग पारख बिना भुलाना ।
निर्गुण सर्गुण द्वै कर थापै अजपा धरि धरि ध्याना ॥
द्वैतहि ब्रह्म सकल घट व्यापै निर्गुणमें लपटाना ।
आवै जाय उपै फिर बिनशै जरि मरि कहा समाना ॥
सहस पाखुरी कमल विराजै मन मधुकर लपटाना ।
जलके सूखे कमल कुमिलाना तब कहु कहा ठेकाना ॥
छवो चक्र व्रत चार चतुर्दश वेद मते अरुझाना ।
बंकनालकी डोरी खैंचे योगिन युक्ति बखाना ॥
घटमें करता लोग बोलत है पांचों तत्त्व बीलाना ।
सर्गुन विनशी निर्गुन गुन रहि तमगुन बिन कहाँ समाना ॥

करहु विचार सकल मिलि ऐसो भेष बिबिधिबिधि बाना ।
कहैं कबीर कोइ गुरुगम पावै पहुँचे ठौर ठिकाना ॥

इति पारखभूमि ।

सोरठा--ज्ञानको मूल बिचार, बिन विचारको ज्ञान गह ।
हृदय घोर अँधियार, सार असार न परखकर ॥
ताते बारहि बार, मनमें भूले विचारकर ।
कोहं को संसार, कौनि भांति कहते भया ॥
करता कारण कौन, यह समूह जो दृश्य है ।
परखी लीजिये तौन, निज विचार द्वारे सकल॥
देह सदा जडरूप, चित्त फुरित चतन्य है ।
कर्मक्रिया भ्रमकूप, जड़ चैतनते मैं अलग ॥

चौपाई ।

अस विचार आवै हिय जनही । तब गह सार भर्म भय भनही॥
जहँ लगि जगमें कथा कहानी । सकल जीवकी बात बखानी ॥
सर्वज्ञौ अलपज्ञ समाजा । जीवहि रंक जीव ही राजा ॥
जीवहि गिरही जीव भिखारी । जीवहि पुरुष जीवही नारी ॥
जीव ब्रह्म माया जगदीशा । जीवहि सूर लग्न रजनीशा ॥
जीवहि कूर सुगम सुरबाना । जीवहि जल थलमें बिहराना॥
जीवहि काल युवा अरु बूढ़ा । जीवहि ज्ञानी जीवहि मूढ़ा ॥
जीव समष्टि व्यष्टि कहलावै । जीवहि पोषै सोष उपावै ॥
जीवते इतर कतहुँ कछु नाहीं । उर्ध मध्य अध जीवहि आहीं॥
जीवको सबही खेल विहारी । ताकी दशा अवस्था न्यारी ॥
ब्रह्म कहूँ बिन जीव न होई ।जीव बिना जिव जिये न कोई॥
जौंपै ब्रह्म जीव बिन होता । कैसे जीव बीज सो बोता ॥
जीवकर्म निर्जीव न करई । जीव बिना जिवकाज न सरई॥

जीवभूमिका पर सब ठाढ़े। कहूँ तुच्छ कहुं गुणगण बाढ़े॥
कर्म किये सर्वज्ञ हो सोई। जैसे मूरख पंडित होई॥
सम्पति विपतिमें जिव एक सारा। भिन्न भिन्न पदवी सो धारा॥

दोहा—अलपज्ञता जो जीवकी, सर्वज्ञता जो ईश।
दूर दोहूको कीजिये, जीवहि बिश्वा बीश॥

चौपाई।

चारों खानि जीव यक रासी। सबको लगी कर्मकी फांसी॥
नरतन यही ज्ञान अधिकारी। ताते जीव भ्रम तिमिर बिड़ारी॥
कञ्चनको भूषण बहु करहीं। न्यारो न्यारो नाम सो धरहीं॥
भूषणदशा स्वर्ण जब लहिये। तब क्या कंचन नाम न कहिये॥
धातु रूपहू कहिये कंचन। भूषणहू पुनि सोइ बिरंचन॥
कंचन आहि सत्य यक ताते। जो कछु चाहे रचिये बातें॥
ऐसे जीव धातुसे सब हैं। माया ब्रह्मादिक बहु ढब हैं॥
सांचो जीव जमा यक अहई। और खर्च बहु बानी कहई॥
सूक्षम थूल जीवकी करनी। अज्ञ तज्ञ कछु भिन्न न बरनी॥
पारख गुरु कोइ ढूँढ़न जावै। जीवते इतर ताहि नहिं पावै॥
पारख सदा जीवके पाहीं। प्रकट होत भ्रम तम बिनसाहीं॥
भल विचार करिहै जे प्रानी। सारासार सोई पहिचानी॥
जेते हंस पारख पदधारा। पारख पाय न पुनि संसारा॥
अलख कि गति कहूँ लखी न जाई। पारख कृपाते सो दरसाई॥

सत्यकबीर वचन—शब्द।

साधो सतगुरु अलख लखाया, जाते आप आप दरसाया।
बीज मध्य ज्यौं तरुवर दरसै, वृक्ष मध्य ज्यौं छाया।
आतममें परमातम दरसे, परमातममें माया॥

ज्यौं नाभीमें शून्य देखिये, शून्य अण्ड आकारा ।
निहअक्षरसे अक्षर ऐसा, क्षर अक्षर बिस्तारा ॥
ज्यौंरविमध्ये किरन देखिये,किरिनि ज्योतिपरकाशा ।
पारब्रह्मसे जीव ब्रह्म है, जीवब्रह्मसे श्वासा ॥
श्वासामध्ये शब्द देखिये, शब्द अर्थके माहीं ।
पारब्रह्मसे जीव ब्रह्म है, न्यारा है वह साईं ॥
आपै बीज वृक्ष अंकूरी, आप पुहप फल छाया ।
सूर्य किरन परकाश आप है, आप ब्रह्म जिवमाया ॥
आतममें परमातम दरसै, परमातममें झांई ।
झांईमें यक झांई दरसै, लखो कबीरा सांई ॥
छन्द—यह ज्ञान अगम अगाध कोई साधके मन भाय है ।
सो परख पारख परम गुरुकह परख पद परखाय है ॥
परखाय है सो परखपद जब दयानिधि हर्षाय है ।
सत्यनामके परताप पर्बल ताप त्रिविध नसाय है ॥

इति ।

अथ पंच कोष मिथ्यावर्णन—चौपाई ।

आप भूलि निजु फांसा लीना । पंचकोषमें बासा लीना ॥
पंचकोष यहि विधि पहिचानी । प्रथम अन्नमय कोष बखानी ॥
दुतिय प्राणमय कोष प्रमानो । तृतिय मनोमय कोषको जानो ॥
पुनि विज्ञान मई कोष अहई । फिर अनंदमय पंचम कहई ॥
प्रथम अन्नमय कोष बखानो । अन्न भोगते ताथित मानो ॥
पंचतत्त्व परकृत्त पचीसा । तीनो गुन करि जिवतन दीसा ॥
जैसे घटको भाजन ठाटी । उपादान कारन है माटी ॥
तासु निमित्त कारन कोम्हारा । समवाय कारन चक्र बिचारा ॥

तिमि तम उपादान कारनतन । राजसतामसनिमित्तको कारन॥
सातकसो समवाय बखानी । तीनों गुन करि देह उपानी ॥
सो तन कहे अन्नमय कोषा । बंधन ताहि चार है चोखा ॥
बसियौ रसियौ ग्रसियौ कसियौ। ये चारों बंधन तन लसियौ ॥
प्रथमैं बसियो कहो बखानी । देहोहं यह तन मम मानी ॥
देहको सो आपा करि जानी । बंधन माह परा अज्ञानी ॥
दुतियौ रसियौ भेद उचारी । जेहि वर्णाश्रम जिव तनधारी ॥
सोइ वर्णाश्रम कर्म जो करिये । तेहिते रसियौ बंधन परिये ॥
तृतिये ग्रसियौ कहिये ताही । निजु वर्णाश्रम जीव सराही ॥
तुच्छ इतर वर्णाश्रम देखे । बंधन ग्रसियौ गहे विशेषे ॥
चौथेकसियौकरेअकरेअकाजा । कुलकी लाज लोककी लाजा ॥
वेद अरु देव लाजामें फंसा । ताते परा जीवको संसा ॥
इन चारों बंधनको काटो । तब जिवकी भ्रम संशय फाटो॥
कुल अरु लोक वेद सुर लाजा । अस जब भाषे कुटुम समाजा ॥
हमरे कुलको यहि पथ डगरा । कुलकरनी तजि तू जस बिगरा॥
तब जिव दुरि कुलधर्म सभारी । भिन्नपंथ नाहिं सो पगधारी ।
जो कोई यह लज्जा काटे । लोकलाज पुनि ताको डाटे ॥
लोग जो ऐसी बचन सुनायौ । बिगर्‍यौ श्रेष्ठ पुरुषको जायौ ॥
लोकलाज तब जिव नहिं छोड़े । अपने कर्म ते सो मुख मोड़े ॥
लोक लाज जौं तोरके जाई । वेद लाज तेहि लेत फँसाई ॥
वेद लाज सो बंधन अहई । जब संसारी अस मिलि कहई ॥
काहू वेद शास्त्र परमाना । जो तू कर्म करे मनमाना ॥
वेदहु लाज लंघि जब जावै । देव लाज पुनि तोहि दबावै ॥
देव लाज कह कौन उलंघा । करे देव करनीसें भंगा ॥
इंद्री द्वारे देवन थाना । विषय भोग तिनके तन माना॥

आवत देख जो विषयबयारी। इंद्री पटल सो देहि उघारी ॥
विषयानन्द जीव जब होई। तब शुभ करनी करे न कोई ॥
जब चहुलाज लंघि जिव जावै। बड़भागी कोइ प्रभु पद पावै ॥
अन्नमय यह कोष बखाना। जामें जक्त जीव गल ताना ॥
प्राणमयी कोष याके आगे। विविधिप्रकार पौन संग लागे॥
प्राण अपान समान उदाना। व्यानो नाग कूर्म कहि गाना ॥
किर्कल देवोदत्त धनंजय। ये सब पौन हैं कोष प्राणमय॥
जेहि औसर जिव ऐसो कहई। प्राण हमारो तीक्षन बहई ॥
प्राण पौनको स्वतह सुभाऊ। आपासो आरोप कराऊ ॥
गुदा अपान प्रवेश कराया। पवन सुभावन जीव सुभाया॥
हृदय समान उदान सिरोई। व्यान अन्नपाचक है सोई ॥
नाग डकार कूर्म दृग खोले। किर्कल छींक स्वतह सो बोले॥
देवदत्त जमुहाई पूजै। मृतक शरीर धनंजय सूजै ॥
इतने इतर पौन बहुवादी। अंगफर्कन अफरन हिचक्यादी॥
पौन कर्म सब मानै आपा। कोष प्रानमय बंधन थापा ॥
कोष मनोमय तासु अवांतर। पुनि हंकार कहे ताते पर ॥
शुभ अरु अशुभ कर्म जो कछुकर। पुन्य पाप व्यौहारादिक नर ॥
सो सब मन इंद्रिनके करतब। कोषविज्ञाय मयीकहिये अब ॥
पंच ज्ञान इंद्री छठये बुधि। तासुअवांतरचित्त महित सुधि॥
परमारथ सब उत्तम करनी। सो सुभाव सब इनको बरनी ॥
जिवसो कर्म आपनो धरई। कोष विज्ञानमय बंधन करई ॥
पुनि अनंदमय कोष पर तेही। बुद्धिको ऐसो ज्ञान भयो जेही॥
तौमें करि जिव करे बखाना। आपको बड़ अनंद हम जाना॥
सो अनंद बंधन जिव केरा। कोष अनंदमयी यह टेरा ॥
पांचो कोष अवस्था पांचो। जागृतरूप अनन्तमय बांचो ॥

प्राण मनो विज्ञान जो तीनी। स्वप्न स्वरूप तिन्है कहि दीनी॥
पुनि अनंदमय कोष जो आही। रूप सुषुती कहिये ताही॥
जागृत रजगुन रूप कहीजे। सतगुन रूप स्वप्न कहिदीजै॥
तमगुन रूप सुषुप्ति कहावै। देहमंत्री गुन सुभाव बतावै॥
पुण्यदया वांछा रजगुनकह। पुन्य पिछार विषाद तमो यह॥
वांछा रहित सतोगुन जानी। त्रिगुन कर्म नाना विधि मानी॥
जिव अज्ञानते आपको कहई। पुण्यपाप सब मेरो अहई॥
ज्ञानी गुनन सुभाव सो जाने। अज्ञानी अपनो करि माने॥
यहि बिधि जेते तनके कर्मा। सो सब मन इंद्रिनके धर्मा॥
पांचो तत्त्व त्रिगुनते भयऊ। गुन आज्ञा शक्तिसे कहेऊ॥
चितसे अज्ञान शक्ती होई। मन अरु चित्त भेद नहिं कोई॥
सर्व कर्म जो जगके माहीं। मनहीं केर पसारा आहीं॥
मन माया तिरगुन व्यौहारा। जक्तमाह भ्रम जाल पसारा॥

अथ योग और भोग दोनों मिथ्या वर्णन।

दोहा—षटदल चक्रको भेदके, योगी पौन चढ़ाय।
दल सहस्रके कमलमें, निर्विकल्प ह्वै जाय॥
ह्वै विदेह पद अमर लह, विद्यामें ठहराय।
मे निरद्वन्द्व न कल्पना, आपमें आप समाय॥

चौपाई।

जिमि योगी तिमि भोगी देखे। कमल भेद दोनों यक लेखे॥
द्वन्ददीम्ब दोनोंको खेला। इत नरनारी उत गुर चेला॥
योगी ऊरध पौन चढ़ावै। भोगी अधपानी ले आवै॥
नादके बल योगी अविनाशी। विंदके बल भोगी सुखराशी॥
नारिपुरुष जब भा संयोगा। दोनों मिले भोग सुख भोगा॥
माथेसे जब माथ जुरेऊ। सिखर कमलते बिंद उतरेऊ॥

नेत्रसे नेत्र जुटं जिहि बारा । द्वैदल कमल भेदि चलु पारा॥
मुखसे मुख जेहि औसर चूमा । तबही बिंद अधो दिस घूमा ॥
तब षोडश दल कमल बधाना । द्वादशदलपर पुनि ठहराना ॥
अनहद चक्रते बिंद उतारा । मणिपूरकपर आसन धारा ॥
मणिपूरकते हेटको हेरा । स्वाधिष्ठान चक्र कर डेरा ॥
नारिपुरुष मिलि द्वन्द मचाया। स्वाधिष्ठान उतरि जल आया॥
टिका अधारचक्र जब पानी । सह विकल्प भोगी तब जानी ॥
ज्ञान पुत्र योगी जब पायौ ।अमर भयौ फिर गर्भ न आयौ॥
योगी हृदये जबलों ज्ञाना । तबलों ताको अमर बखाना ॥
ज्ञान लोप होवे जेहि काला । तब योगीको हो जंजाला ॥
ज्ञानदृष्टि करि योगी जाना । मेंहमि जगमें पसराना ॥
अज्ञ पुत्र तिमि योगी जाया । वंशवृद्धि जगमें फैलाया ॥
भोगी अमर भयौ तेहि बारा । तासु वंश जगमाह पसारा ॥
जबलों वंश जक्तमें ताका । भोगा अमर भयौ परिपाका ॥
तासु वंश जब हो संसारा । भोगी मृतक होय तेहि बारा ॥
आपै आप सकल जगमाहीं । अज्ञदृष्टि करि जा तन जाहीं ॥
योगी विद्या द्वारे जाना । भोगी अविद्याते अज्ञाना ॥
योग भोग दोनो हैं झूठे । संत सुजान दोहूते रूठे ॥
योग अरु भोग ब्रह्म जिव माया । नादबिंद जो कछु उपजाया ॥
सो सब भर्म एक नहिं सांचा । साचे सतगुरुको यह वाचा ॥
भर्म नाद अरु भम बिंदू । भमहि तुर्क अरु भर्म हिंदू ॥
भर्म निमाज भर्मही रोजा । भर्महि ते सब ईश्वर खोजा ॥
भर्महि देउल भर्महि देवा । भर्महि पूजा भर्महि सेवा ॥
भर्महि धरती भर्म अकाशा । भर्महिको यह सकल प्रकाशा ॥
भर्मको रचित सकल संसारा । टूटै भर्म होय भव पारा ॥

इति योग और भोग मिथ्या ।

अथ स्वसंवेदमते अष्टांगयोगवर्णन सत्यकबीरवचन अष्टांगयोगकी रमैनी।

अविगति लीला अगम अपारा। धरती धरचौ सत्य औतारा॥
अविगति लीला अगम अलेखा। अबरन बरन रूप नहिरेखा॥
जाकी गति सुर मुनि नहिं पाई। अविगतिकीगतिवरनि नजाई॥
शेष सहस्रमुख निशिदिन गावे। अस्तुति करति पार नहिं पावे॥
वेद जो कोट सहस्र पुन गावै। अविगति गतिबरनी नहिंजावै॥

साखी–अविगतिकी बेगति है, मन बुध चितते दूर।
आपमेटि सतगुरु मिलै, पावै दरस हजूर॥

रमैनी।

योगी बहुत योग जो करई। कृपा योगते नहिं निस्तरई॥
फिर फिर आवै फिर २ जाई। कर्महि कर्म बहुत अरु झाई॥
है निष्कर्म नाम जो ध्यावै। योनी सकट बहुरि न आवै॥
क्रमही क्रम बंधावहु भारा। क्रमही क्रम अटका संसारा॥
देह कर्म जो लीन उठाई। मनको कर्म छुटै नहिं भाई॥
जब लगिमनको कर्म न खोवै। तबलगि मननिर्मल नहिं होवै॥
जब मनकी किरिया मिटि जाई। तब हरि मिलै सहजमें आई॥

साखी–तन क्रियाको छोड़िके, मन किरिया रुचिराख।
कर्म क्रिया अभिमान तजि, सत्यनाम निजु भाष॥

रमैनी।

तनकी करनी देहु बहाई। मनकी करनी सत्य मिलाई॥
मनकी किरिया सत्य जो कोई। ताहि समान और नहिं कोई॥
सांख्य योग करनी है सारा। जेहिते उतरे भव जल पारा॥
सत्य क्रियाते ज्ञानी भैऊ। सत्यक्रिया साहिब मिलगैऊ॥
सत्य क्रिया सतपुरुष हि ध्यावै। सत्यक्रिया सतनाम मिलावै॥

साखी–सत्यक्रिया निर्बान है, तन मन ते सो भिन्न।
मन पौना दृढके गहै, सत्यनाम निजु चिन्ह॥

चौपाई ।

अब मैं सांख्ययोग जो कहऊँ । योग अष्टांगको लक्षण लहऊ ॥
एकएकके चार चार लक्षण । जो जानै सो होय विचक्षन ॥
येतो कहिये लक्षण बत्तीसा । योग अष्टांगमें एकै दीसा ॥
अष्टांग योग सांख्य जो जाने । अरु लक्षण बत्तिस पहिचाने ॥
समौ–तेई भवसागर तरे, याकरनी निजु सार ।
सत्यक्रिया सतसे गहै, सत्यनाम आधार ॥

रमैनी ।

प्रथमै योग ज्ञान है भाई । ताहिते सुखव परमपद पाई ॥
निरालंब आलंब न कोई । सतगुरु इच्छा होय सो होई ॥
कर्म भरम तजि साहेब जाने । भली बुरी कछु चित नहिं आने ॥
निरवासनिक वास नहिं कोई । जंगल वस्ती एक सो होई ॥
है निरवैर रहै ततसारा । बाहर भीतर अलख अपारा ॥
समौ–एकनामको जानिके, दूजा देय बहाय ।
तीरथ व्रत जप तप नहिं, आतम ताव समाय ॥

रमैनी ।

दूजा योग विचारबिचारे । निरमोही है आप बिचारे ॥
है निर्वैर रहै जगमाहीं । जगके सुखमें लागै नाहीं ॥
मातु पिता सुत नारि न भावै । काम क्रोध मद लोभ भुलावै ॥
है निष्कंट शब्दसे लागे । अनहद सुने आतमा जागे ॥
देही छोड़ि विदेह समाना । हंसा पावै पद निर्बाना ॥
समौ--जो कछु करे बिचारके, रह पुन्यपापते न्यार ।
कहै कबीर नामहि जाने, जाय पुरुष दरबार ॥

रमैनी ।

तीजे योग विवेक कहावै । बिन विवेक कोइ पार न पावै ॥

जाको समाधान मन होई। भली बुरी कहि जावै कोई ॥
समदरसी समज्ञान बिचारे। सबघट भीतर ब्रह्म निहारे ॥
प्रीति गहे सो नाम समाना। और सकल जग मिथ्या जाना॥
जाके शांति होइ घट नाहीं। कोइ कछु कहै क्रोध मन नाहीं॥

रमैनी ।

चौथा योग शील कहि दीना। विना शील साहेब नहिं चीन्हा॥
निर्मल सोचं सोचि बिचारे। शुचि रुचि दया धर्म उर धारे॥
मनको संयम करै जो ज्ञानी। पांचों पकरि एक घर आनी॥
सत्य शब्द भाषै संसारा। सत्यहिसे उतरे भवपारा ॥
होय औतारा सत्य बखाने। भावै बुरा भला कोइ माने ॥

समौ–शीलक्षमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि जब होय ॥
विना शील पहुँचे नहीं, लाखो कथै जो कोइ ॥

रमैनी ।

पचवां योग सन्तोष बखानी। बिन संतोष बुड़े अज्ञानी ॥
मानै नहीं रंक औ राजा। है अमान नहिं काहूते काजा॥
नर्क स्वर्ग बांछै नहिं कोई। होय अबंछक साहेब सोई ॥
मन अस्थिर करि प्रेम उपजावै। अनहद शब्द सुने चितलावै॥

समौ–निरमल शब्द प्रकाशकर, रह सुखसेज समाय।
सत्य नाम सन्तोष बिन, सत्यलोक नहिं जाय ॥

रमैनी ।

छठये योग रहै निरवैरा। जाते जगते होय न वैरा॥
सब घट भीतर एक करि जानी। होय सुदृष्टि परम परमानी॥
सुख दाई सबहिनको भावै। जलस्वरूप है अग्नि बुझावै ॥
शीतल है सबही को भावै। समता हो रमताको पावै ॥

समौ–कंचन कांचि है एकसम, दुष्ट मित्र सम एक।
दूजा भाव न जानहीं, एक नामकी टेक ॥

रमैनी ।

सतवां योग सहज है मीता । सहज भावसे यम से जीता ॥
एक विचार प्रेम उपजावै । पांचों इंद्री सहज समावै ॥
निरलोभी ह्वै लोभ भुलावै । भवसागरमें बहुरि न आवै ॥
निस्संशीक होय जो कोई । संशय काल रहै नहिं कोई ॥
ह्वै निर्लेप कतहु नहिं लागे । सत्य शब्द गहि आतम जागे॥
समौ–सब जग झूठा जानिके, सत्य नाम ह्वै सार ।
सहजे सहज प्रकट भया, ततगुरु शब्द सँभार ॥

रमैनी ।

अठयौ योग शून्य है नीका । एकनाम आगे जग लागे फीका॥
शून्नहीते सब जग उपराजा । शून्नहीते शब्द जो बाजा ॥
सहज शून्न जो लावै कोई । अलखको लखै आपही सोई ॥
सहज शून्य जो ध्यान लगावै । भवजल तरत वार नहिं लावै ॥
सुरति शब्द ले सहज समावै । सहज समाधि परमपद पावै ॥
समौ–ज्ञानविचार विवेकते, शील संतोष समाय ।
नाम गहो निर्भय रहो, सत्यलोकसहजे जाय ॥

इति अष्टांग योगकी रमैनी ।

अथ ज्ञानपरीक्षा चार ।

निरालंब । निर्भर्म । निर्वासनिक । निरस्वादी ॥ १ ॥

विचारपरीक्षा चार ।

निरमोही । निरबंध । निःशंक । निर्वान ॥ २ ॥

विवेकपरीक्षा चार ।

सर्वंगी । सावधान । सुचेत । सारग्राही ॥ ३ ॥

शीलपरीक्षा चार ।

शुची । संयमी । श्रोता । वक्ता ॥ ४ ॥

संतोषपरीक्षा चार।

अयाची। अवांछी। अमानी। अस्थिर॥ ५॥

निर्वैरपरीक्षा चार।

सुहृद। समता। शीतल। सुखदाई॥ ६॥

सहजपरीक्षा चार।

निष्प्रपंच। निस्तरंग। निर्द्वंद। निर्लेप॥ ७॥

शून्यपरीक्षा चार।

लौलक्ष। धीरज। ध्यान। समाधि॥ ८॥

समौ–कबीर बतीसो जब उगवै, तैतीसो छपि जाय।
कहै कबीर सुन गोरख, आवागमन नसाय॥

इति अष्टांगयोग स्वसंवेदमते।

अथ सातज्ञानभूमिकावर्णन।

दोहा–सीषता बिचार समानता, सिसरातो सुखपंत।
बहुरि पदार्थ अभावनी, तुरिया ज्ञान गहंत॥

चौपाई।

प्रथम सीषता भूमि जो कहिये। शुभइच्छाते शुभ गति लहिये॥
ज्ञानचाह सच्छास्त्र उचारन। सत्संगत अपकर्म निवारन॥
द्वितीय विचार भूमिका सोई। ढूंढ सुसंग सुविद्या जोई॥
तृतिय समाता है बैरागा। तन मनते विषयनको त्यागा॥
चौथ भूमि सिस्तांत कहावै। गेह नेह तजि अलग रहावै॥
हो निवृत्त सब विषय बिहाई। हरिपद प्रीति न और सोहाई॥
पंचई भूमि सुषुप्ति कहीजै। ईश्वरलीन भर्म भय छीजै॥
छठे पदारथ अभावनी भाषा। प्रभुपद लीन न सुधितन राखा॥
ऐसो ध्यान नाह अनुरागा। बिना जगाये सो नहिं जागा॥
सतई भूमि कहावै तुरिया। जहां पहुंचपुनिचितनहिंफुरिया॥

ऐसो ईश्वरमें लौ लाने। कोऊ जगावै तऊ न जागे ॥

इति ज्ञानभूमिका ।

अथ सात अज्ञानभूमिकावर्णन ।

दोहा-अशुची है जागृतो, महा जागृती गत्त ।
जागृत स्वप्ना स्वप्न, जागृत पुनि स्वप्ना सुषुपत्त ॥

चौपाई ।

प्रथम अशुचि जागृत अज्ञाना । तन सुख चाह सदा अलसाना॥
दुतिये जागृत जाहि बखाना । अहं कुलीन श्रेष्ठ गुनज्ञाना ॥
तृतिये महाजागृत यौं भाषे । दोहू लोक पौरुष हम राखे ॥
ऐसो मैं गुणज्ञान निधाना । मेरे वशमें अहै फलाना ॥
चौथे जागृत स्वप्ना यांचा । जो मैं कहों सुनो सब साचा ॥
पंचम स्वप्ना जागृत भाषा । देखे स्वप्न सुरति सब राखा ॥
छठयें स्वप्न भूमिका कहई । देखे स्वप्न सुरति नहिं रहई ॥
सप्तम भूमि सुषोपति होई । सुधिबुधिरहित जीव जब सोई॥
सातो भूमि ज्ञान उर धारो । पुनि सातो अज्ञान विचारो ॥
यक पौरीपर दूजी पौरी । होय सघनता अगिली ठौरी ॥
प्रभुमें शुभ इच्छा जब होई । सच्छास्त्रन अवलोके सोई ॥
सच्छास्त्रनको रस भल चीखी । ताकी बुद्धि भई तब तीखी ॥
सच्छास्त्रन पढि भयौ जो पक्का । तब तो दुतिय भूमिका तक्का ॥
दुतिय भूमिका आहि विचारा । तब सत्संगतको पग धारा ॥
सत्संगत जब जीव टटोले । तब ग्रन्थनकी ग्रन्थी खोले ॥
जबलों नहिं सत्संगत जूटे । ग्रन्थनकी ग्रन्थी नहिं छूटे ॥
दुतिय भूमिमें जब जिव पागा । तब तृतियेमें हो वैरागा ॥
दृढ बैराग होय जिहि काला । चौथ भूमिकामें पग डाला ॥
जब चौथीमें दृढ· जिव भैऊ । तब पंचम हरिपद गहिलैऊ ॥

जब हरिपद तजि और न भावै । तब छठवीं भूमिकामें जावै ॥
भयौ लीन जब छठवीं भूमी । तब तेहि माह रह्यौ सो रूमी ॥
जबलों लागि प्रीति अति गाढ़े । सतईं भूमिमें भे तब ठाढ़े ॥
सतईं भूमिमें जब जिव होई । तब नहिं तनहिमें नहिं कोई ॥
छूटि गयौ तब देहको नाता । तब नहिं जक्त न जगकी बाता ॥
विद्या और अविद्या दोई । भर्मरूप जानो सब सोई ॥
दोनों ब्रह्मा केर कल्पना । सो ब्रह्मा आवै भ्रम स्वप्ना ॥
ब्रह्मा आप जो भो भ्रमरूपा । ताकी कृत्त सकल भ्रमकूपा ॥

इति ।

अथ जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति मिथ्यावर्णन–चौपाई ।

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर टेरे । जीवनमुक्त न माह वडेरे ॥
सो तिहु भवसागरके कारन । बारबार तिनको वपुधारन ॥
ब्यास वशिष्ठ पराशर बादा । दशरथ जनको ध्रुव प्रहलादा ॥
सो सब जीवनमुक्त कहावै । पुनि पुनि तन धरि जगमें आवै ॥
सत्यकबीर बचन परमाना । ध्रुव प्रहलाद श्रेष्ठ करि जाना ॥
साठि हजार वर्ष ध्रुव भोगकर । प्रहलाद भोग चौकरी बहत्तर ॥
इनते बड़ा भक्त नहिं कोऊ । आवागौन युक्त रह सोऊ ॥
जेते जीवनमुक्त कहावै । पुनि पुनि तनधरि जगमें आवै ॥
प्रलय विदेहमुक्त सब होई । उतपतिमें तनधर सब सोई ॥
आवै जाय सो मुक्त न मानो । दोनों मुक्ति भर्म करि जानो ॥

सत्यकबीर वचन–शब्द ।

भर्मसेवा भर्मपूजा, भर्म जपतप ध्यान ।
भर्मकरिकरि भर्मबंधा, नहीं सच पहिचान ॥
भर्म इंद्री करी निग्रह, भर्म गुफामें वास ।

भर्म तो तहँ लोकहो जहँ, जीवनमुक्तको वास ॥
कहो जी तुम आये कहते, जाहुगे किस ठाँव ।
औरको उपदेश देतहो, आप समुझत नाह ॥
जानबेको कहा कहिये, कहेको पतियाय ।
कहै कबीर अनंतरधुनि उपजै, सहज शून्य समाय ॥

चौपाई ।

लोमस ऋषि आदिक मुनि नाना। जिनको हंस कबीर बखाना ॥
कोटिन उत्पति प्रलय जो होई । कबहुं गर्भ नहिं आवे सोई ॥
मुक्तस्वरूप संत कह तिनको । आवागौनसूत्र नहिं जिनको ॥
सारशब्द सतगुरुको लहेऊ । जन्ममरनको संशय दहेऊ ॥
जक्तमाह जेते हैं कर्मा । सो सब मिथ्या जिवको भर्मा ॥
झूठ सत्य दोउ एकसम आहीं । यहि संसार सार कछु नाहीं ॥
उत्तम करनी जिवको करना । यद्यपि नहीं सार कछु बरना ॥
गर्भते शिशु बाहर हो जबसे । कर्मकरन लागे सो तबसे ॥
कर्मक्रिया सब तबते जागे । हाथपांव शिशु फेकन लागे ॥
हाथपांव मारन ते जाहीं । नफा होय कछु शिशुको नाहीं ॥
शिशुहि भलो कर पगमारनहै । बिन कर पग फेके दुखतन है ॥
हो बाल जब अधिक सयाना । माटी धूल खेल अरु काना ॥
ताहू कर्म नफा नहिं पावै । तऊ खेलमें द्यौस बितावै ॥
कर्म करत पहुंचै तरुणाई । लाभ कर्मते तब कछु पाई ॥
सोऊ लाभ नफा कछु नाहीं । सर्व कर्म मिथ्या है ताहीं ॥
आदि अवस्था यथा निहारी । कर्म करत बीते बयसारी ॥
कर्मकरनकी बानि न होई । तौ निश्चय जिव जाय बिगोई ॥
भलो कर्म करिये तेहि काजा । जाते शुभगतिको सज साजा ॥

वेद कि बिधिते जो कोइ ध्यावै । जीवन्मुक्तकी पदवी पावै ॥
स्वसंवेद विधि कर्म जो करिये । पाय अमरपद बहुरि न मरिये ॥

सत्यकबीर वचन—शब्दहेली ।

हेली तीरथ जाय बलाय । हरदम परबी नहाय ॥
तीरथ कोट अनंत है रे गंग यमुन जहँ दोय ।
मध्य सरस्वती वहत है न्हाये निरमल होय ॥
ब्रह्म नग्रके घाटमें हो आगे शिवको लिंग ।
ताहूँपै दक्षिना दीजियेरे बहे सहसमुख गंग ॥
आगे कलाली कि हाट है रे चोखा फूल चुबंत ।
बिन सतगुरु पावै नहीं कोई साधूजन पीवंत ॥
शीश उतारि धरनि धरेरे ऊपर धरि ले पाय ।
ब्रह्म नग्रके घाट मेरे याबिधि परबी न्हाय ॥
ऋग यजुर साम अथर्वना रे चार वेदको ज्ञान ।
उनकी कहो उहो कौनगति बांधे गांठि परवान ॥
चारवेदको पिता है रे स्वसंवेद संगीत ।
साहिब कबीर जूके मोकदिमे रे अविगति ब्रह्म अतीत ॥

इति जीवनमुक्तमिथ्या ।

अथ वर्णाश्रममिथ्यावर्णन—चौपाई ।

वर्णाश्रम सब मिथ्या जाना । नरकृत सो अज्ञानते माना ॥
पूर्व कर्म बिन यहि तनमाहीं । केते विप्र शूद्र ह्वै जाहीं ॥
केते शूद्र विप्र सो भैऊ । मातु पिता नहिं ब्राह्मण रहेऊ ॥
जो कोई वर्णाश्रमते अटका । निश्चय सो सत्पन्थसे भटका ॥
मल अरु मूत्र कि देही जोई । ताको ब्राह्मण कहे न कोई ॥
ज्ञानद्वार जो ब्राह्मण भैऊ । वर्णाश्रम ताके नहिं रहेऊ ॥

राजा पंडित मिसके दोई। वर्णाश्रम थापे सब सोई ॥
जिते जीव वर्णाश्रम बंधा। उत्तम विद्यासे सो अंधा ॥
उत्तम धर्म गहे नहिं पावै। वर्णाश्रम तिनको अटकावै ॥
लहै कबहुं नाहिं ज्ञान कि घाटी। जिनको वर्णाश्रमकी टाटी ॥
प्रथम जैन मते मैं भाषा। तीन वर्ण कुल करते राखा ॥
भरथने ब्राह्मण वर्ण थपाई। चार वर्णकुल यहि भांति कहाई॥
चक्रवर्तिपद भरथ जो पायौ। दान देनको प्रजा बुलायौ ॥
प्रजा परीक्षाको मनलाया। बीच राहमें जल ढरकाया ॥
जलमय धरती हो जेहि ठाई। जीव असंख्य तहां प्रकटाई ॥
दान लेनको प्रजा जो चाले। दयावंत पथ गह्यो निराले ॥
जहां कीच तहँ पग नहिं देऊ। भरथ भूप तेहि न्यारा कियऊ॥
ब्रह्मचीन्हि जिन दाया पालो। कीच बीचमें सो नहिं चालो ॥
ब्राह्मण तिनको नाम उचारा। सबपर श्रेष्ठ धमसो धारा ॥
अजयपाल कनउजको राजा। रचे ताहिमें यज्ञ समाजा ॥
सातसौ वर्षके ऊपर भऊ। लखब्राह्मण सो नेवति बोलैऊ॥
येतो ब्राह्मण सो नहिं पाये। तब नरेश अस हुक्म लगाये ॥
जो कोइ विप्र चिह्नते आवै। द्विजसम आदर दछिना पावै ॥
वर्ण विवेक न कीने राजा। जो आये तेहि यज्ञ समाजा ॥
भूप सबहि को द्विजकरि माना। विप्रतुल्य दे आदर दाना ॥
केते विप्र बने तेहि बेला। निज गल माह जनेऊमेला ॥
नृप बुलाय सेनपति बंगाला। ताहूकी कहिये अस चाला ॥
कनउजसे द्विज पंच बोलाई। बंगालेमें सो चलिजाई ॥
ब्राह्मण पांच अरु कायथ पांचा। पहुँचे जहां महीपति जांचा ॥
तिन्हैं प्रतिष्ठा दीन सो राजा। बस बंगाले सहित समाजा ॥
तिनको वंश पसारा कीना। भिन्न भिन्न पदवी सो लीना ॥

उत्तम मध्यम तिनमें कीने । जैसो कर्म जासु लखि लीने ॥
ब्राह्मण तिनमें तीन बडेरे । चतुरजी वणुर्जी मुकुरजी टेरे॥
कायथ श्रेष्ठ कहे मुनि तीनी । घोस बोस भीतर कहि दीनी ॥
यहि बिधि जात वरन ठहराई । असल नकल दोनों मिलजाई॥
असल नकल मिल एक जो भैऊ। मान बड़ाई जिव सब गहेऊ ॥
जात वरनमें जिव अरुझाना । बिन श्रमसाधु सो बंधनभाना॥
जिमि नृप जातिवरन बिलगाई । भांति भांतिकी रीति चलाई ॥
तिमि त्रिदेव तिहुँपुरके राजा । कीने जक्तकेर सब काजा ॥
षट्दरशन पाखंड बनाई । श्रुति स्मृतिमें जग अरुझाई ॥
कुल मरजाद थाप सो सारा । बंधनमाह बंधा संसारा ॥
जातिबरनके हदमें जोई । संसारी कहलावै सोई ॥
षट्दरशनके हदके माहीं । जातिबरनको बंधन नाहीं ॥
सो बेहदके चालनहारे । साधु सो मुक्तिके मग पग धारे॥
हद बेहद दोहू जिन त्यागा । गुरुलखि परमधर्ममें लागा ॥
जाति बरन सब मिथ्या होई । ताको साधु न माने कोई ॥
विप्र शूद्र कर्महि ते होई । उत्तम मध्यम कर्महि जोई ॥
गजते अचल मुनीश उपाये । केशपिंगल मुनि उल्लू जाये ॥
पुष्य अगस्त्य अगस्त्यउपाना । कौशिकमुनि कुशसे प्रकटाना॥
कपिसे कपिल मुनीश उपाये । लता शाखगौतम ऋषि जाये॥
दोनासे द्रोनाचार्य बखाना । ऋषि तीतरी तीतरसे माना ॥
रजसे परसराम प्रकटाये । शृंगी ऋषि हरनीके जाये ॥
कैवर्तिनसे व्यास कहाई । विश्वामित्र चंडालिन जाई ॥
ब्रह्मा आप कमलसे होई । सकल सृष्टिको करता जोई ॥
वेश्यासे वशिष्ठ मुनि भैऊ। इत्यादिकमुनि ब्राह्मण कहेऊ॥
नहीं ब्राह्मणी इनकी माता । तऊ जक्तमें द्विज विख्याता ॥

उत्तम मध्यम कर्महि आही । कर्मते उग्र क्षुद्र ह्वै जाही ॥

सत्यकबीर वचन ।

साखी–जबलगि नाता जातिको, तबलगि भक्ति न होय।
नाता तोरे हरि भजै, भक्त कहावै सोय ॥
बड़े गये बड़ आपने, रोम रोम हंकार ।
सतगुरुकी परचै बिना, चारो बरन चमार ॥

रमैनी ।

पहिलो तारो कोरि चमारा । फिर तारो राजन दरबारा ॥

शब्द ।

नाम सुमिरले अमृत बानी । क्या चतुराई ठाने नर प्रानी ॥
पढेरे भरथरी चारो वेदा । बिन सतगुरु नहिं पायौ भेदा॥
गोरख खोजत जन्म सिराने । कायाकी गति उनहुन जाने ॥
पंडौने बहु विप्र हंकारा । तबहुँ न घंटबजा ओहि बारा ॥
जबहि जुरेहै कोटिन ऋषि राजा। तबहुँ न घंट अधरबिच बाजा॥
जबहि श्वपच मंदिर पग धारा । बाजे घण्ट होय झनकारा ॥
कहै कबीर चारो बरन है नीचा। सबसे श्वपच भक्त है ऊँचा ॥

चौपाई ।

वैशंपायन ऋषिके पासा । नृपतियुधिष्ठिर वचन प्रकाशा॥
कृपा करो कहिये ऋषि राया । कहगुनगही ब्राह्मणकहलाया ॥
तब ऋषिराय कहे समुझाई । ब्राह्मणको यह गुण बतलाई ॥
गहे धर्म अरु धर्मके गुनको । कबहुँ अधर्म अकर्म न उनको॥
दुतिये कबहू मांस न खावै । कबहू न कोई जीव सतावै ॥
प्रथमें वस्तु पड़ी कोइ पावै । बिन स्वामी आज्ञा न उठावै ॥
काम क्रोध लोभ मोह मत्सर । कबहुँ न जगविषयनमें चितधर॥
पंचम गहे पंच गुन जबही । तप दम दया सत्य प्रिय सबही॥

सोई ब्राह्मण जब ये गुन गहिये । बिन गुन सदा शूद्र तेहि कहिये ॥
जो चंडालमें ये गुन होही । निश्चय ब्राह्मण जानो सोही ॥
षटउर्मी विकार सब माहीं । गुण करि विप्र शूद्र बिलगाहीं ॥
जो गह परमारथ शुभ करनी । मुक्तसे और चाह नहिं धरनी ॥
शमदम दान आदि शुभ गुनगह। ऋद्धिसिद्धिआदिक गुनगन लह॥
एकै विधि चहुँ बरन बनाया । रुधिर बिन्दुते सबकी काया ॥
सत्संगमें सब एकै जाती । लिखा भागवतमें यहि भांती ॥
नृप शौनक चहुँ बरन बनाये । गुणकरि भिन्न भिन्न बिलगाये॥
केते शूद्र विप्र ह्वै जाहीं । केते विप्र शूद्र गुनग्राही ॥

इति वर्णाश्रम मिथ्या ।

अथ कर्तापुरुष विषै शवजीवनका विचार—चौपाई ।

अलख अगोचर जो प्रभु अहई। तासु कथा कैसे कोइ कहई ॥
हरि हर ब्रह्मा पार न पावै । और जीवकी कौन चलावै ॥
कर्ता पुरुष जक्तको जोई । ताको नाम न जानै कोई ॥
जेते नाम जक्तके माहीं । राय निरञ्जनको सब आहीं ॥
वेद कहे जस अण्ड उगाये । ताते अण्डज ब्रह्मा जाये ॥
नारा जलको नाम बतायन । जलमें गृह कीनो नारायण ॥
के पुनि जलको नाम कहे जो । जलपर शयन करे सो केशो ॥
निर्णय स्वसंवेद पुनि भाषा । अण्डज देव निरञ्जन राखा ॥
बहुरि कहे तो रेतको लेखा । ईश्वर जलपर तरते देखा ॥
पुनि जम्बुर जाहि निरताये । जलपर शब्द यहूह उठाये ॥
गर्ज यहूह समुद्र न ऊपर । वासा ईश्वर करे जलनपर ॥
यह सबही उर ला व्यौहारा । करता भेद है अगम अपारा ॥
अस प्रभु किमि विचारते जानी । ताते सुन सतपुरुषन बानी ॥

सत्यपुरुषनकी बचन जो सुनिये। पुनि पुनि निज हृदयेमें गुनिये॥
करि बिचार गहिये सत सारा। जाते उतरे भवनिधि पारा॥

इति।

अथ धर्मव्योरा वर्णन–चौपाई।

सब धर्मनको व्यौरा वर्णो। जेते धर्म कर्म संचरणो॥
स्वसंवेद है सबकी आदी। ताते सकल मता मरजादी॥
वेद अरु बानी जेते जगमहँ। स्वसंवेद है सकल पितामह॥
ताते चार वेद प्रकटाने। आदि पिताकी खबर न जाने॥
स्वसंवेद ते वेद बनाये। तामें ऋषि मुनि मता मिलाये॥
यज्ञादिकमें हिंसा कर्मा। सो नहिं स्वसंवेदको धर्मा॥
ऋषि मुनिनिजरशब्द जो मेला। ताते खिला और कछु खेला॥

दोहा–पा कहिये त्रैदेवको, भाग कहावै खण्ड।
ताते धर्म जो प्रकट भे, तासु नाम पाखण्ड॥

चौपाई।

षटदरशन सातव पाखण्डा। धम कर्म पृथ्वी नौ खंडा॥
सबही तीन वेदके अंशा। ऋषिमुनिसकल निरंजनवंशा॥
स्वसंवेदते वद भे चारी। ताते चार किताब निकारी॥
स्वसंवेदते गह त्वच ज्ञाना। ताते सर्व शास्त्र बंधाना॥
यजुः साम ऋग्वेद जो तीनी। तौरेत जब्बूर इञ्जील कीनी॥
अथर्बन वेदते रचे कुराना। मता महम्मद सकल बखाना॥
पीर नवी निज मता मिलाई। वेद विरुद्ध कर्म ठहराई॥
यहि विधि भये विरोधी सारे। स्वसंवेद तजि पथगह न्यारे॥
पांच तत्त्व गुण तीन कहाया। शक्ती और निरञ्जन राया॥
इनहीकी पूजा जगमाहीं। परमपुरुष कोइ जानत नाहीं॥
शक्ति निरञ्जन छल बल कीने। परम पुरुषपद परदा दीने॥

भिन्न भिन्न पूजा परकाशा। सकल जीव गल डारे फांसा॥
रजगुण ब्रह्मा है संसारी। कर्मजाल जिन जक्त पसारी॥
तमगुण रूप महादेव केरा। भवसागरमें ताको डेरा॥
सतगुन मारग जो कोउ धरई। भवसागरके पार उतरई॥
द्वन्द खेल सतगुणमें बर्ते। ताहु भिन्नभाव बहु करते॥
प्रथमहि विष्णु संप्रदा चारी। दुतिये सत्यपंथ आचारी॥
वेद कि विधि पूरणता पावै। स्वसंवेद कह तब समुहावै॥
जीवहि अवश्य कर्म सो करनो। सतगुणकी मारग पग धरनो॥
सात प्रकार कहों पुनि धर्मा। भिन्न २ तिनको सुन मर्मा॥
शक्ति निरंजन त्रिगुन है पांचो। वेद विदित शुभ धर्म है सांचो॥
छठा धर्म कहिये शैतानी। जिनको गुरु इबलीस बखानी॥
सप्तम धर्म कबीर कृपाला। जरतजक्त जिव जिन प्रतिपाला॥
प्रथमैं ब्रह्मा रजगुण कहिये। कर्मकांड सब ताते गहिये॥
दुतिये विष्णु उपासना हेता। तृतिये शंभु योग चित चेता॥
चौथे ज्ञान निरञ्जन राया। पंचम शक्ति पसाऱ्यौ माया॥
तीन तीन विधि तिनमें आही। उत्तम मध्यम कनिष्ठ कहाही॥
छठं धर्म इबलीसको जाई। तीन विभाग ताहुमें होई॥
उत्तम कर्म करंता जोई। बुधि विद्या सागर है सोई॥
कोउ गुणगण कोउ धनमद पूरे। कोउ बाह विजयी है शूरे॥
जो मद मान सहित हंकारा। मैं बड़ ओरहि तुच्छ विचारा॥
मोरे योग गुरू कहुँ नाहीं। सो शैतानको पन्थ गहाहीं॥
उत्तम कर्म जो करे करावै। मलिन कर्म लख दूर परावै॥
ऐसे सुकर्म करे जो लोगा। ताते नर्क भोग नहिं भोगा॥
तिनको आवागौन न छूटे। योनी संकट पुनि पुनि जूटे॥
दुतिये आपन उत्तम करनी। और सिखाये सुख कह बरनी॥

तृतिये करे करावै पापू। घोर नर्क ग्रह तिनका थापू ॥
दोहा–विविधि कह इबलीस जन, उत्तम मध्यम नीच।
जस मति तस गति प्रेरिके,ल्यावै तिनको खींच ॥

चौपाई।

कोई रजोगुण कर्म कहीजै। कोई मलीन रजोगुण भीजै ॥
कोई सतोगुण धर्म प्रचारा। कोई मलीन सतोगुण धारा ॥
कोई तमोगुण ऐसे जानो। विविधि भेद तिनमाह प्रमानो ॥
पञ्चधर्म षटधर्म बखाना। इहांलो विषय वासना नाना ॥
यह षट धर्म जक्तमें जागे। सकल नारि नर तिनमें लागे ॥
छवो त्याग सप्तम जब चीन्हा। सत्य पन्थपर तब पग दीन्हा ॥
देव कबीर धर्म नयसागर। तापद गहि बीते सब झागर ॥
विषय विकारकी भै तब हानी। सरिता सकल सिंधु समुहानी॥
निश्चल होहि पाय प्रिय अपना। जहँ नहिं भ्रमभय केर कलपना ॥
मन बानीते पार जो होई। ताकी कथा कहे किमि कोई ॥
मीन विहंग कि मारग ढूँढ़ा। बुद्धिविहीन विचारन मूढा ॥
पढि गुण तोता कहे कहानी। बिना विचार मूलकी हानी ॥

झूलना।

मूल जाने बिना धूल रसरीवरे मीन पग पंथ कहु कौन पावें।
दूर नेरे नहीं क्रूर हेरे सही बिना गुरु गम्य तेहि को लखावें ॥
जासुको नाम नहीं रूप नहिं रेख है भेष आलेख कह देख कोई।
बकत बहु वाय है सार नहिं पाय है धोषको धर्म गहि भर्म भोई॥
स्वप्नकी वस्तु जौं ढूँढ जागृतमें हाथ आवै नहीं यत्न कीने।
चारहू दशाते पार सरकार जो तासु दरबार पथ कौन लीने ॥
खेचरी भूचरी चाचरी अगोचरी योग अरु युक्ति सब रहे पोले।
ढुन्मुनी खातजहँ उन्मुनीफिरतहै अलककीझलकको पलकखोले॥

भक्ति नौधा कही प्रेम पौधा यही बूझि बिन सूझि नहिं यार आवै।
यार चीन्हा नहीं प्यार कीना वृथा नाद अरु नृत्य कह गीत गावै ॥

इति श्रीधर्मब्यौरा ।

अथ वेदधर्म ब्यौरा ।

दोहा–सतगुण सबमें श्रेष्ठ है, सतगुण विष्णू देव ।
सतगुणकी साखा गहे, लहे अगमको भेव ॥

चौपाई ।

सतगुनको सेवै बैरागी । तन मनतें प्रभु सेवा लागी ॥
चार संप्रदा सगुण उपासी । नौधा भक्ति गहे सुखरासी ॥
भाव भक्ति प्रभु प्रतिमा पूजा । राम कृष्ण सम और न दूजा ॥
कोई बाल रघुपति कर ध्याना । कोई कृष्ण शिशु सेव प्रमाना ॥
नाना भांति सेव जिवधारी । लषण जानकी औध बिहारी ॥
गान करहि बहु साधु समाजा । नादनृत्त बाजहि बहु बाजा ॥
धर्म वैष्णव परम सोहाई । दान पुण्य अति उज्ज्वल ताई ॥
गृह आश्रमी भाव भल धरही । सन्त गुरूकी सेवा करही ॥
वद धर्मकी बात घनेरी । जहँतहँ कविकृत मिश्रित हेरी ॥
ताते शुद्ध न ब्यौरा लहिये । जो जिहिभाव सोई गति गहिये ॥
पौरानिक बहु कथा कहानी । शुद्धाशुद्ध जक्त बिहरानी ॥
व्यास आदि ऋषिमुनि बहुतेरे । जो जेहि भासा सत्यसो टेरे ॥
केते पंडितन ग्रंथ सँवारी । ब्यासनाम धरि जक्त प्रचारी ॥
पुरुष प्रमानि बचन प्रमाना । सो विधि गहे भर्मभय भाना ॥
झूंठ सांच जो कछु जगमांही । निश्चय किये सत्य दरसाही ॥
झूंठकी जबही झुठाई जाना । तब तेहित्यागहि पुरुष सयाना ॥

इति वेदधर्म ।

अथ जैनधर्म ब्यौरावर्णन–चौपाई ।

जैनधर्म जिव दाया भारी । हिंसा पंथ नसो पग धारी ॥
शौच क्रिया जैनीमें थोरी । सतगुण मलिन मतामय सोरी॥
रात समै ढिग जल नहिं धरही । अशुचि शरीर रहै का करही ॥
अशुचि देह नहिं मन सकुचाही । इन्द्री शुद्ध बिना जल नाहीं ॥
देवी देवकी सेवा साधन । यन्त्र मन्त्र बहु देव अराधन ॥
दिन गति जबहि रैन नियरावै । जल अरु अन्तनसो कछु खावै॥
प्राण जाय तौ जान दे भाई । मुखमें कबहु न जल परिजाई॥
महा कठिन व्रत जैनी ठाना । भूखसे त्यागे अपनो प्राना ॥
जेते इतर धर्म बहु भांती । जैनी सबहि कहै मिथ्याती ॥
जैनेश्वरकी केवल बानी । इतर ग्रंथ नहिं जैनी मानी ॥
दान पुण्य अरु शौच अचारा । जैन धर्म अति अल्प निहारा ॥
दान पुण्य बिन कर्म जो करही । उर कठोरता जैनी धरही ॥
दान पुण्य नहिं जहाँ निहारा । हृदयेमें न होय उजियारा ॥
दाया कहां जहां नहिं दाना । बिना दान किमि हो कल्याना॥
तप जप करि साधू कछु सुखिया। जैनी गृही दान बिन दुखिया ॥
जैन यती यह सीष सिषाई । जो ताहूके धन अधिकाई ॥
फूटे कूपमें धनबरु डारो । बिना पात्र मतिदान बिचारो ॥
पात्र बिना नहिं देत जो दाना । तिनके पात्र मिलै नहिं आना॥
तिनके पात्र हैं साधू जैनी । भोजनदान तिन्हे कछु दैनी ॥
घरघरते भिक्षा ले येई । एक ठौर भोजन नहिं लेई ॥
ताते जैनमें दानकि हानी । जीव दया सुख पावै प्रानी ॥
बिना दिये पावे किमि कोई । देनलेन चारो युग होई ॥
दान न करहिं बर्त बहु करही । करि करि बर्त भूखते मरही ॥
जौनहि देहै सो नहिं पैहै । निश्चय भूखते प्रान गवैहै ॥

चौथा काल जैन जो कहेऊ। बज्रशरीर मनुष को रहेऊ॥
जैनी करहि तबहि तप भारी। करि करनी सुख धाम सिधारी॥
अब यह काल होयसो नाहीं। ज्ञान मुक्ति नहिं तिनके पाहीं॥
परमारथ न होय बिनदाना। गहे साधु परमारथ बाना॥
जहँ परमारथ दान कि हानी। तहां सुगति पावै कह प्रानी॥
जैनमते अब मुक्ति न पाई। अन्य धर्म जिवको सुखदाई॥
पंचम काल जैनको येहा। ज्ञानी सन्त धरे बहु देहा॥
और धर्ममें जैनमें नाहीं। जो परमारथ दान कराहीं॥
धर्मके चार चरण बतलाया। सत अरु सौच दान अरु दाया॥
कलिमें कहा सत्त पदवर्ता। नाम दान कलिमल संहर्ता॥
जैनमें सत्त शौच अरु दाना। तीनों चरण विभंग बखाना॥
महा कठिन तप करि जब ध्यावत। चौथकाल कोई गति पावत॥
अब यहि कालसो व्रतको पाले। एक टांगते धर्म न चाले॥
संबंधी तन मन धन तीनों। यह प्रमान सब धर्महि कीनों॥
तन मन धन बिन कार्य न कोई। स्वारथ अरु परमारथ दोई॥
तन मन दे जब कर सेवकाई। तब धन लाभ होय दुनियाई॥
धनको त्यागि औरको दीजै। तन मन ताते लाभ लहीजै॥
तन मन धन दे जिहि जिन साधा। कोई दुनिया कोई हरि अवराधा
तिहुदे सोइ अवश्य लहीजे। जब काहू दिश निज दिल दीजे
तिहु बिन कर्म जो साधा चहई। सो शठ हठ अज्ञानी अहई॥
तजि धन साधु जो वनमें बसही। घोर घोर तप करि तन कसही॥
धनको दान दंड तिहि नाहीं। रहे नहीं धन जिनके पाहीं॥
दारिद्री अरु भिक्षुक जोई। ताते दान लेत नहिं कोई॥
जिहि औसर नर वज्र शरीरा। सहै परीसा लहै न पीरा॥
दुःख अनंत देहीपर परही। जप तप साधु गृही दोउ करही॥

महा कठिन तप करि अघ दहई। दोनों यक समान गुण गहई॥
पंचये छठये कालमें सोई। जनींसे नहिं सो तप होई॥
दान देनकी बानि न तिनको। कहु कल्यान होय किमि इनको॥
धन सो धरहि दान नहिं करही। कौन भांति उनको अघ हरही॥
ताते पंचये छठये काला। जैनी कोइ न मुक्तिको चाला॥
तनहित धन दे तन सुख पाई। धन जौ गहतौ तन दुःख आई॥
जैनी कहै सुनो रे भाई। मिथ्याती मिथ्या फैलाई॥
एवनको राक्षस कहि गाया। मिथ्याती सो झूठ बताया॥
एवन जैनी छत्री सोई। राक्षसनाम वंशको होई॥
राक्षस वंशी क्षत्री एवन। जैनधर्म ताके मनभावन॥
ब्राह्मणहिंसा कर अधिकाई। ताते जैन महादुःख पाई॥
यज्ञमें जीव भस्म जब करही। मनमें रोष सदा जब धरही॥
क्षत्रीवंशके सबही राजा। जैनधर्मधर सहित समाजा॥
जिवकी हिंसा जबसो देखे। क्रोधवंत धावै यहि लेखे॥
यज्ञविध्वंस करे सो आई। ताते ब्राह्मण देहि दोहाई॥
यहि विधि एवन विप्रविरोधी। हिंसा देखि होय अति क्रोधी॥
ब्राह्मण ताते बैर गहाई। एवनको राक्षस बतलाई॥
अमिश अहारी मद्यप भाषे। वैरभावको कारण राखे॥
बीश बाहु दश शीस बखाना। ताको भेदनसो कहु जाना॥
एवन सिद्ध मंत्र एक करेऊ। ऐसो भेष ताहिते धरेऊ॥
ताके पास रहै एक माला। ताते ऐसो दरसै ख्याला॥
सो माला जब गलमें डारे। बीश बाहु दश शीस निहारे॥
मालाको प्रताप बतलाई। भेष भयंकर लेत बनाई॥
और मनुष सब देखो जैसे। रातन यकशिर द्वैभुज तैसे॥
इन्द्रनाम यक राजा केरो। मंत्री जुत्थप तासु चनेरो॥

अग्नि पौन आदिक जो कहाऊ। इंद्रके दरवारिनको नाऊ ॥
इन्द्रहि रणमें रावन जीता। बंधन डारिके देतेहि कीता ॥
नृपको जब बंधनमें डारा। मंत्रिनको कर चेरवा डारा ॥
नीचटहल दरबारिन गहेऊ। अग्नि पौन रावन बस भेऊ ॥
अग्नि पौन आदिक जो कहेऊ। सो सब नाम मनुषको रहेऊ ॥
सुरपति नाहिं बंधनमें आवे। मिथ्याती सब कूट बतावे ॥
छनमें इंद्र प्रलय जग करई। ताहि कौन बंधनमें धरई ॥
प्रलय करे फिर जग प्रकटावै। सो किमि रावनकी बस आवै ॥
ऐसो अग्नि पौन बलकारा। छनमें प्रलय करे संसारा ॥
मिथ्याती सब कूठ बर्णके। अग्नि पौन रह बस रावनके ॥
ब्रह्मन क्षत्री होय लराई। क्षत्री द्विजनको मारि हटाई ॥
परशुराम तब द्विजकुल होई। परमशत्रु क्षत्रीको सोई ॥
ताते अनगिन क्षत्री मारा। तब सुभूमि लीवो औतारा ॥
क्षत्री चक्रवर्त पदधारा। पर्शुरामको ताने मारा ॥
हनिवर द्वीपको राजा जोई। हनोमानको नाना सोई ॥
हनोमान ननिओ रे गेऊ। आदर मान तहां बड़ भेऊ ॥
हनिवर द्वीपमें आदर पाई। ताते हनोमान कहलाई ॥
बानरवंशी क्षत्री सोई। हनोमान विद्याधर होई ॥
रूप अनूप महा छबि जाको। कामदेव औतार है ताको ॥
बज्र अंग बल बरनि न जाई। गुणगण शील जासो अधिकाई ॥
राजा पौन जय कहलाये। हनुमान है ताके जाये ॥
पौनते मनुष न जन्मै कोई। यह कपोलकलपित सब होई ॥
हनोमानको बानर भाषा। पीठके ऊपर पूछ सो राखा ॥
कूठ कथा मिथ्याती कहई। नर वानर किमि संगत गहई ॥
बालि सुकंठ आदि नृप जेते। बानरवंशके क्षत्री तेते ॥

यह सब विद्याधर कहलाई । नभकी मारग चलै उड़ाई ॥
चंद्रनखा भगिनी रावनकी । सुपनखा तेहि विप्र कथनकी ॥
ब्रह्मन वेद पुरान बनाई । झूठी कथा अनेक मिलाई ॥
चौथा काल बहुरि जब ऐहै । भिन्नतिथ करतब प्रकटैहै ॥
कृष्णलक्ष्मण आदिक जानू । जरासंध रावण हनुमानू ॥
देव तिर्थंकर जब प्रकटाई । जैनधर्म सब जीव गहाई ॥
जैनधर्म बिधि करनी करही । नर विद्याधर सो मत धरही ॥
अब मिथ्यात फैलि बहु गैऊ । नर विद्याधर अंतर भैऊ ॥
यहिबिधि जैन कथा सब न्यारी । वेदधर्मते भिन्न उचारी ॥
ऐसहि बुद्ध धर्मकी चाली । वेद जैनते कथा निराली ॥

इति श्रीजैनमतव्यौरा ।

अथ स्वसंवेदव्यौरा ।

दोहा—चारवेदको पिता है, सर्व धर्म गुरु जोय ।
परम पुरुषको भेद है, स्वसंवेद कह सोय ॥

चौपाई ।

सत्य कबीरको निज मुख बानी। स्वसंमवेदसो नाम बखानी ॥
सतगुणपर जब सतगुण सरसे । तब शिव परम पुरुषपद परसे ॥
ताको नहिं जाने संसारा । अलख अगोचर अगम अपारा॥
नहिं निर्गुण नाहिं सर्गुण सोई । निर्गुण सर्गुण निरंजन होई ॥
निर्गुण सर्गुण फंदपसारा । सत्यमता है इनते न्यारा ॥
कहूँ न ताको मंदिर सेवा । सबमई परमातम देवा ॥
जब जिव धर्म कबीर गहंता । बाद बिसाद होय सब अंता ॥
स्वसमवेदकी विधि जो गहई । तामें बहुरि न औगुण रहई ॥
सब औगुणको दूर बहावै । स्वसमवेद विधि तब जिव पावै॥
इहां न कोई विषयबिकारा । निमल जीव सन्त मतधारा ॥

मानसरोवर हंस निवासा। बकुला तहां करहि नहिं बासा॥
भोजन भेक मीन जिन केरा। तिनको डाबर माह बसेरा॥
जो हरिनाम चुगै शुचि मोती। बसे मानसर तिनके गोती॥
सब जीवनके जो हितकारी। परमारथमें तन धन वारी॥
स्वसंवेदकी आस गहाई। अन्य नती बहु रीति चलाई॥
निर्मल जल अकाशते आवै। भूमि परत डाबर ह्वै जावै॥
तिमि सब स्वसंवेदते वानी। भिन्न भाव धरि जग प्रकटानी॥
सत्यपन्थके गृही मिरागी। परम पुरुषकी सेवा लागी॥
जुरे समाज जहांयक तीरा। ढोल मृदंग मधुर मञ्जीरा॥
बजै झांझ खँजरी करताला। बाजन बिबिधि प्रकार सुताला॥
सत्य कबीरको नाद उठावे। रहसि २ प्रभुको गुण गावै॥
सन्त गुरूकी सेवा माहीं। इन्है समान और कोउ नाहीं॥
परमधर्म गुरुसन्तकी सेवा। ताते मिले पुरातन देवा॥
धरे जेते धन द्रव्य शुभागे। सब गुरु सन्त सेवमें लागे॥
गृही होय गुरु साधू सेवै। वैरागी तपमें चित देवै॥
परम उदार चित्त जिन केरा। सत्यलोकमें तासु बसेरा॥

इति स्वसंवेद।

अथ स्मार्तमत व्यौरा वर्णन।

दोहा–सतगुण रजगुण धर्ममय, स्मृती मत संन्यास।
उत्तम मध्य कनिष्ठ विधि, कीजै कथा प्रकाश॥

चौपाई।

उत्तम मध्यम जो संन्यासा। सतगुण मयी ताहि परकाशा॥
दीगम्बर दंडी संन्यासी। दोनों धर्म सतोगुण राशी॥
अब कनिष्ठ संन्यास कहीजै। जब सत रज मिश्रित चित दीजै॥
कोइ कोइ दुराचार इन माही। मद्य मांसको भोग कराही॥

योगी अरु संन्यासी दोई । एक स्वरूप जानिये सोई ॥

इति स्मार्तमत ।

अथ मीमांसाधर्म वर्णन—चौपाई ।

रजगुण ब्रह्मा रूप कहावै । धर्म मिमांसा जक्त चलावै ॥
कर्मते श्रेष्ठ और नहिं कोई । कर्महिते सब रचना होई ॥

इति मीमांसा ।

अथ मूसा और ईसाधर्म ब्यौरा—चौपाई ।

रजगुण तमगुण जहां मिलाई । मूसाधर्म और ईसाई ॥
होम यज्ञ तौरेत बखाना । यथा वेदविधि कीन प्रमाना ॥
सागपात जैसे तरकारी । तैसे नर मद मांसु अहारी ॥
मानुष घातसे पातक माना । इतर जीव सब साग समाना ॥
मूसा धर्म यहूदी धारा । यहि मतको नहिं अधिकपसारा॥
मूसाके कोइ शिष्य न रहेऊ । ताते धर्म कि वृद्धि न भयऊ ॥
अबीरामको जो सन्ताना । मूसाधर्म करे परमाना ॥
सतगुणरूप आहि ईसाई । क्षमा शीलतामें अधिकाई ॥
छल बल रहित दीनता धरही । उज्ज्वल क्रिया शौच आचरही॥
मद्य मांसको करे अहारा । ताते तमगुणमय ब्यौहारा ॥
भजन अरु दान पुण्य कर थोरा। अधिक रजोगुणते चित जोरा ॥
क्षमा शांति सब औगुण ढकई। भर्मभूत तजि प्रभु दिश तकई ॥
ईसा शिष्य साखा बहु भयऊ। पृथ्वीपर जहँ तहँ रमि गयऊ ॥
देश देशमें धर्म प्रचारा । ईसा गुण सब ठौर उचारा ॥
जेहि औसर यह धर्म चलाई। नर भोले थोरी चतुराई ॥
थोरी विद्या बहुत निरअक्षर । धर्मकी गति जाने तब कहँ नर॥
थोरे ही उपदेशके करते । सब ईसाई धर्मको धरते ॥
यूरुप सबही भयो इसाई । देश एशिया गुण अधिकाई ॥

थोरे मनुष गह्यौ मत ईसा। हिंदू स्थान धर्म धुरदीसा॥
चरित इहां पादरी आये। विरले जीवहि धर्म गहाये॥
राज भयौ अंगरेजको जबते। भये अधिक ईसाई तबते॥
मूसा ईसामतके माहीं। स्वर्ग नर्क निर्णय कछु नाहीं॥
आतम गुण अरु झीना ज्ञाना। कछु नहिं इनमें कीन बखाना॥
मोटा ज्ञान धर्म बतलाई। पुण्य पापकी थाप थपाई॥

इति मूसाईसा।

अथ महम्मद धर्म ब्यौरावर्णन–चौपाई।

तमगुण जहाँ रजोगुण पेला। धर्म महम्मदको यह खेला॥
बिन अपराध जो मानुष मारे। मारि काटि निज धर्म प्रचारे॥
यह गुण मुसलमानमें कहई। यक अल्लाहकि भक्ति सो गहई॥
द्वितिये गुण इनमें बड़ भारी। अभ्यागत आदर अधिकारी॥
दान पुण्य अरु उज्वल कर्मा। चित्त उदार महम्मद धर्मा॥
भये महम्मद ऐसे दाता। आपअलूने सांग जो खाता॥
माल करोरनको लुटवाई। सह्यौभुरक्खकोदुःखअधिकाई॥
वेद धर्मको जैसे देखा। मता महम्मदको तस लेखा॥
कथा कहानि अधिक मिलाई। सुनी गुणी बहु बात बनाई॥
स्वर्ग नर्क महि मध्य कहानी। धर्म महम्मद निर्णय ठानी॥
आतमवाद कछु ज्ञानको भेदा। जपतपशमदम आदिनिबेदा॥
मोटा ज्ञान तीन हूको पद। मूसा ईसा धर्म महम्मद॥

इति महम्मदधर्म।

अथ शक्तिधर्म ब्यौरावर्णन–चौपाई।

धर्म तमोगुण जो लखि पाया। शक्ती धर्म आदि है माया॥
भवसागर जिन कीन पसारा। नारीते यह सब संसारा॥
शिव अरु शक्ती रूप द्वै कीन्हा। दोहू रूप मायाको चीन्हा॥

जब संघट्ट होय दोउ रूपा । ताते जीव परे भ्रम कूपा ॥
द्वंदरूप मायाको खेला । ताते जीवको ज्ञान सकेला ॥
ज्ञानते माया पंथ बिरोधी । भवसागर पद जीव प्रबोधी ॥
हिंसा कर्म बुद्धि जिव घाटी । ज्ञानद्वारे पर दीनो टाटी ॥
भोगे भोग भोगमें रहई । भोगवासना चितमें गहई ॥
भोगमें भर्मि रहा सब लोगा । आवे जाय सहै सो सोगा ॥

इति ।

अथ अघोर धर्मक्यौरावर्णन—चौपाई ।

तमगुण पर तमगुण सरसाई । धर्म अघोर परम कठिनाई ॥
नर पशु जीव सकल धरखाहीं । धर्म विचित्र कहो कह जाहीं ॥
दुराचारको अन्त अघोरी । जिमि अचार वैष्णव घोरी ॥

इति अघोरधर्म ।

अथ विचारणीय वार्ता ।

दोहा—येते धर्म बखानेऊ, इनते कहूँ जो और ।
सकल त्रिगुणमय भक्त हैं, जक्तमाह सब ठौर ॥
त्रिगुणातीत जो कोय कहै, त्रिगुणातीत न होय ।
कहनको त्रिगुणातीत हो, त्रिगुणमें बांधा सोय ॥
जीवनमुक्त विदेह जो, सब तिरगुणके फन्द ।
सार शब्द लहि पार हो, तब जिव होय अनंद ॥

चौपाई ।

जेते धर्म प्रचारक होही । कहो न जाय कहै का ओही ॥
जिमि नृप थापे देशन देशा । धर्म प्रचारक जगमें ऐसा ॥
एक प्रानि दुतिये मत खंडा । अपनो धर्म धारा प्रचंडा ॥
यक जक्ती यक भक्ती पाला । दोनों ते प्रभु बसै निराला ॥

बिन गुरु गम सो लखो न जाई । कोटिन विधिकिन करेउपाई ॥
यह दश वस्तु आपमें देखो । पांच तत्त्व गुण तीन विशेषो ॥
ब्रह्मजीव माया कहि दीनी । एकते भिन्न न दुतिया कीनी ॥
सदा काल सो रहै सघट्टा । कबहु न बिलगहोतिनकोठट्टा ॥
सब रचना इनहींते होई । इनको पूजाकर सब कोई ॥
प्रथमैं पृथ्वीकी है पूजा । मूरत थाप आपते दूजा ॥
आठ प्रकारको प्रतिमा कीने । ताहि ध्याय जिव ईश्वर चीन्हे ॥
दुतिये जलकरि ईश्वर ध्यावे । योग क्रियाआदिक मनलावे ॥
शौचअचार आदिक सब जोई । वरुन देवकी पूजा होई ॥
तृतिये अग्नि हरि सेव अनूपा । यज्ञ होम धूप आदिक दीपा ॥
चौथे पौन देवकी सेवा । प्राणायाम आदिकको भेवा ॥
पंचम शून्य समाधि बखानी । पुनिनिरगुणपुनिआदिभवानी ॥
तिनपर ज्योति निरंजन जागे । सकल जीव भक्तीमें लागे ॥
वेदमें यह पूजा बतलाई । वरुण चन्द्र इन्द्री रविराई ॥
अग्नि सरस्वती पृथ्वी पौना । तनमें सब रहते लख तौना ॥
थूल वस्तु येती दरसाई । सूक्षम थूलमें रही समाई ॥
थूलमें सूक्षम सूक्षममें थूला । सूक्षम सर्व थूलको मूला ॥
सो सूक्षम मोहिते नहिं न्यारा । मोही पाहि बसै मो प्यारा ॥
जेती पूजा जगके माहीं । सो सब अपनो दूसर नाहीं ॥

छन्द अस्कंध ।

दिलदेउलमें देव पूरातन पूज पूजारी तारा है ।
दिलहीमें पूजा सामग्री दिलही ठाकुरद्वारा है ॥
कहूं तीरथ कहुँमूरत थापै सबपरपंच पसारा है ।
मनका फेरन कोई जानै मन का फेरत हारा है ॥
उठत बैठत परत रातदिन कानो अंगुली डारा है ।

रोजा और नमाज गुजारे पुतली स्वांगसँवारा है ॥
मस्जिद चूनाकंक्कर है क्यों सौ सौ टक्कर मारा है।
दिलको खोज देवानेमोल्ला दिल अल्लह दीदारा है॥

चौपाई ।

अहं अहं ब्रह्म बोलब नहिं जोगू । ब्रह्मकी गति जाने कह लोगू॥
अहं ब्रह्म ब्रह्मा जो भाषा । अपने कर्मको ज्ञान न राषा ॥
बिन विचार सबही जिवभटके । सतगुरु त्याग भर्मपुर अटके॥
भेडर चाल गहै संसारी । रंच न हृदये बुद्धि बिचारी ॥
जाने कहवां पुरा पतंगा । दीपक परे होय तन भंगा ॥
बिछाजालजौखग लखि पावत । दाना चुगनसो कबहुँनआवत॥
बिना विचार धर्म जिव धरही । सब मिलिबहुरि बड़ाईकरही ॥
सदा काल जो करे विचारा । तिनके हृदय होय उजियारा॥
रावनको जो राक्षस कहेऊ । वैर भाव द्विज ताते गहेऊ ॥
ब्राह्मण चार वरण शिर मौरा । तासु वचन प्रमाण सबठौरा ॥
झूठ होयके सत्य बखाना । विप्र वचन सब करे प्रमाना ॥
रावन रूप विप्र अस कहेऊ । नौनर यक खरकोसिर गहेऊ॥
विप्र रामलीलाकी वारी । रावनकी जब मूर्ति सँवारी ॥
नौशिर नर अकार बनावै । यक शिर गर्दभको देखलावै ॥
गर्दभको जौ शीस सँवारा । सो सब शिरनके ऊपर धारा॥
गर्दभशीस भले सब देखे । निंदा हँसी होय यहि लेखे ॥
मनुषते रावन राक्षस भेऊ । खरनिश्चयपुनि मिश्रितकियऊ॥
ऐसो विप्र वचन प्रमाना । चार वरणके लोगन माना ॥
जस रावनमें औगुण मानी । रामचन्द्र तिमिसबगुणखानी ॥
जेती रावणता गुणगाहा । सीतारामहि कबिन सराहा ॥
रामचंद्र निज सखा समेता । गुणगण अतुलित कह कविकेता॥

तिमि दोषी दशकंध समाजा । नरगह सत जो कह कवि राजा॥
परवत सम रावन बतलाई । मृदुल मनोहर सिय रघुराई ॥
शाह सिकन्दर जो यूनानी । ताने विजय कीन युग जानी ॥
जीत्यौ महि रिपु सागर बंदर । दोय शृङ्गशिर गह्यो सिकन्दर॥
पारस देशको बकरा चीन्हा । जब सो भूमि विजयनृप कीन्हा॥
शीसपै शाह गह्यो सो गहना । शृंगसिकन्दर ताको कहना ॥
शृंगसहित सिकन्दर सोई । तिमि रावन दशकन्धर होई ॥
यथा सिकन्दर शृंगनवाला ।तिमि रावन बीसभुज दशभाला॥
सहसबाहु ब्रह्मा चतुरानन । विष्णु चतुर्भुज अरू षटआनन॥
पंचमुखी शिव आदि अनेका । जीवन जाने बिना विवेका ॥
ऐसहि द्वन्द परा संसारा । झूठ सांचकर कौन विचारा ॥
कालभेदको ऐसहि देखा । समुझे बिना करे सब लेखा ॥
द्वापर अन्त भो कलियुग आदी। कौरो पंडौ भये विषादी ॥
करणराय जब बिनती कीने। परशुरामसे विद्या लीने ॥
परशुराम रघुराम जो दोई। एकै समै दोहुनको होई ॥
जाशिवन्। दुबिदा हनुमाना । शृंगी ऋषि आदिक नर नाना ॥
राजा मय मेरटको जोई । रावन शशुर कहावै सोई ॥
राजा जनक अरु मुनिसुखदेवा। व्यास वशिष्ठ जो भाषै भेवा ॥
इत्यादिक वृत्तांत बहु चाला । सो सब रामकृष्णके काला ॥
कालको भेद न कतहु मिलाया। जक्त जीव माया भरमाया ॥
झूठहु सत्य शुद्ध सो लागा। सत्यको झूठ जानि जिव त्यागा॥

दोहा—आदम आधे दिवसलो, कीन बिहिस्त निवास ।
पांचसो वर्षसो अर्धदिन, महम्मद धर्मप्रकाश ॥
कालको मेल सिलै नहीं, सो मायाकी खोट ।
कहुं पलभरी कहुं वर्षदिन, कहुं भासे युग कोट ॥

चौपाई ।

रावन बहिन बिचर वन वाटा । लक्ष्मण तासु नासिका काटा॥
सो सुनि रावन क्रोधित भैऊ । छल बल करि सीता हरि लैऊ॥
कोई न लक्ष्मण दोष लगावै । सब औगुण रावणको गावै ॥
निश्चर कीश शृंग द्रुम धारी । रावन रघुपति सैन सँवारी ॥
विविधि भांतिको बिना समाजा । नरगह सत जो कह कविराजा॥
राम शत्रु रावण जिमि राक्षस । कृष्णके कंसादिक वैरी तस ॥
कंस कृष्ण मामा जग जाना । कर्महि राक्षस और न आना ॥
वेद महाभारत अस कहेऊ । कौन देवता मोहित भैऊ ॥
नाम केसरी वानर चीन्हा । तासु नारिसंग भोग सो कीन्हा॥
ताते हनूमान प्रकटाना । सोई कौन पुत्र जगजाना ॥
बुधिवंतो मन देख विचारी । वानरके नहिं कोई नारी ॥
पशु पंछी कोइ ब्याह न जूटी । जेहि संगर मैं सो तासु बधूटी॥
पौन देवता गुण गण धामा । पशुलखिसोकिमिहोयसकामा॥
जांबुवंत जम्बूको राजा । रिच्छप रामके संग विराजा ॥
कृष्णशशुर पुनि ताहि बखाना । दियौ ताहि निज कन्यादाना॥
रीछकी पुत्री रीछिन होई । मानुष संगमेलि नहिं कोई ॥
राक्षसवंशी वानर वंशी । रीछ नाग बछरा खरवंशी ॥
इत्यादिक सब गोत कहावै । बिन जाने कोइ भेद न पावै॥
ब्रह्मन ऐसी कथा उचारा । जैनबुद्धि विष्णू औतारा ॥
तनधरि असुरनको भरमाया । यज्ञ करन से तिन्है हटाया ॥
असुरन यज्ञ त्यागि जब दैऊ । सो सब अबल ताहिते भैऊ ॥
करि करि यज्ञ विप्रबल पाई । असुरनको तब मारि हटाई ॥
जैन बोध दायामय धर्मा । तिनके कहा असुरके कर्मा ॥
कर्ता पुरुष जो परम विवेकी । सबके संग करै सो नेकी ॥

काहूको नहिं सो भरमावै । राग द्वेष नहिं ताको भावै ॥
अज्ञन वैर जाहिसे गहेऊ । वेदविरोधी असुर सो कहेऊ ॥
पशुपंछी नरको दुःख देही । असुर कर्मकर प्रसुर है येही ॥
कारे राते गोरे अंगा । असुर बखाने नाना ढंगा ॥
असुर कर्म जब जो नर त्यागा । सो अवश्य सुर होय सुभागा ॥
लघु दीरघ तन सबही नरके । होहि सुरासुर कर्महि करके ॥
अजौ विप्र जैनीके द्रोही । औसर पाय देत दुःख ओही ॥
तिर्थंकरकी मूर्ति जो आही । बाहर जैन निकास जो ताही ॥
ब्राह्मण तब असक्रोध गहाई । पहुँचै ले निजु सखा सहाई ॥
प्रतिमाके ऊपर तेहि बारा । पाथर ईंट करै बौछारा ॥
मुसलमान अस बचन सुनाया । कतल हुकुम अल्लाहते आया ॥
जो अल्लाह कतलपै राजी । तौ एकै मत जग किन साजी ॥
महम्मदमत जगमें फैलावत । और सकलमत दूर बहावत ॥
जो कलाम अल्लाह कहाई । यह कुरान असमानते आई ॥
सो अल्लाह निकटके दूरी । रह्यौ चराचरमें सो पूरी ॥
सोई कुरान ऐसो प्रकासी । शहर गते प्रभु निकट निवासी ॥
कंठ किनसते निकट जो रहई । पुनितेहिकिमि अकाशपरकहई॥
शहरगते हरि निकट बताई । तासु कलाम दूर किमि जाई ॥
अस नेरे अल्लाह बतावै । किमि कलाम असमानते आवै॥
जहँ अल्लाह तहँ अल्लाह कलामा । अल्लाह निकट दूर कह कामा ॥
जो अल्लाहको नहिं लखि पाया। तेहि कलाम असमानते आया ॥
जो अल्लाहको नहिं पहिचाना । किमि ताकी कलामको जाना ॥
जबैह कत्तलते प्रभु नहिं राजी । भ्रमकरि भूले पंडित काजी ॥
कोई कह प्रभु मैं आखिन देखा। चर्मदृष्टिको मिथ्या लेखा ॥
चर्मदृष्टि सब माया भासा । जो भासा सो सकल बिाशना॥

कोइ कह मैं कोई ठौरमें गेऊ । प्रभुके संग बातकही भेऊ ॥
कोई कह मैं प्रभु सपने देखी । कोई कहै घटही मैं देखी ॥
कोइ कह मो प्रति भै नभवानी । झूठ साच मैं ताते जानी ॥
कोइ कह मैं लखि ज्ञानके द्वारा । सो कस जस बिजुली चमकारा ॥
झूँठ सांच भल नहिं लखि पावै । और बात कछु और बतावै ॥
यह सब जिवकी भर्म कहानी । विरला कोइ ईश्वर पहिचानी ॥
बिना ज्ञानके सब यह बाते । ज्ञानभये भ्रम रहै न ताते ॥
जो कोइ साधु ज्ञानके खानी । प्रभु इच्छा सब आपै जानी ॥
तिन्है न स्वपना नहिं न भवानी। नहिं कहुँ अनतबतकही ठानी ॥
ज्ञान द्वार हरभ्रम हरिदरसै । दूर जाय कह तापद परसै ॥
चार वर्ण ब्रह्मा परकासी । तिमि शंकर तनते संन्यासी ॥
शीसते पुरी देह निजु गहेऊ । पुनि भारती माथसे कहेऊ ॥
जीभनोकते सरस्वती जाय । गिरपर्वत दोऊ भुजा उपाय ॥
पसुलीते सागर तन गन्नो । दोहु जँघते बन आरन्नो ॥
दो पदसे तीर्थआश्रम तनधारे । शंकरसे प्रकटे इमि सारे ॥
जस बिचार जिवमाह प्रकासा । सो प्रतक्ष ह्वै ताको भासा ॥
केते ऐसे भये परपंची । छल करि ग्रंथ नयो निज रंची ॥
छल बल करि निज नाम छपावै । जगमें इमि निज धर्म चलावै ॥
पूर्वाचार्य श्रेष्ठ मत धारी । ग्रंथको करता ताहि पुकारी ॥
श्रेष्ठ पुरुषको रचित विचारी । होय ग्रंथको आदर भारी ॥
अकबरशाह वोजीर जो फैजी । नयौ धर्म परचारक पैजी ॥
ताने नयौ कुरान बनाई । [illegible] नशके बा[illegible] छपाई ॥
अकबर शाहसे जाय सुनाया । मो[illegible] [illegible]ति स्वप्न [illegible] आया ॥
तुमरे नाम नबूबत आई । है [illegible] तरुम[illegible] छपाई ॥
अकबरशाह अचंभित भयऊ । शीघ्र ता[illegible] त[illegible]तर [illegible] लि गयऊ ॥

वृक्षको चीर कुरान निकारा। फैजी छल खुलिगो तिहिबारा॥
ऐसे केते कपटी जगमें। करे बिगार धर्मकी मगमें॥
पंडित कह पै पंडित नाहीं। विद्या देखि जीव भरमाहीं॥
कठिन प्रपंच करे सो लोगा। विद्या पढ़ न भक्ति संयोगा॥
विद्वज्जन हैं द्वैविधि वक्ता। एक भक्त यक जक्तको ठगता॥
षट पशु ऐसे कीन प्रमाना। प्रथमैं वेद पशूको जाना॥
वेदादिक पाढ़ि ग्रंथ अनेका। वेद पशू न हृदय विवेका॥
दुतिय देवपशु गह सुर पक्षा। कह सुर श्रेष्ठ करे जग रक्षा।
तृतिये नर पशु ताको कहते। श्रेष्ठ मनुषको पक्ष जो गहते॥
चौथ शास्त्र पशु शास्त्र ले बोले। पुनि पंचम पुराण पशु टोले॥
छठे नारि पशु लंपट भाषे। ये षटपशु विचार नहिं राखे॥

दोहा–गुरुपशु नरपशु वेदपशु, त्रियापशू संसार।
मानुष सोई जानिये, जाके हृदय विचार॥

इति विचारणीय वार्ता।

अथ धर्मसार वर्णन।

दोहा–सर्व धर्म परमान यह, ईश्वर समरथ सत्य।
किहि विधि सो प्रभु रीझई, कोइ न जाने गत्य॥

चौपाई।

शुभ कर्मनते हरि हर खाहीं। यह प्रमान सब धर्मनमाहीं॥
शुभ अरु अशुभ कर्म द्वै राखी। दोनों कर्म धर्मते भाखी॥
समरथ करता दोहुते न्यारा। ताकी गति को जाननहारा॥
न्याय मिमांसा जैनी भाषे। केते ऋषि मुनि सोइ मद राखे॥
जीव स्वछंद कर्म अधिकारी। जस चाहे तस कार्य सँवारी॥
केते साधु कथै विपरीती। जिव नहिं सके कर्मकुलजीती॥
कर्ताकी गति काहु न जाना। कथे अनेकन वेद पुराना॥

जापर कृपा करे सो सांई। ताकी बाँह गहे बरियाई ॥
ब्रह्मानंद बनावै ताही। सबते श्रेष्ठ होय जिव वाही ॥
बहुविधि जिव शुभकर्म जो करई। बिन प्रभु दया कार्य नहिंसरई॥
बार बार सो प्रभुहि नमामी। सर्व समर्थ सर्वके स्वामी ॥

सत्यकबीर वचन—शब्द ।

अवधू कुदरतकी गति न्यारी ।
रंक नेवाज करे वह राजा भूपति करे भिखारी ।
वाते लोग हरफ नहिं लागे चंदन फूल न फूला ॥
मच्छशिकारी रमै जंगल बिच सिंह समुंदर झूला॥
रेंडरूख भयौ मलयागिर चहुँदिश फूटी बासा ।
तीन लोक ब्रह्मांड खण्डमें देखे अन्ध तमासा ॥
पंगा मेरु सुमेरु उलंघै त्रिभुवन मुक्ता डोले।
गूँगा ज्ञान विज्ञान प्रकाशे अनहद बानी बोले ॥
आकाशहि बांधि पताल पठावै शेष स्वर्गपर राजे ।
कहैं कबीर राम हैं राजा जो कछु करे सो साजे ॥

चौपाई।

महागूढ मुनिवर तप कीने। अंत नर्कमें बासा लीने ॥
पतित जौ नर्क भोगवे लायक। कृपा कीने कीन सुरनायक ॥
जौं मैं कर्मकरन समरत्था। ज्ञानमुक्ति तौ सब ममहत्था ॥
मैं हौं कौन कर्म है काको। जीव नहीं जांने परिपाको ॥
जौ यह जानै मैं कछु नाहीं। तौ अभिमान दूर दुरि जाहीं ॥

सत्यकबीर वचन ।

साखी—कबीर—पैठा है सब घटनमें, बैठा है संचेत ।
जब जैसी गति चाहत है,तब तैसी मति देत ॥
कबीर—बहुबंधनते बांधिया, एक बेचारा जीव ।
जीव बेचारा क्या करे, जौ न छोड़ावैं पीव ॥

कबीर–मनको मनोरथछोड़िदे, तेरा किया न होय।
पानीमें घिव निकले तो, रूखा खाय न कोय॥

नानकशाह वचन।

करै करावै आपै आप। मानुषके कछु नाहीं हाथ॥
जो कहै कि मैं कुछ कर्ता। फिर फिर गर्भ योनिमें फिरता॥

चौपाई।

मैं कछु नहिं नहिं कछु है मेरा। अहमित जे अज्ञानते घेरा॥
जो कोई पायौ ज्ञान अमोला। अहंब्रह्म आपा लखि बोला॥
ताहूकी यह दुर गति देखे। लखि नहिंपरतअलखयहिलेखे॥

सत्यकबीरवचन--रेखता।

मालिन पुकारे हे पिया हैहै साहेब तूनेक्या किया॥
यक बूंद लज्जत कारने मन्सूर सूली यौं दिया॥
जल जलकि रोवै माछरी बनबनके रोवै मोरया॥
महलोकि रोवै बीबिया अल्लाह इलाही क्याकिया॥
कायाके अंदर खोजिले छज्जेमें तेरा जीव है॥
कहते कबीर गुरु ज्ञानसे तुजहिमें तेरा पीव है॥

चौपाई।

जस ईसाकी कथे कहानी। तस मन्सूरकेरि गति जानी॥
दोनोंके मरनेकी बारी। प्रकटे केते चीन्ह भयकारी॥
ऋषि मुनि जैसा करनी करही। तसी हानि लाभमें परही॥
ज्ञानी ध्यानी प्रभु नहिं जाना। पाय कर्मफल सुखसब माना॥
कबहु कबहु विपिरीति देखावै। उत्तम कर्म तुच्छ फल पावै॥
जैसो नीक नाथको लागा। तैसोई तप फल जिव मागा॥
कुंभकरन तप करि हरि टेरी। मांगसि नींद माष षटकेरी॥
बारह लक्ष वर्ष तप भारी। कर इबलीस हदीस पुकारी॥

कछु नहिं ताको बस तहँ चाला । अंतकाल तेहि नर्कमें डाला ॥
जीवकि वसमें जो कछु रहता । तौन सुकर्म नीच गति गहता॥
वेशुवा बहूदिनको लेआयो । ईश्वर कृपा ताहि परछायो ॥
जबकन आन देशमें आया । तह बल्लाम साधु यक पाया ॥
तीनसौ वर्ष कीन तप जोई । जो कछु कहै सत्य सब होई ॥
बाद येशुपासे सो ठानी । तीनसौ वर्षकी तप विनसानी॥
जब जहि जस चाहे तस करई । जीव जतन कछु काज न सरई॥
कीनको नाथ दीन बरदाना । निज भ्राता पर हो जय माना॥
जीत्यौं प्रभु आज्ञा अनुसारा । कोइ न भा दोषी हत्यारा ॥
मूसा प्रभुकी आज्ञा पावो । चलि फिर ऊन भूप समुझावो॥
देय यहूदिनको सो जाना । पुनि अस वचन कह्यौभगवाना॥
मैं फिर उनको करों कठोरा । मूसा वचनसे मुख सो मोरा ॥
फिर उनहिय प्रभु करि कठिनाई। मूसाको तब कहा बसाई ॥
को अस बली जो ताहि उबारा। प्रभु जेहि आप डुबावन हारा ॥
जैसे प्रथम भव्यकी बानी । हसन हुसेन मृत्यु इमि जानी ॥
कीन हुसैन युक्ति बहु तेरी । पहुंचे मृत्यु महि मरनकीबेरी ॥
यकदिन अस कौतुक बतलाये। महम्मद द्वै किताब ले आये ॥
यक किताब दहने कर गहई । दूजी बाम हाथमें रहई ॥
दहने हाथ किताब जो दिखावा।नाम बिहिस्तिनकोतहँलिरकवा ॥
जो किताब बायें कर ग्राही । नारख नाम लिखा तामाही ॥
प्रथमहितै भे स्वर्गी नर्की । कुदरनकी गति जाय न तर्की ॥
प्रभु केकइकी मनि हरि लीनो । रामचंदरको सो बन दीनो ॥
केकइको कह दूषन दीजै । हरिइच्छा किन अटक कहीजै ॥
बाबुल बुर्ज बनावन लागे । सब नर तिय तेहि उद्यम पागे ॥
ताते नहिं ईश्वर सुखपाई । सबकी बोल दियौ पटलाई ॥
बरने बेद उपनिषद साखी । देव दनुज दोऊ दल रन भाखी॥

हारे असुर सुरन जय पाया । विजइन मन अभिमान समाया ॥
जब देवन कीने अभिमाना । ब्रह्मरूप तब तहँ प्रकटाना ॥
ऐसो तेजमई सो रहेऊ । कोईसुर नहिं सन्मुख ह्वै सकेऊ ॥
सब सूर अग्नि पौनको टेरी । तेहि औसर तहँ दोउ कर फेरी ॥
सब सुर अग्नि पौनसे कहेऊ । ब्रह्मरूप जो प्रकटे भैऊ ॥
हम सन्मुख ह्वै सके न ताही । तुम करि कृपा तासु ढिग जाही ॥
ताढ़िग पौनदेव जब गैऊ । ब्रह्म ताहिते पूछत भैऊ ॥
तुम हो कौन कहा तौ कर्मा । पवन देवता भाष्यौ मर्मा ॥
नाम पौन सुर मेरो होई । जो कुछ होय उडावो सोई ॥
तहां रही यक तृणकी ढेरी । ब्रह्मसो पौनको पौकहि टेरी ॥
वह ढेरीको देह उड़ाई । पौनदेवकर बल अधिकाई ॥
यक तृण तासु न सका उड़ाई । पलकरि पवनदेव थकि जाई ॥
लज्जित पौन गौन घर कीने । अग्निदेव पुनि तहँ पग दीने ॥
पूछै ब्रह्म कौन तू भाई । अग्निदेव निजु नाम सुनाई ॥
पूछै ब्रह्म कर्म तो काहा । अग्नि कहे मैं सब कुछ दाहा ॥
कहे ब्रह्म तृणढेर जलावो । अग्निदेव वह जोर लगावो ॥
तृण यक भस्म न सो करसकेऊ । जोर लगाय अग्नि तहँ थकेऊ ॥
तब लजायके अग्नि सिधारा । ब्रह्मासो गुप्त भयौ तेहि बारा ॥
देवी प्रकट भई तेहि काला । देवनसे कह बचन रसाला ॥
तुम अभिमान भंजवे कारण । ब्रह्मस्वरूप कियौ निजु धारण ॥
तुमरे मन हंकार जो आया । हम असुरनको मारि हटाया ॥
तुमरो कियौ होय कछु नाहीं । हानि लाभ बिधिकी बस आही ॥
सर्वसमर्थ सर्वको दाता । ताकी गतिनहिं लख्यौविधाता ॥
सो सबहीको खेल खेलावै । बाजीगर गतिको लखि पावै ॥
सबहीको जिन गर्व प्रहारा । लखि नहिं परत अलख करतारा ॥

बल वीरज विद्या चतुराई । बाजीगरको खेल बनाई ॥
तीन देव जेते औतारा । कर्मके बन्धन नाचै सारा ॥
नाचै ब्रह्मा नाचै विष्णू । नाचै शंकर नाचै जिष्णू ॥
नाचै आप निरंजन ज्ञानी । तन धरि नाचे आदि भवानी ॥
नाचै ब्रह्म रुद्र हरि नारी । पीर पयम्बर नाचै झारी ॥
सिद्ध साधु सुर नर मुनि नाचै । सतगुरु कृपा सन्त कोई बाचै ॥
अहंकार करिके अज्ञानी । चाहत हरिमाया तरि जानी ॥
एक तपीकी कहो कहानी । जो अज्ञानते तप दृढ़ ठानी ॥
सो निज मन अस कीन बिचारा। तपकरि चल हरि माया पारा ॥
ऐसी अपनी देह बढ़ावो । माया लंघि ब्रह्म मिल जावो ॥
ऋद्धि सिद्धि बल तामें जागा । तप करि देह बढ़ावन लागा ॥
महादीर्घ देही जब कीने । ब्रह्मचिंतवनमें चित दीने ॥
बढ़ तन ब्रह्म प्रभा परशनमें । अंग उतंग भंग मैं छनमें ॥
ब्रह्म प्रभाको कीन जो ध्याना । ताछन बड़ा वपुष बिनसाना ॥
महादीर्घ तन ह्वै गिर परेऊ । पुनि सो मच्छरको तन धरेऊ ॥
घासनमें सो कियौ बसेरा। फिरत एक मृग वनमें हेरा ॥
तब ताको मृग लात जो लागा। ताते सो मच्छर तन त्यागा ॥
सुरति मसक मृग माह समाई । मच्छरतन तजि मृगतन पाई ॥
तेहि मृग मारन चले शिकारी । आय ताहिपर शस्त्र प्रहारी ॥
जब मृग निज तन त्याग कराई। बधिकमें ताकी सुरति समाई ॥
ताते बधिक भयौ मृग सोई । एक दिन वनमें विचरत होई ॥
विचरत बनहि मिले मुनि एका। ज्ञान दियें तेहि सहित विवेका ॥
मुनि उपदेश बधिक जो पाई । बहुरि सोभक्ति भावमनलाई ॥
करि हंकार कर्म जो करहीं । तिनको कबहुन पूरा परहीं ॥

दोहा–राम बढ़ावै सो बढ़े, और बढ़ नाहिं कोय ।
बलकरि बढ़ै जो रावन, पलमें डारचौ खोय ॥

चौपाई ।

वेद कहे जो ऐसो लेखो। ईश्वर सर्व मयी बुध देखो ॥
वेद कह कर्म कर्‌यौ नहिं अर्पन। ताको अर्थ विचारो निजमन॥
महा करता महा भोगी जैसे। महा त्यागी पुनि जानै तैसे ॥
त्यागी महा जानिये सोई। जासु हृदय हंकार न होई ॥
जाके हृदये ऐसो बरता। मैं नाहीं कछु कर्मको करता ॥
मैं नाहीं हरि आपै आपू। सो नहिं कर्म आपनो थापू ॥
जाने ऐसो कीन विवेका। पुण्यमान पापी तेहि एका ॥
मित्र शत्रु ताके कोइ नाहीं। जहां तहां हरि आपै आहीं॥
कोई नहीं सुख दुःखको दाता। मैं तू जग सब भ्रमकी बाता॥
जिन विचारि लीना यह लेखा। सर्वमयी तिन ईश्वर देखा ॥
जेहि ईश्वर सब मयलखि आवै। पूरन तप फल सोई पावै ॥

रामचंद्र वचन ।

दोहा–जिनके हृदय विचार अस, मति न टरै हनुमंत ।
मैं सेवक चराचर, रूपराशि भगवंत ॥

चौपाई ।

भालू कीश कटक ले साथा। लंकापर चढ़िगे रघुनाथा ॥
सहित सेन रन रावन मारा। दोहु दिश जूझै बहुत जुझारा॥
सुधा वृष्टि भै दोहु दल माहीं। जिय भालूकपि निश्चर नाहीं॥
नाहीं राक्षस जिय कपि रिच्छा। ऐसी परमेश्वरकी इच्छा ॥
विष अमृत रिपु मित्र बनावै। भावे न्यारा खेल देखावै ॥
जापर कृपा करे करतारा। का न यक छनमें होय पहारा॥

सोरठा–पुण्य पाप मोहि नाहिं, निर्लेपो निरद्वंद मैं।
बंधा बंधन माहि, बिधि निषेधको ज्ञान गहि॥

चौपाई।

मैं यक भर्म पूतसा ठाढ़ा। मेरे हृदय मान अति बाढ़ा॥
मेरे विद्या गुण चतुराई। मैं सुन्दर छबि रूप निकाई॥
मैं कुलीन उत्तम सब लायक। मेरो कर्म सकल मनभायक॥
पुण्यते हर्ष पाप डर कापे। कर्म अकर्म आप शिर थापे॥
जौजिव बिधिनिषेध नहिं जानत। तौ कछु कर्म धर्म नहिं ठानत॥
जानि बूझि करि है जो पापा। निश्चय ताहि नर्कदुःखव्यापा॥
ऐसो मूढ कौन जगमाहीं। खरा खोट जो जानत नाहीं॥
जो कोइ पुण्य पाप नहिं जाना। शिशुसमान निर्दोष बखाना॥
जबते आदमको भो ज्ञाना। अहं भोगता करता जाना॥
तबते परा कालको फांसा। पुण्यपापको व्यौरा भासा॥
षटदरशन आतमको झगरे। न्यारे न्यारे मारग डगरे॥
पीर पयंबरको मत न्यारा। एक विरुद्ध दुतिये व्यौहारा॥
करतागति जो कोई लखिपावत। तौ काहेको झगर मचावत॥
जिमि अंधरनमिसि चीन्हाहाथी। एक समान तासुके साथी॥
मैं नहिं तू नहिं वह नहीं कोई। कहिनाहिं जातख्याल क्या होई॥
जौ मैं ही तो मोहि किन बंधा। पायौ ज्ञान गुरूकी संधा॥
आप गुरू अरु आपै चेला। कहि न जात कुदरतकोखेला॥
दुतिया बिन कौ ज्ञान गहावै। ज्ञानते दुतिया नजर न आवै॥
ज्ञान पाय दुतिया नाहिं माना। दुतिया धौं मोहि माह दुराना॥
अमीकुंडमें चिऊँटी डूबी। स्वादपाय जान्यौ कछु खूबी॥
कुंडको अंत न पावे कबहूँ। कोटिन गोता मारे जबहूँ॥
अस विज्ञान गम्यको गहई। ताको पारावार न लहई॥

आपै भीतर बाहर बोले । बिरला साधु सो भेद टटोले ॥
देय दिलावै मागे जोई । सकल कर्मको करता सोई ॥
आपै देय आप नटि जाई । आपै चलै आप हटि जाई ॥
सिद्ध साधु चक्रित ह्वै थकही । सतासत न कछु कही सकही ॥
स्वप्न अवस्था जब जिव परई । अपनी बस कछु कर्म न करई ॥
स्वप्नदशामें जाने सोई । यह सब कर्म आपनो होई ॥
जब जाग्यौ तब न्याय निबेरा । मेरो कर्म न सपने केरा ॥
चार अवस्थाके सब कर्मा । ऐसहि जानि लेहु जिव भर्मा ॥
चहूँ अवस्था मिथ्या राचा । ताको कर्म होय कहँसाचा ॥
ऐसहि ज्ञान अवस्था माही । सर्वकर्म मिथ्या दरसाही ॥
मैं नहिं मैं मिथ्या अभिमानी । भर्मते कर्म अपनो जानी ॥
संत सुजान यह मनहि विचारी । सब मद मान दूर करि डारी ॥
अहंकार है नर्क निसानी । भक्ति गरीबी जीव सुख दानी ॥

दोहा–जानि बूझी जो जड़ भया, आपको जानै नीच ।
सोई सबसे श्रेष्ठ है, ज्ञानगम्य तेहि बीच ॥
जाना नहिं बूझा नहिं, जो जड़ दशा गहाय ।
अज्ञानी मूरख सोई, सो न भक्तिपद पाय ॥

सत्यकबीर वचन–शब्द ।

दासको दीनता जब आवे ।
सो पद देव दास अपनेको शिव ब्रह्मा नहिं पावै ॥
औरनको पूरा करि जाने आपको ओछ कहावै ।
अवधूतन ते सत कहत हो सो मेरे मन भावै ॥
एकै ब्रह्म सकल घट देखे दुबिधा दूर बहावै ।
इन पांचोंसे तोरि सनेहा जब गोविंद गुणगावै ॥

होय अधीन प्रेम लौलावै कुल अभिमान मिटावै।
सहज शून्यमें रहे समाई पढ़िगुण सब बिसरावै॥
गुरुकी दया साधुकी संगती भावभक्ति चितलावै।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो कौन परमपद पावै॥
कौन हमारे आये केशव क्यौं न हमारे आये।
षट रस व्यंजन छोटि रसोई साग विदुरघर खाये॥
जहँ अभिमान तहाँ हम नाहीं वह व्यंजन विष लागे।
सोई मुनिजन पूरा कहिये अभिमानीको त्यागे॥
जातिहीन जाके कुल नाहीं है दासीको जायौ।
ताकीट परिव्या तुम जायके बैठे कहा बड़ापन पायौ॥
सत्यासत्यवचन कहो दुरयोधन सुनिले बात हमारी।
विदुर हमारे प्रानसो प्यारे तुम विषिया बेकारी॥
पुरातन कथा तुम्हारी हरिजी वनमें छाक मँगाई।
ग्वालनके संग भोजन करते सो मति तुममें आई॥
प्रेम प्रीतिके हम हैं भूखे अभिमानी नहिं भावै।
कहैं कबीर साधुकी महिमा हरि अपने मुख गावै॥

रामचंद्रवचन–चौपाई।

सबहि मानप्रद आप अमानी। भरथ प्रानसम ते मम प्रानी॥
वेद प्रमान आदि ओंकारा। सो करता सोइ श्रुति सारा॥
सो ओंकारको अर्थ बखानो। दीनता और गरीबी जानो॥
जहँ दीनता गरीबी बसई। सबगुण ज्ञान ताहिमें लसई॥
तौरे तौ इञ्जील सोयी नय। आहि दीनता ज्ञान गुणनमय॥
पुनि जब्बूर कहे सो हेता। दीनको प्रभु सोभा गति देता॥
पुनि कुरानको सोई मत हेरी। ऊँच बोलहै गर्दभ केरी॥
गदहा पर ईसा चढ़ि चाले। सो दीनता धर्म प्रतिपाले॥

धन्य दीनता कह इब्लीला। ताते हो जिव बंधन ढीला॥
जूठी बेर सेवरी ल्याई। रामचन्द्र अति रुचिते खाई॥
लक्ष्मन निर आदिरकर ताही। भिलीन जूठा हम नहिं खाही॥
भई सजीवन बूटी सोई। लक्ष्मन प्रान बचायौ सोई॥
पंडो यज्ञ जुरे ऋषि भूरी। स्वपचभक्त विन यज्ञ न पूरी॥
जातिपातिकुलगुण अभिमानी। भ्रमत फिरे चौरासी खानी॥
भगते भगवा भेष बनाये। शिवशंकर निज शीश चढ़ाये॥
आदि भक्ति शिवजक्त प्रकाशी। भगवा भेष धरे संन्यासी॥
भग पृथ्वीको रूप कहाये। तात भगवा वरन बनाये॥
पृथ्वी तुल्य गरीबी आवै। संन्यासी जीवत मरिजावै॥
बैरागी जो तिलक लगाई। ले मृतिका निजमाथ चढ़ाई॥
आदम अघ तौ रेत प्रसंगा। कीनो प्रभुकी आज्ञाभंगा॥
अदन बाहर आदम भऊ। ताते प्रभु पुनि ऐसे कहेऊ॥
खेहसे तेरी देह बनाई। जबलों बहुरि न तेहि मिलिजाई॥
तबलों श्रम करिकरिके खहो। अब नाहिं अमृत फलको पैहो॥
ताको ऐसो गहिये ज्ञाना। जीवतही मिट्टी मिल जाना॥
मुयेतो सबही मिट्टी होता। पावै कर्म बीज यश बोता॥
जीवतही लोधू मरजाना। यही सकल मतको परमाना॥
चरनामृत अरु शीत प्रसादा। ताको आहि बड़ो मरजादा॥
करिके कृपा साधु जो देही। दीनहो शिष्य सेवक सो लेही॥
ताको ऐसा अर्थ बिचारी। गहो गरीबी सब नरनारी॥
बहुरि शिष्यसे भीख मंगावै। ताते तासु मान बिनसावै॥
सुरगणजोअतिगुणगणधामा। आदमको कर दंड प्रणामा॥
कारण यही तासुमें पायौ। प्रभु दीनताको श्रेष्ठ देखायौ॥
कह आदम मिट्टीकी मूरत। कह इबलीस दीप्त शुचि सूरत॥

कह नारद ब्रह्मा सुत होई । कहब पुरा कैवर्तक जोई ॥
कहु सुख देवगर्भके योगी । कह नृप जनक विषयरस भोगी ॥
कह मूसा गुण ज्ञान निधाना । कह इबलीस दोजखी जाना ॥
बिनदी मतान जिव कोई तरिहै । करि सुकर्म भवसागर परिहै ॥

नानक शाह वचन ।

दोहा—नानक नन्हे हो रहो, जैसी नन्हीं दूब ।
घास पात जरि जाहिगी, दूबखूबकी खूब ॥

सेख फरीद वचन ।

दोहा—फरीदा ऐसा हो रहो, जैसा करक्ख मसीत ।
आठोपहरलताडिये, तेरीरब्बनालरहप्रीत ॥
सोरठा—धर्मसार यह जान, भक्तिदीन ता दिलगहे ।
तजि दीजै मदमान, होयपरम कल्यान तब ॥
तनमनधन गुरुअर्प, करनीकर गुरुद्वारनिज ।
बहुरि काल नहिं दर्प, प्रेमभाव पद पूजिये ॥

इति श्रीधर्मसार ।

अथ सर्वधर्मएकता वर्णन—चौपाई ।

एकै धर्म सकल संसारा । भिन्न भेदते दरसै न्यारा ॥
विषय अमृतमें दियौ मिलाई । ताते जिवकी सुधि बिसराई ॥
सप्त पंथ तजि कुफुर कमावै । न्यारी राह जीवको भावै ॥
कहु तीरथ व्रत मूरति बताया । कहुमदमास हरामको खाया ॥
जारी जोर जुलुम कहुं देखो । यक अल्लहको न्यारो लेखो ॥
उज्वल करनी सब देखलाई । तामें कछुक हराम मिलाई ॥
जबलों भोगकिआसा रहई । तबलों जिव हराम गतिगहई ॥
भोगकि इच्छा दिलसे त्यागे । तब जिव सत्य पंथमें लागे ॥
विषय विकारते मुक्ति न पावै । सतगुरु त्याग औरको ध्यावै ॥

परम पुरुष पदको जब त्यागा। तब हराम कारीमें लागा ॥
जीव गँवायो ज्ञान कि थैली। तजि शुभकर्म करै बदफैली ॥
जौन विकार जाहि मत माहीं। तजि सब जिव निर्मल ह्वैजाहीं॥
निजऔगुणजब जिव पहिँचाना। भर्म छांडि शुभ धर्महि जाना॥
हृदयेमें जब उगे विवेका। तब सब जिवके मत हो एका ॥
सत्य पुरुषकी भक्ति जो गहेऊ। तजि विकार तब अमरसो भैऊ॥

इति सर्वधर्मएकता।

अथ ब्रह्माण्ड और पिंडकी एकता—चौपाई।

यह ब्रह्मांड सकल है पानी। तामें अद्भुत ख्याल उपानी॥
अण्ड पिंड दो उदधि अपारा। इन्द्रजाल तामें विस्तारा॥
रच्यौ ख्याल यह बाजीगरको। अन्त लहेको भवसागरको ॥
अण्डाकार पिंड ब्रह्मण्डा। तामें सकल द्वीप नौखण्डा॥
यह समुद्र है अगम अगाहा। भरमत जीव न पावै थाहा॥
चौरासी लख गोता खाहीं। बूड़े उछले पार न जाहीं ॥
जिमि ब्रह्मांड समुद्र बखानी। तिमियह पिंडबून्दयकजानी ॥
सिन्धु बून्द दोनों यकरूपा। कहिनजायअतिअकथअनूपा ॥
सिन्धुमें बून्द बून्दमें सागर। जाने बिनापच्यौ जगझागर ॥
जो कछु रचना सिन्धुमें परखो। ज्यौंकीत्यौंसोइ बुंदमें निरखो॥
वारिद बुंद विचार विलोका। दोनों द्वैधौ दोनों एका ॥
दोनों एक तुल्य है चोखे। विषय विकार दोहुनको पोखे॥
इंद्रिन सहित दोहु यक सारा। दोहुमें एकै खेल पसारा ॥
ताते प्रथम पिंड गति जानो। पुनि ब्रह्माण्डको लेखा ठानो॥
पिंड खेल जबलों नाहिं लहई। अंडलेख तबलों कह कहई॥
पहिले पिंड आपनो तरना। पुनि ब्रह्मंडके पार उतरना॥
जाते पिंड तरो नाहिं जाई। सो ब्रह्मां पार कह पाई ॥

जबलों देह सत्यकरि जानी। तबलों पिण्ड तरे नहिं प्रानी ॥
आदिमें अण्ड रूप यक रहेऊ। हिरण्यगर्भ ताहीको कहेऊ ॥
हिरण्यगर्भ निज मनहि विचारा। द्वन्द्व खेल तेहि काल सँवारा ॥
हिरण्यगर्भ प्रजापति मेला। ताते खिला जक्तको खेला ॥
फूटा अंड भयौ द्वै धारा। ताते द्वन्द्व जक्त हितकारा ॥
द्वन्दमता संसारहि मेले। नर नारी दोउ जगमें खेले ॥
दोनों मिले होय तब रचना। सकल स्वरूप ताहिते खचना ॥
जिहि अवसर जिव भर्महि भंडा। जो कछु पिण्ड सोइ ब्रह्मण्डा ॥
आपै लखे लखो सब जाई। आपहिमें सब सृष्टि समाई ॥
माया ब्रह्म मेल जब होई। यह संसार खेल तब होई ॥
माया दीख ब्रह्म नहिं दरसै। शून्य स्वरूप ताहिको परसै ॥
बिंदु रुधिर दूनो हैं पानी। अंड पिंड रचनाको खानी ॥
बिंदु पिता लोहू है माता। श्वेत अरुण कहिये द्वै बाता ॥
यकभो द्वन्द द्वन्द जब टूटे। है अनन्त सब जगमें फूटे ॥
रुधिरसे तीन धातु प्रकटानी। चाम मासु अरु रुधिर बखानी ॥
तीन धातु नर बिन्दुसे होई। हाड अरु गूद बिन्द कह सोई ॥
माता तीन पिता मलतीनी। ताते जगकी रचना कीनी ॥
माताको सब कोइ लखि पावै। पिता काहुकी नजर न आवै ॥
मातामें रह पिता छपाई। ताते कोई देखि हिंन पाई ॥
माता जबहि पिता बतलावै। तब कोइ खबर तासुको पावै ॥
माताको अभाव जब होई। पिता दरस तब कर सब कोई ॥
यह दृष्टांत मैं प्रकट बखाना। मायामें इमि ब्रह्म लुकाना ॥
चाम मास लोहू है बाहर। हाड अरु गूद बिन्द है भीतर ॥
माता जैसे पिता छपावै। माया ऐसे ब्रह्म दुरावै ॥

माया ब्रह्म जीव कह आहीं। मोते इतर और कछु नाहीं॥
आपै खोजि आपको पैये। और कहा केहि खोजन जैये॥
पिंड अंड दोनों यक लेखो। बाहर भीतर एकै देखो॥
पग पाताल कहे सतइ महि। चरण पृष्ठ पाताल छठा कहि॥
पद अंगुली सो कहे असुरगण। पदके नख असुरनके बाहण॥
अष्टालिग महातल पञ्चम। पेडीतलातल चौथ विरञ्चम॥
ठेघुनी सुतल तीसरे कहिये। जंघको बितल दूसरो गहिये॥
काल समय अथवा यज्ञ होई। पाव चलनको कहिये सोई॥
भगसो अतलहै पहिली धरनी। लिंग ताहि प्रजापति बरनी॥
वरषा बीज नाम महि भनिये। महिते सो अकाशलों गनिये॥
चूतर माथ सो प्रभा प्रभाता। श्वेत रंग जो प्रथम लखाता॥
मोट मास अथवा कह माया। सो प्रदोष सन्ध्या बतलाया॥
नाभी गंभीरता है जोई। क्षीर समुद्र बखानो सोई॥
इत जठरा उत वडवा आगी। नसा जाल सरितागण जागी॥
पेट सो भुवर्लोक पहिचानो। बालभोग लघु पर्लय जानो॥
तृषा सो लघु पर्लय जग सोवन्। हृदया स्वर्ग भूमि ऊपर भन्॥
इत वैजन्ती माला जोई। उत लग्नादिक जाला सोई॥
दक्षिण कुच यहि भांति बखाना। मांगनके प्रथम दे दाना॥
बाम पयोधर ताहि कहीजै। दान याचना पीछे दीजै॥
मन सोई गुण तीन मिलाना। रज सत तमगुण कीन प्रणामा॥
मनसंकल्प सोइ है ब्रह्मा। जग रचना जिन कीन अरंभा॥
पोषण गुणसों वदे विष्णुवर। क्रोधहनन हंकार महेश्वर॥
हास अनन्द सोई है माया। ज्ञान दुःख दंभ दूर कराया॥
प्रानसो पौन पिष्ठ अपकर्मा। पीठ अस्थि हिमगिरि कह मर्मा॥
पसुली इतर अस्थि गिर नामा। जो हिमगिरके दक्षिण बामा॥
दहनाहाथ सो दान अस वर्षा। बाम सूम तासुष्को तर्षा॥

हाथ चीन्ह अप्सरा सुभाती। कर नख सो सुरगण बहु जाती॥
दक्षिन करबंध अरु निजताई। लोकपाल देव अग्नि बनाई॥
बाम जोड़कर जो अरु निजलो। अहं देव ईसान नामलो॥
आरनिज सो कल्पद्रुम कहिये। आगे और भेद कछु कहिये॥
दक्षिन कंध सो दाहना छोरा। वामकंध सो बायो ओरा॥
गरदन मोढा वरुणदेववर। कंठसो महर्लोक स्वर्ग ऊपर॥
शब्दसो अनहद बुद्धि जो नीकी। महर्लोकके ऊपर ठीकी॥
सो यम लोक बखानों ताहा। चिंतादुःखसे जगकी चाहा॥
होटको ओष्ठ लोभको साजू। ऊपरको ओष्ठ हया अरु लाजू॥
तालू पानी जिह्वा आगी। वचन सोई सरस्वती सुभागी॥
दंतमोह जग पुनि कह भोजन। सब जग जीव करे जो भक्षन॥
इतबानी उत चारों वेदा। हास्य सो माया रचना भेदा॥
कानदो जक्ष आठ विधि धारा। नाकपरा सो अश्विनी कुमारा॥
देहगंध सो पृथ्वी योका। अधोतन दक्षिनपंचमयमलोका॥
अर्धदेह उत्तर जो हेरी। सो तपलोक षष्ठमो टेरी॥
मस्तक बल सो नूर असलकह। आदि कि उत्पतिको सूरय वह॥
दृष्टि सदा जग उत्पति सारा। पलक मारन दिनरात उचारा॥
दक्षिन दिशकी भृकुटी जोई। प्रीति देवता महत्तर सोई॥
बाम और भृकुटी जो लस्ता। कहर क्रोध सुर कहे देवस्ता॥
मस्तक सो तपलोक बखानो। सो जनलोकके ऊपर जानो॥
शीस खोपड़ी लोकालोकू। सब लोकनते उपर विलोकू॥
शिर कच महाप्रलय घनकारे। तनरोम नोक वनस्पति भारे॥
रूप अनूप लक्ष्मी जाना। देहकांति रवि प्रभा प्रमाना॥
महापुरुषको सोहै गेहा। जगमें जेती मानुष देहा॥
आतम चिदानंद करि मानी। खास महल पूर यतन ज्ञानी॥
श्वास जबही नीचेको जाई। सारी सृष्टि तबै प्रकटाई॥

जिहि औसर बिच श्वासा रोका । हरा होय तब सब जग लोका॥
जबहि श्वास ऊपरको खींचा । महाप्रलयहो सबकी मीचा ॥
दोहा-पिंड और ब्रह्मांडमें, रंच भेद नहिं बाद ।
नानक सत्यकबीरको, अब सुनिये संवाद ॥

नानक वचन ।

तीन लोककी कहो गुसांई । कैसे जानि परे तन माही ॥
कहिये दयासिंधु मोहि बानी । तुम निज पुरुष पुरातन ज्ञानी॥

जिंदा वचन ।

हेठ चरण दै शीस अकाशा । तीनलोक देही प्रकाशा ॥
शब्द खंड ब्रह्मांडमें सोइ । माया ब्रह्म फैल घट दोई ॥
हमरे पदको लहे न कोई । भले बूझ तुम पारख होई ॥

नानक वचन ।

चार दिशा मोहि कहो गोसाँई । सातद्वीप निज कहो बुझाई ॥
प्रभु नौखंड अब कहो बखानी । चंद्रशूर तन कैसी मानी ॥

जिंदा वचन ।

आगा पीछा दक्षिन बाना । चार दिशा देही प्रमाना ॥
साढे तीन हाथकी देही । उनचास कोटि बिसियाहै पेही॥
नवो खंड नौ संधी जानो । पिंड अंडको लेखा मानो ॥
परवत यामें हाड लगाया । धड पासू ब्रह्मांड रचाया ॥
चंद्र शूर द्वै नेत्र जगावा । देखो पीठ सुमेर बनावा ॥
नसन दिया तन भीतर जानो । पेट गंडार पिंडमें मानो ॥

नानक वचन ।

तत्त्व प्रकार कही तुम वानी । वाकी शब्द संधि पहिचानी॥
सातसमुद्र कहो बखानी । तुमही पुरुष पुरातन ज्ञानी ॥

जिंदा वचन ।

जीभ नासिका नेत्र बखानो । श्रवण नाभ गुद इंद्री मानो ॥

खार मीठ जल सब पहिचानो । नौसौ नदी पिंडमें मानो ॥
श्वासा नदी नासिका वासा । जिह्वा स्वाद करे रस भाखा ॥
ये समुद्रमें जाय समानो । है गंडार नहीं त्रितानो ॥

नानक वचन ।

सात समुद्रकी लहर बखानो । इनकी लहर कौन विधि मानो ॥

जिंदा वचन ।

काम अरु क्रोध लोभ हंकारा । मनमायाकी लहर अपारा ॥
अग्नि पौन पानी प्रचण्डा । पांच तत्त्व वर्तें नौ खण्डा ॥

नानक वचन ।

वाही लहर हीरा अरु मोती । यामें कहा निकसि है सोती ॥
सभी भेद मोहिं कहु गुरुदेवा । नहिं छोड़ों अब तुमरी सेवा ॥

जिंदा वचन ।

जब गुरु मिलै भृङ्ग सम रंगा । ब्रह्मज्ञान उपजै सतसंगा ॥
सुमिरन भजन होय परकाशा । अनहद ध्यान पुरुषकी आशा ॥
अर्श गैबमें ध्यान लगावै । तवासिंधु थाह कोइ पावै ॥
जाय हंस तहँ डुबकी मारा । ले निकसे तब वस्तु अपारा ॥
हीरा लाल नाम परकाशा । शब्द सुरति हंसाको बासा ॥
कथा समाज निकसिहै ज्ञाना । सो हीरा मणि माणिक जाना ॥

नानक वचन ।

खार मीठ जल इहां अपारा । उहां कहां गुरुकर निर्धारा ॥

जिन्दा वचन ।

नयन नाक इन्द्री जल खारी । गुदा श्रवण जानो जलधारी ॥
खार मीठ जल सभी भरा है । जो ब्रह्मांड सो पिंड कहा है ॥

नानक वचन ।

इहां है काठ लोहकी नौका । कहो स्वामी व्यौहार वहांका ॥

जिन्दा वचन।

नाम पुरुष नौका इहां भाई। खेवट संत गुरु संत मिलाई॥
पुरुष शब्द सुमिरो लौ लाई। पुरुष प्रताप उतरि चल भाई॥

नानक वचन।

धन्य कबीर परम गुरुज्ञानी। अमरभेद भाषी निज बानी॥
साखी–तिलघोटत तारी लगी, दिलदरियाके तीर।
नानककी संशय मिटी, जो सतगुरु मिले कबीर॥

चौपाई।

बहुरि अर्ब यूनानके ज्ञानी। पिंड अण्ड सम तूल बखानी॥
जो सबही ब्रह्मांडमें देखो। पिंड केर सोई है लेखो॥
अस्थि पहाड़ है मेघ पसीना। शिर नभ इंद्री कर्म प्रवीना॥
सुर नर मुनि गंध्रव अरु देवा। पिंड अण्डमें एकै भेवा॥
सकल भांतिके पशु खग नाना। कर्म करंत बसै परधाना॥
भोजन पावक पौरुष जोई। सोई रसोईदार कहोई॥
जो बल अंतमें भोजन धरई। गन्धी नामक तासुको परई॥
जो बल रुधिरको श्वेत बनावै। नारि कुचनमें दूध कहावै॥
अण्डकोष नर बीरज धोवै। धोबी नाम तासुको होवै॥
भोजन अंगमें बाटनहारा। नाम बंधानी तासु उचारा॥
जल जो पसीना रूप निकारी। सो कहिये सक्का पनिहारी॥
जो भोजन मल बाहर डारे। नाम हलाहलखोर सो धारे॥
बात पित्त जो अन्तर गहई। सोई न्याय करंता कहई॥
यह विधि सब पशुखगतनमाही। क्रोध स्वरूपी बीग सो आही॥
अंड पिंडकी अकथ कहानी। मैं कछु सूक्षम लिखा प्रमानी॥
दोहा–बूँद समाना सिंधुमें, यह जाने सब कोय।
सिंधु समाना बूँदमें, जाने बिरला सोय॥

कुंडलिया ।

जातै बिरला सोय होय जब सतगुरु दाया ।
मैंहि मैं सब ठौर और सबही भ्रम छाया ॥
भ्रम छाया सब ओर दौर मन ज्ञान कि टट्टी ।
टट्टी जब टुटि जाय आय नहिं पुनि या हट्टी ॥

इति ब्रह्मांड पिंड ।

अथ सर्वदेशभाषाकी एकता ।

दोहा—जेते मानुष जक्तमें, हिंदू सबकी आदि ।
भाषा सारे जक्तकी, संस्कृत पितु है बादि ॥

चौपाई ।

संस्कृत कह सोधित जनको । सोई पिता सर्व भाषनको ॥
संस्कृतके जो गुण औगाहा । ताको नहिं कोइ पावै थाहा ॥
वेदकि संस्कृत जो आहीं । अबके पंडित समुझत नाहीं ॥
एक सूत्रके अर्थ अपारा । कह सब निजु निजु मति अनुसारा ॥
मर्म न जानै अर्थको सोई । यथा बुद्धि भाषे बुध लोई ॥
गूढ अर्थ जानै ब्रह्म-ज्ञानी । गुप्त वस्तु जेहि कछु न दुरानी ॥
संस्कृतको वर्ण बिचारो । और न कहुँ अस युक्ति निहारो ॥
प्रथम संस्कृतको वर्ण माला । और न कोई भाषामें भाला ॥
आदिके अक्षर बारह स्वरको । ब्रह्मस्वरूप जानिये तिनको ॥
अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ कह । औ अं अःरामरमित सब यह ॥
बारह ब्रह्म बसै ब्रह्मंडा । कथै कौन सब गुणमय मंडा ॥
एक अकारते बारह स्वर हैं । व्यंजन सकलको परम पितर हैं ॥
सबके आदि है एक अकारा । ताते वृद्ध भये पुनि बारा ॥
बारहरूप अकार सो बनेऊ । न्यारे न्यारे कारज ठनेऊ ॥
एक थूल यक सूक्षम रूपा । थूल प्रकट सूक्षम रह गूपा ॥
थूल अकार जो सूक्षम भैऊ । सो सब बरणनमें रमि गैऊ ॥
वासुदेव सब माहि बिहारी । कोइ साधुजन सकै निहारी ॥

निर्गुणते सरगुण जब भैऊ । ताहीको ककार जग कहेऊ ॥
जब अकार निजु रूप गहाया । है ककार दशमें दरसाया ॥
पुत्र पौत्र सही तथा न कर । क ख ग घ ङ दशमें दर ॥
पञ्च ब्रह्म रह दशमें द्वारा । तिनके पुत्र अग्र पग धारा ॥
तालूपर सो कीन बसेरा । च छ ज झ ञ सोई टेरा ॥
तिनते पुनि ट ठ ड ढ ण भैऊ । तालू अग्रबास तिन लैऊ ॥
त थ द ध न फिर आगे आये । दंतमूल सो बैठक पाये ॥
प फ ब भ म अधरनपै बैठारी । मुख कपाट सो दीन उघारी ॥
य र ल व श ष स ह क्ष त्र ज्ञ अगाहा । बाहरको कर चले उछाहा ॥
खोलि कपाट सो बाहर बिचरे । ब्रह्मवेत्ता बुध बानी उचरे ॥
संस्कृतके हैं अक्षर जोई । सबके पिता जानिये सोई ॥
बारह ब्रह्म सकल व्यंजनमें । धरि लघुरूप रमे सब तनमें ॥
जड़ चेतन सब माह बिहारी । जो चीन्है सो ब्रह्माचारी ॥
बासुदेव है आदि अकारा । सो रमिरहा सकल संसारा ॥
आदि ब्रह्म अकार कहाये । जहँ तहँ सोइ रहा जग छाये ॥
लखो न जाये अलख अविनाशी। सर्व खानिमें स्वतह प्रकाशी ॥
सोई अकार जो भयौ बिकरी । रचनासरिसो जक्त पसारी ॥

दोहा—जब अकार ब्रह्मांडसे, मृत मंडलमें आये ।
दशमें दर परथान कर, सोई ककार कहलाये ॥
सो ककार काया रचे, जनक जगत करतार ।
तारण कारण जीवके, गुरु है सो तनधार ॥

चौपाई ।

अब दुतिये विधि कहो बखानी । आदि संस्कृत जावे जानी ॥
सर्व वेदकी भाषा जोई । एक मिलान बखानो सोई ॥
सब यूनानके देवी देवा । हिंदूको पूजा अरु सेवा ॥
हिन्दू जाको श्रीकह गाये । सीरिज यूनानी बतलाये ॥

इत जो देव गणेश बखानी। सो गम्मस रूमी यूनानी॥
इंद्रको हिन्दू कह देव पितर। उत जु पितर कह लाववज्रधर॥
हिन्दू अनपूर्णा कह भाषी। अनपूर्णा यूनानी साषी॥
संस्कृतमें जो पित्र कहावै। सोई पारसी पितर बतावै॥
अग्रंजीमें फादर सोइ। मातर मादर कहिये जोई॥
आता प्रादर नाम कहीजै। कृतकार कृतगार भनीजै॥
अंग्रेजी कृयटार कहावै। हिन्दू सो करताहि बतावै॥
मिह्र संस्कृत सूरज भाषा। अरबी मिह्र नाम सोइ राखा॥
अभ्र संस्कृत बादल बोले। अब्र पारसीमें सोइ खोले॥
पुत्र संस्कृत सुअन कहावै। अग्रंजीमें सन बतलावै॥
पृष्ठ पारसी पुस्त प्रमाना। नैन सो अर्वी ऐन बखाना॥
सृष्टि संस्कृत कीन बखाना। सो पारसी सरिस्त प्रमाना॥
दुहिता संस्कृत बेटी होई। सो पारसी दुखतर कह सोई॥
सो डाटर अंगरेजी माहीं। अस्व अस्य लो हार्स कहाहीं॥
शब्द अनेक बकी यक ताई। बुधवन्तो सो लेहु मिलाई॥
भाषा बहुत पढ़े जो कोई। बोलके मेल मिलावै सोई॥
अब तृतिये दृष्टांत निरेखे। संस्कृत व्याकरण परेखे॥
जो व्याकरण संस्कृत माहीं। ऐसो शुद्ध और कहुँ नाहीं॥
संस्कृतसे है अरबी बानी। मिश्री यूनानी अलेमानी॥
संस्कृतसे सब गुण महि सारी। उक्ति युक्ति कछु भिन्नसवारी॥
अब चौथे यह भाषो भेदा। सर्व शास्त्रके प्रथमहि वेदा॥
चारो महा बाल है जोई। संस्कृतमें पुनि उजरी सोई॥
पुनि पञ्चम अस कहो बखानी। ताते आदि संस्कृत जानी॥
मुख्य नाम परमेश्वर केरा। संस्कृत बोलीमें हेरा॥
और बोलमें आवत नाहीं। संस्कृतमें शुद्ध गहाहीं॥
अब छठये यहि विधिते सुनिये। ताते आदि संस्कृत गुणिये॥

सत्य कबीरके नाम जो चारो । चहुँयुगमें भिन्न भिन्न उचारो ॥
सत्य सुकृत मुनींद्र कहाये । करुनामय स्वामी बतलाये ॥
कलियुग माह कबीर उचारो । चारों युगके नाम हैं चारो ॥
नाम संस्कृतमें युग तीनी । कलियुग मिश्रीत करि दीनी ॥
अरबी संस्कृत मिश्रीत कबीरा । हिन्दू मुसलमान गुरु पीरा ॥
जेते और कबीरके नाऊ । सबही संस्कृत माह कहाऊ ॥
सतये स्वसंवेद कह येही । अज हरि हर मथुरा धर देही ॥
तीनों देव पिता सब नरके । तीन लोक ब्रह्मा हरि हरके ॥
ब्रह्म श्वासते वेद उपानी । उचरे तीन देव मुख बानी ॥
संस्कृत सुर बानी होई । ताते श्रेष्ठ और नहिं कोई ॥

इति देश ।

अथ ब्रह्मा और आदमकी एकता–चौपाई ।

ब्रह्मा आदम एकै अहई । सत्यकबीर बचन अस कहई ॥
ब्रह्मा सावित्री नर नारी । आदम हौवा ताहि पुकारी ॥
ब्रह्माको काशीमें वासा । अदनवाग सो नाम प्रकाशा ॥
काशी सम कोइ पुरी न आना । देखो काशी खंड प्रमाना ॥
बन अनद पथमें कहलाया । वाराणसी बहुरि बतलाया ॥
नाम तासु कहिये पुनि वासी । सब अनंद सब सुखकी रासी ॥
वाराणसी सो भयो बनारस । सुखसे सावित्री ब्रह्मावस ॥
आदिमें कहे जो वन आनंदा । अरबी अदनवाग सुखकंदा ॥
वन है बाग अरबकी भाषा । नाम अनंद अदवसों राखा ॥
उलटि आनंद अदन हो सोई । कहे अरब पारसके लोई ॥
संस्कृतकी बोली बहुतेरी । अरब लोग उलटा कहि टेरी ॥
वन अनंद बाग अदन जो भैऊ । वाराणसी बनारस कहेऊ ॥
अरब न संस्कृत सके उचारी । उलटा सुलटा सो करि डारी ॥

इति आदमब्रह्मा ।

अथ मनुशतव्रता और नूहकी एकता—चौपाई।

मनुशतव्रता नूहको जानी। परलय पयोध जो राख्यौप्राणी॥
नाव बहेतरा मनु नृपाला। रच्यौ बचावनजिव तेहिकाला॥
ताही बहेत्रा सकल चढ़ाई। येहि औसर जल परलय आई॥
तब हरि लियौ मीन औतारा। दोय सींग निजु शीशमें धारा॥
मीनरूप जो विष्णु बनाई। ताहि बहेत्रा शृंग लगाई॥
भलिबिधि बांधि बहेत्रा ताही। निजु बलते गहि राख्यौ वाही॥
नाव बाँधि हरि आज्ञा दैऊ। मनू जाये तह आसन गहेऊ॥
लीने सप्तऋषी निजु संगा। आठ जीव बैठे यहि ढंगा॥
चहुँ दिश तबहि जलामय होई। भे संहार बचा नहिं कोई॥
तरे बहेत्रा जलके माही। आठो जीव तहां बचि जाही॥
प्रलैय कीन फिर सृष्टि बसाये। धर्म महम्मद अस बतलाये॥
प्रलय पिछारी नूह पुकारा। प्रथमै नाम और कछु धारा॥
आदिको नाम नूह ना होई। बदलि गयौ पीछे ते सोई॥

इति मनुशतव्रता।

अथ महादेव और महम्मदकी एकता—चौपाई।

श्रीमुख सत्यकबीर बखानी। महम्मद महादेव सो जानी॥
महादेव क्षत्री रन बाके। सोइ महम्मदकी है साके॥
धर्म जासुको शस्त्र प्रहारा। सोई करे सृष्टि संहारा॥
तमगुण आदिमें वेद बखाना। रूह महम्मद प्रथम उपाना॥
तमगुण आदि सृष्टिको करता। भवसागर ताते थिर धरता॥
भव है नाम महादेव केरा। ताते यह भवसागर टेरा॥
भव भवानी द्वै रूप बनाया। भवसागर सरदारी पाया॥
शिवके संग नारि द्वै जानी। शीश गंग कटि गौरि भवानी॥
महम्मदमें मकार द्वै देखो। दोहू नारि तेहि संग बिशेषो॥
दोउ मकार महम्मद नामा। गंग गौरि बरणो वर बामा॥

आप भिखारी अनधन देही। महम्मद महादेव है येही ॥
धन अरु दर्ब चाकरन पाही। आप अलोनो साग जो खाही ॥
महा उदार महम्मद दाता। जक्कमाह सो शिव विख्याता ॥
योग भोग दोनों गुण भीजा। साबर मंत्रो दोवा तबीजा ॥
योग युक्ति शिववर्त बताया। उत नमाजा रोज ठहराया ॥
ये ॐकार शब्द गोहरावै। वे भोरे उठि बाग उठावै ॥
खड़ी एक नस महम्मद माथे। दंडाकार तिलक तेहि साथे ॥
प्रकट दोऊ भृकुटीके बीचे। मस्तक अंत प्रजंतलों खींचे ॥
जस कबीरमुनि तिलक कराही। सोई महम्मद मस्तक माही ॥
क्रोधवंत जब महम्मद बोले। तेहि औसर सोई नस डोले ॥
रोमधार यक उर बिच धारी। सोऊ दंडाकार सँवारी ॥
नाभिते कंठप्रजंतलों सोही। जन कबीर मुनि रूप है ओही ॥
शिवके संग रहे बहु देवी। तिमि बहु तारि महम्मद सेवी ॥
चीन्ह चक्र सब ताके साथा। आदिभक्ति सोई पशुनाथा ॥

इति श्रीमहादेव और महम्दमकी एकता।

अथ हनुमान और अलीकी एकता।

छन्द—झूलना।

हंक हनुमानते लंकमें शंकभ अलीके हंक गढ बंक टूटे। अली हनुमान दोऊ बांहके बली अरि अनीं दलमली ज्यौ सनी कूटे ॥ १ ॥ शूद्र जेहि शत्रुगण बीर्य सामुद्रघन रुद्र शिव देखि दल दैत फूटे ॥ शूर संग्राममें गुणनके धाम दोऊ अली हनुमान गुणमाहँ जूटे ॥ २ ॥

इति हनुमान।

अथ परशुराम और मूसाकी एकता—चौपाई।

परशुराम मूसा यकताई। ऐसे दोहुको मेल मिलाई ॥

विप्र अवज्ञा कीनो हरिकी। क्रोधवन्त कमला तबसरकी ॥
विष्णुकि छाती चरण प्रहारा। सब दुःख द्वन्द घेर तिहि बारा ॥
रहे बेहाल काल बहु तेरे। तब प्रभु तिनहिं दयादृग हेरे ॥
परशुराम लीनों औतारा। ब्राह्मण कुलको पालनहारा ॥
विद्या बुद्धि तपोधन धारी। रूप शील बल बीरज भारी ॥
सो द्विजराज काज चित दीने। क्षत्री मारि निछत्तर कीने ॥
तथा यहूदिन विकल विचारा। तब मूसा लीनो औतारा ॥
सो फिर उनको मारि नसाया। इबरानिनको प्राण बचाया ॥
विद्या बुद्धि निपुण गुणखानी। बल वीरज शोभा सरसानी ॥
परशुराम कर फरसा जोटा। तैसे मूसाके कर सोटा ॥
जैसे ब्राह्मण तथा यहूदी। दोनों माह देखिये खूदी ॥
कुल अभिमान दोहुनमें भारी। अबिरहाम वंश तन धारी ॥
परशुराम मूसा यक सारा। दोनों विष्णु केर औतारा ॥

इति परशुराम और मूसा।

अथ कृष्ण और क्रैष्टकी एकता—चौपाई।

कृष्ण क्रैष्ट दोउ एक समाना। हरि औतार धरे नर बाना ॥
क्रैष्ट नाम ईसाको आही। अंग्रेजी बोलीके माही ॥
हिंदू कहे कृष्ण जगदीसा। ईसा इनके ईस हैं ईशा ॥
कृष्ण आगमन जबहि जनायौ। सो सुनि कंसराय भय पायौ ॥
ईसा जन्म भव्य सुनि काना। तबहि रोद भूपति भय माना ॥
कृष्ण जो जन्म भयौ जेहि बारा। चहुँदिस फैल गयौ उजियारा ॥
कंसकी डर वसुदेव डेराये। मथुरासे गोकुलमें ल्याये ॥
यथा कृष्ण मथुराको त्यागे। तैसे ईसाको ले भागे ॥
गर्भसे जब ईसा प्रकटाने। चहुँदिश तबहि तेज चमकाने ॥
यूसुफ नृप हिरोद भय पाई। ले मसीहकी मिश्र सिधाई ॥
कृष्ण जन्म सुनि कंस डेरायो। केते बालक मारि नशायो ॥

ईसा भय हिरोद भूपाला। हने बहुत बालक तेहि काला ॥
रोग अनेकन कृष्ण घटाये। जीव केर दुःखद्वन्द हटाये ॥
मृतकहूको फेरि जिलाये। गुण अनेक कहलों बतलाये ॥
सो सबही गुण ईसा माहीं। देखि द्वैतदल दूर पराहीं ॥
इन असुरनको मारि नशाया। उन भूतन अरु प्रेत भजाया ॥
कुबरी कूबर कृष्ण सुधारा। तिमि ईसा कुबरी सुखसारा ॥
साठि हजार शिष्य संग लयऊ। दुर्वासा ऋषि आवत भयऊ ॥
चावल एक कृष्ण भंडारा। सबको तृप्त कीन तेहि बारा ॥
रोटी पांच मीन द्वै रहई। सो मसीह निज करमें गहई ॥
पांच हजार भीर नरदीसा। सबको पेट भर्यो तेहि ईसा ॥
ज्वाला कठिन कृष्णकर घाटा। ईसा अंधकारको डाटा ॥
अर्जुन पर हरि कीनी दाया। तिहि निजरूप विराट देखाया ॥
तिमि ईसा शोभा सरसाई। निजशिष्यन निजरूप देखाई ॥
कृष्णमें केते गुण सरसाई। तिमि कोइ गुण ईसा अधिकाई ॥
कृष्ण क्रिष्ट दूनो यक रूपा। उभय भये भवसागर भूपा ॥
कृष्ण मृत्यु जिमिप्रथम बताया। भील तीरते प्राण नसाया ॥
जगमें जगन्नाथ जग मगहीं। कृष्ण अस्थि हरिमेला लगहीं ॥
ईसा को तिमि क्रूस चढाये। जिये बहुरि निज पंथ चलाये ॥
इन गीता उत कथ इञ्जीला। दोनों विष्णु स्वरूप सुशीला ॥

इति श्रीकृष्ण और क्रैष्टकी एकता।

अथ राजा और पाण्डितकी एकता—चौपाई।

राजा पंडित एक समाना। जगमें श्रेष्ठ दोहूको जाना ॥
राज पाये इनके मद भारी। विद्या मद उनके अधिकारी ॥
ये बस करे सेन ले लोहा। अमृत वचन ते मेमन मोहा ॥
ये धन हरबे मनको हरते। हुकुम दोहूको जगमें बरते ॥
इन धन अरु दर्प घनेरा। उनके विद्या धन बहुतेरा ॥

दिग विजयी दोनों तन धारी । विषयानंद अहै संसारी ॥
इनको तृषा न धनते हटई । वह दिन दिन विद्यामें डटई ॥
धन विद्या बन माह भुलाने । ताते नहिं सतपदको जाने ॥
दोनों जो विषयनको तजई । ह्वै निरद्वंद जो हरि पद भजई ॥
जक्तमें उत्तम देखो जैसे । भक्तमें श्रेष्ठ होहि सो तैसे ॥
विद्या भक्तिको अंग विचारी । तासु दृष्टि पंडितको भारी ॥
ताते बुध नृपते बड़ अहई । वेद प्रमान शास्त्र अस कहई ॥
विद्याधन सब धनन बड़ेरा । अंग सङ्ग ताको नित हेरा ॥
राजकर्म पंडित आधीना । बिन पंडित हो महीप मलीना ॥

इति एकता ।

अथ भवसागर वर्णन ।

दोहा–भवसागर वर्षा न करो, सुनो सयाने सन्त ।
जामें गोता खात जिव, लहै न कोई अन्त ॥

सोरठा–भाँति भाँतिके जीव, चौरासी लख योनि जग ।
विलग विलग कर पीव, खानि खानि बिलगायके ॥

चौपाई ।

यह भव उदधि अपार बखाना । गोता खाहि जीव विधि नाना ॥
चौरासी लख योनि भ्रमावे । बूड़े उछले पार न पावै ॥
जेते जीव भवनिधि तन धारी । मानुष देह मुक्ति अधिकारी ॥
सो मानुष तन दुर्लभ कैसे । जैन धर्म वर्णन कर ऐसे ॥
यह दृष्टांत सुनाये सोई । अस चौड़ा सागर जो होई ॥
कोटिन योजनकी चौड़ाई । भवनिधि थूल कहा कहिजाई ॥
बैल केर जूवा गहि लीजे । जूवा डंडा अलग करीजे ॥
तेहि समुद्रके एक किनारे । जूवाको डंड़ा गहि डारे ॥
जूवा डारे दूजे छोरा । मारे वायूको झकझोरा ॥
बहुत फिरे डंडा अरु जूवा । बहै सदा इत उत सो हूवा ॥

जो सयोग कबहु गह सोई । जूवा दंडा यकठें होइ ॥
आपै आप मिले जो आई । पैठे ताहि छिद्रमें जाई ॥
बिन सहाय जूवामें पैठे । पहिली ठौर ठेकाने बैठे ॥
ऐसी दुर्लभ मानुष देही । चौरासी भ्रम पावै येही ॥
धर्म महम्मद बहुरि बतावै । एक बार मानुष तन पावै ॥
मूसा ईसा मतमें सोई । फेर नहीं मानुष तन होई ॥
वेद करे पुनि ऐसे वर्णन । पुनि पुनि जीव लहै मानुष तन॥
आठ लक्ष योनी भ्रमि आवै । पुनि गह जीव मनुष तन पावै॥
सत्यकबीर जो बचन उचारा । अति दुर्लभ मानुष औतारा ॥
नरतनु पाये न भक्ति विचारा । सो पापी आतम हत्यारा ॥
सुरदुर्लभ यह मानुष देही । सो तन लहैं भजु परम सनेही ॥
चार खानिके जीव अपारा । जो थावर जंगम तन धारा ॥
कोइ दीर्घ कोइ सूक्षम देखो । भारी थूल हरू लघु लेखो ॥
नाना वर्ण और गुणधारी । पूरि रहे भवसागर झारी ॥
युगन प्रजंत काहु थित गाई । अतिसै लघु आयू कोइ पाई ॥
स्वर्ग नर्क चौरासी लाखा । सो सब अंड पिंडकी साखा ॥
भवसागर त्रिदेव भे राजा । सब जिव तिनके देठ विराजा ॥
सोई सुर सुरपति शिरताजा । तिनके हाथ है काज अकाजा॥
भवसागरमें द्वै तट जानो । एक लोक यक वेद बखानो ॥
वेद कूलपर मन · आसीना । लोकछोर माया गहि लीना ॥
मध्यमें तीन देव गुणधारी । महा अपबल पाँच शिकारी ॥
भ्रमसागर कहिये भवसागर । दश दिश काल मचायौ झागर॥
भव पुनि भगको नाम कहावै । तामें सब जिव आवै जावै ॥
भव शिव नाम भवानी पतिको । जीव लखै को ताकी गतिको ॥
तीनों लोक वसै भग माही । बिन गुरु कृपा न बाहर जाही॥
कोटिन योग युक्ति जो करिये । भग मारग पुनि पुनि पग धरिये॥

चौरासी लख मीन बनाये । मन मछुवा सब तिनहि फसाये॥

सत्यकबीर वचन–शब्द ।

तन झौपडी मन बसै महरवा ।
नान्हेनान्हे डो भवन बीनै महजरवाडारि दिये नियक भरमसगरवा
गहिरेमें महरा पैठि न सकै विन बूड़े नहिं मिलत सिकरवा ॥
यक ओर महरा यक ओर महरी मारि लिहे नियक मोहमछरवा॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो ताकि लिहे नियक अमर सहरवा॥

चौपाई ।

तीन देवमें विष्णु बड़ेरे । तिनको हुकुम फिरे चहुं फेरे ॥
तीन लोक भवसागर माहीं । तीन देव तहँ राज कराहीं ॥
तीन लोकको सूत्र बखानो । जामें सकल जीव भरमानो ॥
प्रथमहि विष्णु सर्व शिरमौरा । तासु हेठ सुरगण सब औरा ॥
दुतिये पौरी विद्याधर है । नहीं देवता नहिं सो नर है ॥
सुर नर माह जान यह सीढी । भाषो बहुरि तीसरी पीढी ॥
नर वानर यक लेखे कहिये । यक ब्योहार दोहूमें लहिये ॥
दोनों बीच भेद अति थोरा । पशु अरु मानुषमें यह डोरा ॥
बिन दुम नर कपि पूछ समेता । नर वानर यक गुण कह केता॥
औरँग औटँग वानर जोई । नर आकार सर्व सो होई ॥
अंगरेजीके ग्रंथन माहीं । विना पूछ वानर यह आहीं ॥
दोनों पगते नर ज्यौं चाले । दोनों हाथ कामसें डाले ॥
वानर इतर जाति बहु तेरे । भिन्नभेद क्रम क्रमसे हेरे ॥
अंगरेजी अखबार बखाने । द्वै मानुष दुमदार लखाने ॥
हबशदेशको जंगल जहँवा । द्वै मानुष दुम युत रह तहँवा॥
डेढ़ हाथकी पूछ सो गहई । मादमें पशु समान सो रहई ॥
एक जाति मानुषको आही । रहे हिमालय पर्वत माहीं ॥
ऐसो निकट छोड तनधारी । पंछिन संग मचावै रारी ॥

चील्ह गीध गहि गगन उड़ाही। तेहि मानुषको धरि धरि खाही॥
तब सो नर गण जोरि सहाई। पंछिके संग करे लड़ाई॥
ऐसे बिबिधि भाति नरजाती। तिनकी कथा न कथे सिराती॥
नानारूप बरण गुणधारी। जहँ तहँ पृथ्वी माह विहारी॥
चार लक्ष मानुषकी जाती। तिनकी कथा कथे बहु भांती॥
जलमानुष थलमानुष देखो। वनमानुष आदिक बहु लेखो॥
पशुमानुष कहु मिश्रित होई। अकथकथा कहि जात न कोई॥
बहुरि कहो मानुष पशु ख्याला। सब परिवार जो करे उगाला॥
भोजन पीछे पागुर करही। बिन उगाल तिनको दुःखधरही॥
पशु नर नरपशु एक सो हेरी। देखहु कुदरत करता केरी॥
छायारूपी नर कहु सरसै। चेष्टा दीख रूप नहिं दरसै॥
रचना विविधि भांति कहि गाई। ताको लेख लिखो नहिं जाई॥
चौथो सूत्र बहुरि कहि गावो। जलचर मानुष मेल मिलावो॥
रह समुद्रमें गर्गन मच्छी। अर्ध है मीन अर्ध तिय अच्छी॥
कटिके ऊपर सुंदर नारी। अर्धहेट मच्छी तनधारी॥
कबहूके सागर तीर सुखारी। कबहूके जलमें गोता मारी॥
शृंगी ऋषि शिर सींग बताई। मुखमें सुण्ड गणेश गोसाई॥
पंचम पौरी करो बखाना। पशुपंछीको मेल मिलाना॥
चाम सुंदरी वाको कहई। दोनों रंग ढंग गुण गहई॥
सो नहिं खग अंडजकी जाती। चाम गूदरी है बहु भाँती॥
नहिं पशु नहिं खग मध्यम थापू। मुरगी एकसै परसे टापू॥
वृद्ध नारि सो सुख है जाको। जब कोइ दुःख देतहै वाको॥
रुदन विलाप करे जस नारी। केते पशु खग नरगुण धारी॥
दादुर एक अमेरिका देशा। रुदन करे जब लहे कलेशा॥
छटी पौरी बरणो सोई। जो चेतन्न रूप जड़ होई

लजवंयक पौधा चेतन। पशु पंछी सम चेत तासु तन ॥
जड़ चेतन गुण दोहू गहावै। पशु पौधाको मेल मिलावै ॥
सतई पौरीको अर्थावो। जो चेतन जड़ सम सिथलावो॥
पलपी तारा दोनों मछरी। सो सम चेतनते अति पछरी॥
जड़ समान यक ठौर गहाई। हले न चले गहे थिरताई ॥
पलपी देह दाग बहुताई। जो कोइ ताको काटै जाई ॥
जैसे माली कलम लगावै। फूल बेलको काटि बनावै ॥
जेतनो टूक करें कोइ ताको। होहि पालपी सबही वाको ॥
जेतनी दाग रहे तबमा माही। सो सबही पलपी ह्वै जाही ॥
जड़ चेतन दोऊ ता ढंगा। जड़समान चेतनको अंगा ॥
अष्टम पौरी कहो बखानी। जड़मय योनि गोदजिव जानी॥
नर नारकी लोक जिव पौरी। जड़सम सदा रहै एक ठौरी ॥
नर्कहेत नारकसो नाहीं। जैन मते दुःख देखो नाहीं ॥
तीन लोकको सत जो भाषा। काया तरुकी पह सब साषा ॥
जैसो कर्म जीव जो कर्त्ता। तैसो तनधरि जगमें वर्ता ॥
सब जिव पुण्य पापकी आसा। पुनिपुनि कर योगिनमें वासा॥

इति जीवधर्मबोध समाप्त।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" प्रेस,
कल्याण--बम्बई.